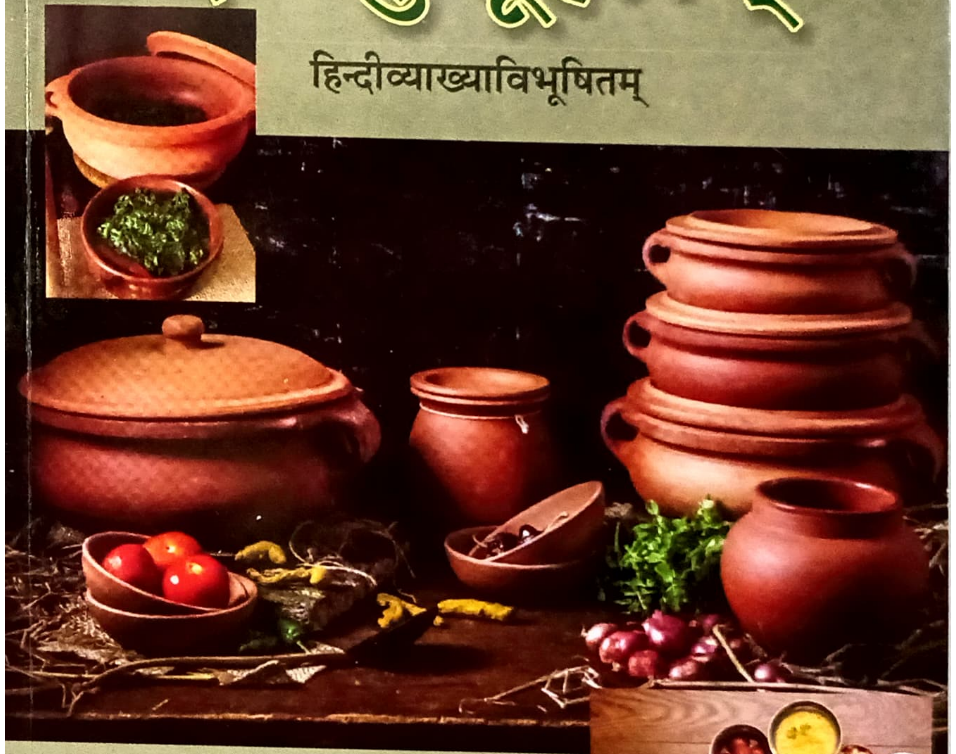
कृष्णदास आयुर्वेद सीरीज १७३

श्रीक्षेमशर्मविरचितं

क्षेमकुतूहलम्

हिन्दीव्याख्याविभूषितम्





हिन्दी व्याख्याकार

प्रो. (डॉ.) ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास आयुर्वेद सीरीज
१७३

***

श्रीक्षेमशर्मविरचितं

क्षेमकुतूहलम्

हिन्दीव्याख्याविभूषितम्

हिन्दी व्याख्याकार
प्रो. (डॉ.) ज्ञानेन्द्र पाण्डेय
निदेशक (अनुसन्धान एवं विकास)
प्रोफेसर एमेरिटस–फैकल्टी डीन

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका.

मूल पाठ प्रारम्भ		श्लोक संख्या
१. प्रथमोत्सव	: प्रथम प्रकरण	१-६२
२. द्वितीयोत्सव	: द्वितीय प्रकरण	१-४०
३. तृतीयोत्सव	: तृतीय प्रकरण	१-५२
४. चतुर्थोत्सव	: चतुर्थ प्रकरण	१-३८
५. पंचमोत्सव	: पंचम प्रकरण	१-९४
६. षष्ठोत्सव	: षष्ठ्म प्रकरण	१-२१४
७. सप्तमोत्सव	: सप्तम प्रकरण	१-३६
८. अष्टमोत्सव	: अष्टम प्रकरण	१-२०७
९. नवमोत्सव	: नवम प्रकरण	१-५६
१०. दशमोत्सव	: दशम प्रकरण	१-१४४
११. एकादशोत्सव	: एकादश प्रकरण	१-२९
१२. द्वादशोत्सव	: द्वादश प्रकरण	१-१२७

श्रीक्षेमशर्मकृतं

क्षेमकुतूहलम्

हिन्दोव्याख्याविभूषितम्

अथ प्रथमोत्सव

मङ्गलाचरणम्

कपोलतलनिर्गतप्रमदवारिधारालुठद्
भ्रमद्भ्रमरकाकलीकलितमञ्जुकोलाहलः।
गिरीशतनयो गुरुः सकलसिद्धिवारांनिधि-
भिनत्तु दुरितानि नः सततमोदकादः सदा॥ १॥

गणेश प्रार्थना

भ्रमर जो कपील तल निर्गत (कपोल तत से निर्गत) मदवारि धारा मद्ययुक्ता जल में लौटते हुए (लठद्) जो मधुर (मंजिल) कोलाहल (शोर-गुल) करते हुए, सकलसिद्धि निधि होती (समस्त प्रकार की सिद्धियों का भण्डार खजाना) प्रदाता, नव सकल मोदक (सदैव मोदक/ लड्डू खाकर आनन्ददाता), सकल गुरु (सबके गुरु) तथा गिरीश तनय (भगवान शंकर/ महादेव) के सुपुत्र श्रीमान् गणेश भगवान् की प्रार्थना (स्तुति/अर्चना) करते हैं, जिससे हमारे समस्त प्रकार के पापों से निवृत्ति (भिनतु दूरितानि) करने की कृपा करें ॥१॥

हृदयभुजविशालः कण्ठमन्दारमालः
समरभुवि करालः शोचिषा शोभिभालः।
दनुजनिचयकालः सर्वलौकैकपालः
स जयति मतिशालश्छद्मगोपालबालः॥ २॥

श्रीकृष्ण प्रार्थना

हृदय गुणा विशाल (विस्तीर्ण/ विशाल) हृदय तथा भुजा (वाहुओं) युक्त, कण्ठ मन्दार माला विभूषित (गले में मन्दार पुष्पों की माला धारण किए हुए, युद्ध के समय

(रणक्षेत्र/समरभुवि) में (दन्तुज निचय काल) कराल स्वरूप शोचिषा शोभिमाल) दानवों के लिए कालस्वरूप सिद्ध होने वाले में समस्त लोकों में एकमात्र संसक (सर्व लोकैपाल) या लोकपाल, मतिहमान (बुद्धिमान), मतिशालश्छद्म (कंस आदि दानवों के वध के लिए, यादव वंश में जन्म लेनेवाले (गोपालबाल) तथा ग्वाल-बाल के रूप में वृद्धि पर अवतरण करने वाले भगवान श्रीकृष्ण (सर्वोत्तम है), (सजयति) की जय हो, वह हम सभी मनुष्यों (गालियों) पर अपनी क्षय करने की कृपा करें ।।२।।

ग्रन्थकर्तावंशवृत्त

भरद्वाजकुलाम्बोधौ वलक्षः पक्षयोर्द्वयोः।
द्विजराज इति ख्यातो निष्कलङ्कः सदाऽक्षयः॥ ३ ॥

पितृकुल का मातृकुल, जो कि समुद्र के समान विशाल था, उस यशस्वी कुल में चन्द्रस्वरूप द्विजराज नामक वैद्य का जन्म हुआ जो निष्कलंक रहा (चन्द्रमा का स्वरूप वृद्धि-क्षय होता है, परन्तु द्विजराज सदैव समान रहे) ।।३।।

सन्नाहरूढान्वयभूषणोऽभूत्सलक्ष्मणं लक्षणपूर्णगात्रः।
भिषग्वरो राक्षसराजधान्यां विभीषणं यो विगदं व्यधत्त॥ ४॥

''द्विजराज'' समस्त वैद्यों में श्रेष्ठ (शरीरधारी) रूप में सुशोभित हुए इन्होंने राक्षस राजधानी लंका में लक्ष्मण तथा विभीषण का चिकित्सा करने का गौरव प्राप्त हुआ (अर्थात् उन्हें आरोग्य प्रदान करने का सुअवसर प्राप्त किया) ।।४।।

तदन्वये धर्मधरः समजनि भिषजां शिरोरत्नम्।
येनाघाति जनस्थः सुश्रुतविदुषा रुजां निचयः॥ ५॥

अजनि तदनु रामः सत्सुहृत्पूर्णकामः
सुकृतगमितयामः पुण्यकर्मस्ववामः।
गदनिचयविदारी वैद्यविद्याविहारी
बुधजनसुखकारी साधुमार्गप्रचारी॥ ६॥

इन 'द्विजराज' के वंश में जन्मे श्रेष्ठ भिषजी शिरोरत्नम् चिकित्साकर उत्पन्न होकर, सुश्रुताचार्य के सहचारी के रूप में व्याधि समूह से पीड़ित मनुष्यों का रुजा (रोगों) का नाश किया। धर्मचर के पश्चात् 'राम' का जन्म हुआ, जो सज्जनों के सहचर (मित्र), पुण्य कर्मो के कर्त्ता (पूर्ण मनोरथी), सुकृत कार्य वसनी, रोग समूह नाशक (गद निचश विदारी), वैद्यक शास्त्र में पारंगत (वैद्य विद्याविहारी), विद्वान सुख कारक (बुधजन सुखकारी) तथा सुमार्ग निर्देशक-प्रचारक (साधुमार्गप्रचारी) हुए ।।५-६।।

अभूद्यतिस्तस्य सुतो महौजा विज्ञातभैषज्यकलाकलापः।
हृषीकचक्रं प्रथमं विजित्य व्यजेष्ठ यो व्याधिचयं प्रजानाम्॥ ७॥

इसके पश्चात् 'यति' जो वैद्य-श्रेष्ठ-महानतेजर्स्वा-भैषज्यकला कलाप ज्ञाता हुए, जिन्होंने सर्वप्रथम हृषीक चक्र पर विजय प्राप्त की (प्रथमं विजित्य हृषाक चक्रम्) प्रजाजनों को उत्पीड़ित करने वाले रोगों के संकुल या समूहों (व्याधिचय प्रजानाम्) को नष्ट किया ।।७।।

यशोराजो महाराजः प्रह्लादः कामराजकः।
ह्लादनिस्त्रिपुरारिश्च षट् सुतास्तस्य जज्ञिरे॥ ८॥
शीलचातुर्याविज्ञानकलाभैषज्यसंपदा ।
षण्णा समानां भाग्येन महाराजोऽधिको भवेत्॥ ९॥
येनाराधि शकेश्वरो निजकलाकौसल्यमातन्वता
दिल्लीनाम्नि पुरे स्वपाटवबलैर्बन्दी च निर्मोचिता।
नीतो ग्रामगडाजरो दशपुरैः साकं शकाधीशतो
धन्योऽभून्महराज एव विषजां चक्रैकचूडामणिः॥ १०॥

'यति' के छह पुत्रों (षट् पुत्रवान्– षठ षट्सुतास्त्येय) ने जन्म लिया– यशोराज, महाराज, प्रह्लाद, कामराजक, ह्लादति (हृदनि) तथा त्रिपुरारि। इन समान अवस्था युक्त (षट्सुतास्तस्य) छह भ्रातृवर्ग (छह भाइयों) में भाग्यशील, चतुर, विज्ञान-कला-चिकित्साशास्त्र (भैषज्यसंपदायुक्ता) में दक्ष–'महाराज' सर्वान्धिक श्रेष्ठ माने गये। (महाराजो-ऽधिकोभयेत्)।

महाराज ने अपने कला-कौशल-योग्यता एवं से अपने अस्तित्व का विस्तार करते हुए (निजकलाकौसत्यमातन्वता) शक अधिपति को (शकेधर) में स्वपाट में बन्दी कर लिया। दिल्ली में अपने बन्दी को बन्धन युक्त करवाया (निर्मोचिता) तथा राजा शक से दस ग्रामों के साथ गडाजर ग्राम (नीतो ग्रामगडाजरी दशपुरैसाकम्) को प्राप्त कर लिया। इस तरह महाराजा समस्त चिकित्सों में श्रेष्ठ धनधान्यपूर्ण (भिषजां चक्रैक चूडामणिः) चिकित्सक के रूप मैं सम्मानित हुए।।८-१०।।

ह्लादनिस्तदनुजो बहुतेजा वाग्भटं चरकसुश्रुताशास्त्रम्।
शीलयन्ननिशमीशसादरः शर्म कस्य न ततान भूतले॥ ११॥

महाराज महान के अति भ्रातृ (भाई) तेजस्वी ह्लादनि हुए, जिन्होंने अष्टांग हृदय (वाग्भट) चरक, संहिता सुश्रुतसंहिता आदि आधारित आयुर्वेद शास्त्र का निरन्तर अध्ययन करके, करके, विश्वओं सभी को (सम्मानपूर्वक) लज्जित किया (सादर: शर्म कस्य नततान् भूतले)। इस प्रकार उन्होंने अपनी आयुर्वेद ज्ञान के वैशिष्ट्य, पाण्डित्य तथा कौशल से समस्त आयुर्वेद शास्त्रियों में श्रेष्ठतम् मान्यता प्राप्त की॥११॥

ह्लादनि पंचपुत्र–

मन्मथो जयशर्मा च वामदेवोऽथ पण्डितः।
सूर्यदासश्च विख्यातो ह्लादनेः पञ्च सूनवः॥ १२॥

हृदानि के पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम हैं–मन्मथ, जयशर्मा, वामदेव, पण्डित एवं सूर्यदास॥१२॥

मन्मथ गुण–

आचारः पटुता विवेकविधयः कौलीनमत्यद्भुता
भैषज्याश्रितचातुरी प्रियवचः पाण्डित्यसत्सङ्गती।
पुण्यं पापविरक्तिशक्तिमतयो दीने सदा दानिता
सर्वो मन्मनथमाश्रितो गुणगुणाः श्रीकान्तपूजारतम्॥ १३॥

सदाचारी भगनाम विष्णु की पूजन में निरन्तर संलग्न, पटुता, विचारशील–कार्यकुशल, कुलीन, आश्चर्यचकित करने वाली बुद्धि आदि गुण, चिकित्स कार्य में चतुर वाणी मधुरता, पण्डित्य, सज्जन संगति, पुण्यान्दु पाप निरुक्ति, शक्ति अनुसार क्रियाशील बुद्धि तथा निर्धनों को दान देने की निरन्तर प्रवृत्ति (दीने सदा दानिता)– इन समस्तगुणों से मन्मथ युक्त थे॥१३॥

क्षेमशर्मा जन्म–

क्षेमशर्ममलिनाथसंज्ञकौ तत्सुतावभवतां मनोरमौ।
यौ विलोक्य न भुवं समागतौ लज्जयेव भिषजौ दिवः पुनः॥ १४॥

क्षेमशर्मा तथा मल्लिनाथ नामक दो पुत्र मन्मथ के मन को प्रसन्नता करने वाले हुए (मनोरम)। इनको देखकर (यौ विलोक्य) अश्विनी कुमार, लज्जित होकर पृथ्वी से पुनः (न भुवं समागतौ), स्वर्गा रुढ़ (अश्विनीकुमार चिकित्सक-विशेषज्ञ द्वय) हो गये॥१४॥

क्षेमशर्मा श्रेष्ठत्व–

निहतनिजविपक्षस्कर्तविद्यास्वकक्षः
कलितसुजनरक्षः काव्यकेलीषु दक्षः।
विधिविहितसुकर्मा संचितानेकधर्मा
विदितसुकविमर्मा राजते क्षेमशर्मा॥ १५॥

स्वविपक्ष परास्तकारी, तर्क विद्या दक्ष, सुजन (सज्जन) रक्षक, काव्यकला निपुण, विधि-विधात पूर्वक सत्कर्मकारी (विधि वित स्वर्गा), अनेक धर्मो के संरक्षक (सन्नितनिक धर्मा) तथा सुकविमर्मज्ञाता (विदित सुकविमर्मा) 'क्षेमशर्मा' जिन्होंने दोनो मातृवर्ग में प्रसिद्धि अधिक प्राप्त की॥१५॥

क्षेमशर्मा– प्रधान वैद्य के रूप में नियुक्ति

क्षेमो विक्रमसेनभूपतिलकं संसेव्य विद्वद्गुणै-
र्मन्त्रक्षात्रकलावनिः समभवद्भैषज्यविद्याविभुः।
पात्रापात्र विवेकवान् परहिताधाने सदा सादर-
सत्द्वत्ते च पुरे सुधामयजलापूर्णा व्यधाद्वापिकाम्॥ १६॥

राजाओं में श्रेष्ठ विद्वज्जनों में सर्वोत्तम विक्रम सेन को प्रसन्न करके, मन्त्र तथा क्षत्रियों की कला-ज्ञाता, क्षेमशर्मा प्रधान वैद्य नियुक्त किए गये। क्षेमशर्मा (पात्रापात्र विवेकवान्) अपात्र-पात्र का अन्तरपूर्वक विवेकयुक्त तथा (सरहिताधाने) दूसरों के हित को सदैव चिन्तित–विक्रमसेन द्वारा नगर में, क्षेमशर्मा ने सुधामय जलपूरित (अमृतमय जल से परिपूरित तालाब (व्यधाद्वापिकाम्-वायी) का सृजन (संरचना) की॥१६॥

सीतेव सीता जननी यदीयानेयाऽग्ररेखा पतिदेवतानाम्।
स क्षेमशर्मा कृतपुण्यकर्मा शर्माणि धत्ते न कथं परेषाम्॥ १७॥

क्षेमशर्मा की माता, सीता के समान पतिव्रताओं में श्रेष्ठ, तथा पुण्यकर्मकर्त्ता, क्षेमशर्मा अपने पुण्यकर्मों से समस्त शत्रुओं को परास्त कर दिया अर्नत अपने शत्रुओं को लज्जित कर दिया॥१७॥

माता स्वर्गलोक गमन

वैकुण्ठलोकमगमद्दहनं प्रविश्य
सीता सती सुकृतचारुविचारदक्षा।
भर्त्रा सह प्रथितशीलगुणोदयेन
श्रीनिम्बशखिकुलभूषणरत्नशोभा॥ १८॥

श्री निम्बशाखिकुलभूषण रत्न से सुशोभित (श्री क्षेमशर्मा की मातृ) सुकृत (चारु विचार रस), युग एवं शीत ये गुण धारणी, अपने पारी के साथ (भर्त्रा सह) आने में प्रवेश कर दिया है तथा इस रीति से स्वर्गलोक (वैकुण्ठ लोकममगद्दहन प्रविष्य) को गमन कर गई॥१८॥

क्षेमशर्मा द्वारा ग्रन्थ निर्माण का सूत्रपात

श्रीसूर्यदासगुरुपादसरोजसेवा
हेवाकिना परहितार्थपरायणेन।
क्षेमेण तर्कपदवाक्यविचारदक्षा
ग्रन्थस्य कर्मविधये धिषणा व्यधायि॥ १९॥

क्षेमशर्मा ने अपने पितामह, श्रीसूर्यदास के चरण कमलों में मन को संलग्न किया तथा परहितार्थ परायण (दूसरों की सेवा में उद्यत), अपने (रस ग्रन्थ के सज्जन हेतु, तर्क-बुद्धि-वाक्यों में प्रयोग करने हेतु, अपनी दक्षता का उपयोग किया (क्षेमेण तर्कपाद वाक्य विचार दक्षा)॥१९॥

ग्रन्थं व्यधत्त सुरसं त्वमृतप्रपूर्णं
क्षेमः क्षमाजलनिधिर्द्विजदेवभक्तः।
भूमण्डले कृतनिवासजना यदीय-
पादार्घभावरसिका न सुधां धयन्ति॥ २०॥

क्षेमशर्मा क्षमा-सिन्धु, देवता तथा ब्राह्मणों भक्त (द्विजदेवक्तः- क्षमाजल निधि)। इस क्षेमशर्मा के चरणोदक के इच्छुक भूमण्डल के निवासी अमृत का त्याग कर देते है (न सुधां धयन्ति)॥२०॥

गौरीमतं चकवाग्भटभीमसूक्ति-
हारीतसुश्रुतमतं रविसिद्धपाकम्।

क्षेमो भिषग्वरसुधीरवलोक्य सम्यग्
ग्रन्थं व्यधत्त खलु क्षेमकुतूहलाख्यम्॥ २१॥

भिषक् मण्डल में श्रेष्ठ (भिषम्बरमधोरय लोकय सम्यग्) ने गौरी का मत, चरक तथा वाग्भट तथा भीम के वाक्य, हारीत एवं सुश्रुत के मत तथा सूर्यद्वारा सिद्ध पाक की भलीभाँति अवलोकन करने के पश्चात क्षेम कौतूहल नामक ग्रन्थ का निर्माण कार्य अपने हाथों में लिया (ग्रन्थ व्यधत खलु क्षेमकुतूलाख्यम्)॥२१॥

सन्ति यद्यपि नरा बहवोऽस्मिन् दोषदर्शनपराः क्षितिपीणे।
अस्ति सन्नपि हि कश्चन लोके यो बहुं प्रकुरुते गुणमल्पम्॥ २२॥

इस भूमण्डल (क्षिति पीछे) पर दोषों का अवलोकन (दोषदर्शनपराः) करने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुतायत से है, फिर भी कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते है, जो (बहुकुरुते गुणमल्पम्) अल्प (थोड़े) गुणों को अधिक विचार से प्रचार प्रसार करते है॥२२॥

ग्रन्थ की विषय तालिका (अनुक्रमणिका— उत्सवानुसार)

इष्टदेवनमस्कारः प्रथमे वंशकीर्तनम्।
सप्तधा द्रव्यपाकस्य परिभाषा निगद्यते॥ २३॥

इस पुस्तक (क्षेमकुतूहलम्) के प्रथम उत्सव में मंगलाचरण- इष्टदेव नमस्कार तथा ग्रन्थ रचयिता का वंश तथा द्रव्य पाक की सात प्रकार की परिभाषाओं का समावेश किया गया है॥२३॥

द्वितीये कथितं गेहमन्नरक्षा महानसम्।
पाकयोग्यानि पात्राणि तत्र योग्य उपस्करः॥ २४॥

द्वितीय उत्सव में भोजनालय, विष से अन्न रक्षा, पाकोपयुक्त पात्र तथा भोजन के उपकरणों का समावेश किया गया है॥२४॥

तृतीयोत्सवके प्रोक्ता वैद्यसूदपतेर्गुणाः।
विरुद्धाध्यशनं चैव विषमाहारलक्षणम्॥ २५॥
ऋतुलक्षणचर्या च तुरीयोत्सवके शुभा।
पञ्चमे प्रातरारभ्य रात्रियामार्धकावधि॥ २६॥
यस्य कालस्य यत्कर्म तत्सर्वं च निगद्यते।

तृतीय उत्सव में वैद्य तथा पाचक के गुण, विरुद्धाहार, अध्यशन तथा विषमाहार का वर्णन किया गया है।।२५।।

चतुर्थ उत्सव में ॠतु लक्षण तथा ॠतुचर्या का वर्णन किया गया है। पंचम उत्सव में प्रातःकाल से रात्रिकाल (अर्ध प्रहर) तक का के काल में वाछित कर्म का वर्णन किया गया है।।२६१/२।।

षष्ठे भोक्ताऽशनं भूरि क्रमश्च परिवेषणे।। २७।।
भोजनार्हाण्यमत्राणि पटुश्च परिवेषकः।
दृष्टिदोषहराः श्लोका नानावर्णकरो विधिः।। २८।।
मांसानां बहुधा पाकपरिचर्या निगद्यते।

षष्ठे (छठे) उत्सव में भी का (भोजन करने वाले), भोजन, परिवेषण (भोज परोसना), भोजन के अयोग्य, चतुर, उत्तम परिवेषक, दृष्टिदोष दूरीकरण, मन्त्र, वर्ण निर्माण तथा मांस पाक का वर्णन किया गया है।।२७-२८१/२।।

सप्तमोत्सवके प्रोक्तं मत्स्यमांसस्य रन्धनम्।। २९।।
षड्विधानां तु शाकानामचष्टेऽष्टमके विधिम्।

सप्तम उत्सव में मत्स्य मांस विधि का वर्णन से। अष्टम उत्सव में छह प्रकार के रसकों का पाक का) वर्णन किया गया है।।२९१/२।।

नवमोत्सवके ख्याताः सन्धानवटिका वटाः।। ३०।।
चाणका मौद्गसंस्कारा बहुधा माषपिष्टजाः।

नवम उत्सव में संधान वटिका, चणक, वटक, मुद्ग तथा माषपिष्ट की निर्मित अनेक प्रकार के आहार योग्य का समावेश किया गया है।।३०१/२।।

दशमोत्सवके प्रोक्तः पक्वान्नस्योत्तमो विधिः।। ३१।।
अन्नमांसफलक्षीरकन्दमीनादिभिः कृताः।

दशम उत्सव में अन्न, मांस, फल, दुग्ध, कन्द एवं मत्स्य निर्मित उत्तम व्यंजन निर्माण विधि का समावेश किया गया है।।३११/२।।

उत्सवैकादशे प्रोक्ताः प्रलेहाश्च सुसट्टकाः।। ३२।।
अभिष्यन्दनकल्काश्च सुसुप्ताग्निप्रबोधकाः।

एकादश उत्सव में प्रलेह, सट्टक, अभिष्यन्दन कल्क तथा सप्ताग्नि प्रदीपक आहार का समावेश किया गया है।।३२१/२।।

द्वादशोत्सवके प्रोक्तं क्षीरं च पानकम्।। ३३।।
वाताधिका रसाला च सुशीतं च करम्भकम्।
शुद्धदुग्धस्य पानं तु खाडवाचमनोदकम्।। ३४।।
इषीकोच्छिष्टदानस्य वाक्यमार्पमिहोदितम्।
धूपचन्दनताम्बूलमजीर्णोपशमौषधम् ।। ३५।।
किञ्चिदुद्देशमात्रेण प्रोक्ता ग्रन्थेमया क्रमः।

द्वादश उत्सव में क्षीरी, क्षीर, पानक, सुगन्धित रसाला, शीतल करम्भक, दुग्धपान, रसाला, षाडव, आचमन, इषिका से उच्छिष्ट अंश निष्कासनमर्थ मात्र (काव्य) आदि का वर्णन है तथा एवं धूप चन्दन सम्यक अजीर्ण निवारक औषधियों का समावेश किया गया है।।३३-३५१/२।।

भक्ष्यं भोज्यं लेह्यपेयमित्याहारचतुष्टयम्।। ३६।।
मधुरादिरसोपेतं क्रियते तद्विवेचनम्।
भर्जनं तलनं स्वेदः पाचनं क्वथनं तथा।। ३७।।
तान्दूरं पुटपाकश्च पाकः सप्तविधो मतः।

भोजन के प्रकार– (मधुरादि (षष्ठ) रसों से युक्त चतुर्विध आहार)
१. भक्ष्य
२. योज्य
३. लेह्य
४. पेय

सात प्रकार के पाक–
१. भर्जन
२. तलन
३. स्वेदन
४. पाचन
५. क्वथन
६. तान्दूर
७. पुटपाक

सर्वव्यंजन योगार्थ द्रव्य

हिङ्गु तैलं च लवणं पानीयं व्यञ्जनेऽखिले।। ३८।।
अनुक्तमपि दातव्यं पारम्पर्यात्प्रयोगतः।

हिंगु, तैल, लवण, जल तथा अन्य वस्तुयें अनुक्त (अवर्णित)– परम्परागत तथा आप्त निर्देशानुसार विभिन्न पदार्थों को समस्त प्रकार के व्यंजनों (आहारयोग्य निर्माण एवं खाद्य) मे डालना चाहिए (आवश्यकतानुसार)।।३८½।।

दलितं खण्डितं कृत्तं पौलितं तु विवेचितम्॥ ३९॥
वान्नारितं शोधितं च खण्डः पर्यार्यवचकाः।
भर्जितं तपितं भ्रष्टं तान्दूरं ताविकं तथा॥ ४०॥
शालिक्यं तलितस्यैते शब्दाः पर्यायवाचकाः।

१. दलित	५. विवेचित	(यह समस्त अष्ट (आठ) पर्यायवाची (क्रियाबोधक) शब्द होते हैं)
२. खण्डित	६. वान्नारित	
३. कृत्त	७. शोधित	
४. पौलित	८. खण्ड	

आहार पाक– पर्यायवाची (क्रियाबोधक) शब्द–

१. भर्जित	५. ताविक
२. तर्पित	६. शालिक्य
३. भ्रष्ट	७. तलित
४. तान्दूर	

वर्णकरणम्

वर्णस्य करणे देयं कुङ्कुमं रक्तचन्दनम्॥ ४१॥
ताम्बूलं यत्र यद्युक्तं तच्च तत्र प्रयोजयेत्।

कुंकुम (केशर), रक्तचन्दन एवं ताम्बूल, इन समस्त द्रव्यों को जो कहाँ उपयुक्त (आवश्यक) हो, वहाँ (आहार द्रव्यों के निर्माणार्थ/पाकार्थ) के वर्ण-करण (रंगीन बनाने) हेतु प्रयोग में लाना वांछनीय है।।४१½।।

वेसवार निर्माण

हिङ्ग्वार्द्रमरिचं जीरं हरिद्रा धान्यकं तथा॥ ४२॥
क्रमेण वर्धितं सर्वं वेसवारमिदं शुभम्।
स्तोकेन वारिणा सर्वं वण्टितं वस्त्रगालितम्॥ ४३॥
मात्रया व्यञ्जने देयं कासमर्दं च तत्स्मृतम्।

तप्तस्नेहे पचेत्पूर्वं वेसवारकसंज्ञकम्॥ ४४॥
पाकप्रापितसौरभ्यं करालं सूपकैर्मतम्।

क. हिंगु, आर्द्रक, जीरक, मरिच, हरिद्रा, धान्यक– इन द्रव्यों को क्रमशः वृद्धि करके (मिलाकर) निर्मित द्रव्य को 'वेसवार' कहा जाता है– यह 'वेसवार' की मूलतः परिभाषा (मसाला आदि अन्य प्रचलित नाम) है।

ख. इस वेसवार को किंचित् जल देकर, शिलापिष्ट (सील पर पीसकर) तथा वस्त्रगालित (कपड़े से छानकर) करके के पाकार्थ, आहार व्यंजनो में प्रयोग करना चाहिए एवं उपयुक्त है।

ग. वेसवार कासमर्द भी कहा जाता है। इस वेसवार को सर्वप्रथम उष्ण घृत तथा तैल में पाक करते हैं, तदुपरान्त सुगंध आने पर (उग्र गंध) उत्तम निर्मित 'वेसवार' मानना चाहिए। ऐसा मत पाक निर्माताओं (सौरम्य, कराल तथा रूपक आदि) का है।।४२-४४½।।

दाडिमी रस निर्माण

दाडिमे घृतसंतप्ते तक्रं तत्र विनिःक्षिपेत्॥ ४५॥
ततः पक्वं पटे पूतमिति स्याद्दाडिमीरसः।

दाडिमे के बीज (अनारदाना) निष्कासित कर घृत में पाक करते हैं, फिर उसमें तक्र (मट्ठा) डालकर भलीप्रकार पाक करते हैं– इसको वस्त्रगलित (कपड़े से छान लेते हैं) करके निर्माण करते हैं– इसे 'दाडिमी रस की संज्ञा दी जाती है।।४५½।।

उद्धूलन निर्माण

एलालवङ्गकर्पूरकस्तूरीमरिचत्वचम् ॥ ४६॥
चूर्णमुद्धूलनं देयं भोज्ये क्षीरक्षुसंभवे।
व्यञ्जनेषु च सर्वेषु शाकजेष्वन्नजेषु च॥ ४७॥
मांसमत्स्यभवेष्वेवं प्रलेहतलनादिषु।
आदावेव पचेत्स्नेहं ततो हिङ्गूदकं क्षिपेत्॥ ४८॥
वेसवारं सलवणं क्षिप्त्वा तत्पिशितं पचेत्।
अर्धस्विन्ने क्षिपेत्तक्रमथवा दाडिमीरसम्॥ ४९॥
सिद्धपाके च दातव्यं चूर्णमुद्धूलनस्य च।

क. एला, लवंग, कर्पूर, कस्तरी, मरिच तथा त्वक्– इन समस्त द्रव्यों के चूर्ण (जिसे 'उद्धूलन' कहा गया है) को दुग्ध तथा इक्षुनिर्मित भोज्य पदार्थों में डालना चाहिए।

ख. शाक, मांस तथा मत्स्य निर्मित समस्त आहार द्रव्यों (व्यंजनों) में इसे छोड़ते हैं। इसी प्रकार प्रलेह, तलन आदि पाक निर्माण करते समय, सर्वप्रथम स्नेह पाक करते है तथा बाद में हिंगु आदि के उदक को डालते हैं फिर वेसवार तथा लवण (स्वादानुसार) डालकर, मांस पाक प्रारम्भ करें 'अर्धायभाव ही जाने पर तक्र या दाडिमी रस डालते हैं, सम्पूर्ण पाक सिद्ध हो जाने पर, उद्धूलन चूर्ण से मिला देते है।।४६-५० $\frac{1}{2}$।।

मान परिभाषा

द्रोणी द्रोणाढकं प्रस्थः कुडवश्च पलं पिचुः॥५०॥
शाणको माषकश्चैव यथापूर्वं चतुर्गुणम्।

१. द्रोणी	६. पल	इन नव (नौ) मान की इकाइयों में क्रमशः पूर्व में चतुर्गुण (चौगुने) होते है। (यथापूर्व चतुर्गुणम्)।
२. द्रोण	७. पिचु	
३. आठक	८. क्षाणक	
४. प्रस्थ	९. माषक	
५. कुडव		

टिप्पणी– मान (वजन या तौल) के मागधमान, कालिंग मान आधुनिक मान तथा प्रचलित मान होते हैं, इनकी तुलनात्मक अवलोकन किया जा सकता है।।५० $\frac{1}{2}$।।

अग्नि का मान

प्रपाच्यं सकलं द्रव्य वह्निना स्वल्पहेतिना॥५१॥
विना भक्तं विना क्वाथं न क्षीरं बहुवह्निना।

विभिन्न प्रकार के भस्म पदार्थो/ द्रव्यों/ व्यंजनों आदि में विभिन्न प्रकार (मान/ माप या समय) की आग्नि देने का विधान है– (प्रपाच्यं सकलं द्रव्य वह्निना)

भक्त (भात) तथा क्वाथ (काढ़ा) उनको छोड़कर सभी पदार्थों को मन्द अग्नि (हल्की आग या आँच) में आवश्यकातनुसार पाक किया जाने निर्देश है। दुग्ध (क्षीर) को मन्द आदि में गर्भ करना (उबालना) चाहिए।।५१ $\frac{1}{2}$।।

माप-परिभाषा

जल (उदक)

भक्तपाके जलं देयं तण्डुलेभ्यश्चतुर्गुणम्॥५२॥
सूपस्य त्रिगुणं तोयं प्रदातव्यं हि मुद्गतः।
माषसूपे जलं किञ्चित्त्वधिकं मुद्गसूपतः॥५३॥
कृशरायां जलं किञ्चिद्धीनं तु मुद्गसूपतः।
व्यञ्जनानां प्रभृतानां तोयसंस्था त्वनेकधा॥५४॥
स्वभावकठिनं किञ्चित्किञ्चिन्मृदुतरं स्मृतम्।
कठिनं बहुतोयेन मृदु स्वल्पेन पच्यते॥५५॥

क. **आहार द्रव्यानुसार–**

भात (चावल) का भात पकाने हेतु	–	चावल (लाण्डुक) से चतुर्गुण (चौगुना) जल
माष (उड़द) पकाने हेतु	–	तीन गुना मूंग से (दाल से) त्रिगुण (तिगुना) जल
कृशदा (खिचड़ी) पकाते हुए	–	मूँग की दाल से कुछ अधिक कम जल (किञ्चिद्दीनम्)

ख. **सामान्य जल माप–** विभिन्न प्रकार के आहार-द्रव्यों (व्यंजनों) के लिए जल की मात्रा अनेक प्रकार की रखी जाती है। कुछ द्रव्य स्वभाव से कठिन अथवा मृदु होते है– अतः जल की मात्रा उसी प्रकार से (सम्मक्च) पाक हो जाये) रखी जाती है।

मांसपकार्थ स्नेह परिमाण निर्देश–

दिक्सङ्ख्यपलमांसस्य स्नेहमात्र पलं स्मृता।
लवणाघपलं देयं वेसवारं पिचु स्मृतम्॥५६॥
टङ्कमुद्धूलनं च स्यादेतन्मानं तु रन्धने।
सपादं मत्स्यमांसस्य द्रव्यं देयं तु मांसतः॥५७॥

षड्विधानां तु शाकानां द्रव्यं देयं तु मांसवत्।
अन्नजेष्वथ भक्ष्येषु किञ्चिद्धीनं तु मांसतः॥५८॥

क. दशपल मांस को पकाने हेतु, एक पल (लेह द्रव), लवण (अर्ध पल), एक पिच्छु (एक कर्ष) वेसवार, उद्धूलन (एक टंक) की मात्रा लेनी चाहिए।

ख. मत्स्य मांस को पकाने के लिए, उपकरण द्रव्यों को मांस के व्याकरण के चौथाई (सपाद) भाग देना चाहिए।

ग. मांस पदार्थों (अन्न निर्मित) में उपकरण द्रव्यों की मात्रा मांस से कुछ कम (किञ्चिद्धीनं तु मांसतः) होनी चाहिये॥५६-५८॥

शिखिरिणी निर्माण

शुभ्रशर्करया योज्यं निर्नीरं द्विगुण दधि।
उक्तमुद्धूलनं देयं रसालायां बुधैः स्मृतम्॥५९॥

क. शुभ्रशर्करा, दधि (द्विगुण) दो भाग जलरहित– इनका मिश्रण करकें 'शिखिरिणी' का निर्माण कर लेते हैं।

ख. रसाला निर्माण हेतु शिखिरिणी कथित उद्धूलन का चूर्ण मिश्रित करते हैं।

ग. यह पाकशास्त्र के विभिन्न ज्ञाताओं का मत है॥५९॥

पानक निर्माण

भूरूहाणां फलेऽम्लत्वे स्वल्पाधिक्यं हि दृश्यते।
तस्मात्तु शर्कराभागो नैकःपानेषु कथ्यते॥६०॥
सामान्यतो मयाऽप्युक्ता परिभाषाऽत्र भोजने।
न्यूनाधिका च कर्तव्या सर्वो भिन्नरुचिर्जनः॥६१॥

वृक्ष के फलों में अम्लता के परिमाण में अनार रहता है, अतः शर्करा की मात्रा तदनुसार (बिना निर्देशनुसार) डाली जानी चाहिए।

इस प्रसंग में, परिभाषओं (आहार सम्बन्धी) का उल्लेख किया गया है, जिसमे न्यूगाधिक परिवर्द्धन, आहार योग्य पदार्थ सरुचि के अनुसार, उपकरण द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। यह सर्वपाक शास्त्रियों का सामान्य मत (निर्देश) है॥६०-६१॥

प्रथमोत्सनेपसंहार

इष्टदेवनमस्कारः प्रथमे वंशकीर्तनम्।
द्रव्याणां परिभाषा च, पाकरक्षा त्वथोच्यते॥६२॥

क. क्षेमकुतूहल के प्रथम उत्सव (प्रकरण) में इष्टदेव, नमस्कार, ग्रन्थरचयिता का वंश परिचय तथा पाक द्रव्यों की विभिन्न की परिभाषाओं का वर्णन किया गया है।

ख. आगामी (अध्याय– द्वितीय उत्सव) में पाकरक्षाविधि का वर्णन किया जायेगा॥६२॥

•

अथ द्वितीयोत्सवः

(प्रकरण द्वितीय)

पुरुषार्थ चतुष्टय-अग्निपाक

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं बुधैः।
अत एवैककल्पेन सर्वैरेवाभिधीयते॥ १॥
तच्च भूतमयं तानि पच्यन्ते स्वाग्निनाऽनिशम्।
देहे गच्छति गच्छन्ति सदाहारं पाञ्चभौतिकम्।
नानाविधरसं भोक्तुमात्मा समभिकाङ्क्षति॥ ३॥
तेन पूरितकोष्ठस्तु सौहितये सुखमाप्नुयात्।

क. पुरुषार्थ चतुष्टय– धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष– का साधन का नाम शरीर है, ऐसा समस्त बुद्धिमान व्यक्ति एक स्वर से कहते हैं। (अतः एवैककल्पेन सर्वे देवाभिधीयते)।

ख. यह भूतमय (पंचामहाभूतों से निर्मित–जित-जपत्र) है। इनभूतों का परिपाक जठराग्नि द्वारा निरन्तर (अवधामति) से होता रहता है। विशेषतः समस्त देहगतभूतों का भी परिपाक होता रहता है। आहार पाँचभौतिक होता है– क्योंकि इन भूतों का आधार आहार द्रव्यों में रहता है।

ग. आहार कर्त्ता व्यक्ति (भोंक्ता) की आत्मा अनेक प्रकार के रसों की आकांक्षा करती है, इन रसों से कोष्ठ की पूर्ति हो जाने पर, उस (भोक्ता) को। तृप्ति का उनुभव होता है, जिससे सुख की अनुभूति होती है।।१-३$^1/_2$।।

रसाधिष्ठान

स्वादुत्वं षडसादीनां तेषां प्रायोऽन्नमाश्रयः॥ ४॥
तच्च शाल्यादिविविधं मांसक्षीरफलादिकम्।
किंतु व्यक्तरसं प्रायो बहुधैवोपजायते॥ ५॥

आत्मा की तृप्ति कारक रों का अधिष्ठान प्राय: अन्न ही होता है, जो

विभिन्न प्रकार के अन्न (शाल्यादि) तथा मांस, दुग्ध तथा फल आदि होता है, परन्तु व्यक्त रस का ही ज्ञान प्राय: भोक्ता को होता है (किन्तु व्यक्त रस प्रायो बहुधैवोपजायेत)।।४-५।।

योगक्षेम– नृपाहार

अन्नपानं विषाद्रक्षेद्विशेषेण महीपतेः।
योगक्षेमौ तदायत्तौ धर्माश्च प्रभवन्ति हि॥ ६॥

महीपत (राजा) के आहार योग्य पदार्थों की सावधानी से विष से तथा करना आवश्यक हे, क्योंकि राजा के अधीन योगक्षेम होता है। अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति योग है तथा प्राप्त वस्तुओं संरक्षण को क्षेम कहते है– इससे धर्म का पालन भी होता है।।६।।

भोजनगृहम्–स्वरूपवर्णन

गौरीमतादिलिखिताखिलपाकसंपद्-
व्यापारितौदनिकसंभ्रमपदर्शनीयम्।
स्वप्नेऽपि वैरिजनगोचरतामयातं
चन्द्रद्रवैः सुरभितं भुजिकर्मधाम॥ ७॥
आग्नेय्यां दिशि कर्तव्यमावासस्य महानसम्।
गवाक्षजालमार्गाढ्यमर्धभित्त्युपलेपितम्॥ ८॥
चुल्ली तत्र प्रकर्तव्या पूर्वपश्चिममायता।

क. गौरीमत तथा अन्य पाकशास्त्र सम्बन्धी साहित्य (प्राचीन) में, समस्त पाक सामग्री (वस्तुएँ/पदार्थों) तथा तत्परता से पाक-कार्य में संलग्न पाचक (रसोई बनाने वाले) तथा स्वप्न में भी शत्रु दृष्टि से प्रतिरकण, कर्पूर आदि (सुंगन्धित द्रव्य) से सुगन्धित (चन्द्र द्रवैः सुरभितं) छिड़कते से भोजनालय का निर्माण करने का निर्देश किया गया है।

ख. आग्नेय कोण भोजनालय की स्थापथ की जाये; भोजनालय मे जालीदार (गवास) खिड़की तथा अर्धनिर्मित्ति लिपी हुई (उपलेषितम्) रखी जाये। इस भोजनालय (महानस) में पूर्व से पश्चिम की ओर मुल्ली (लम्ब चूल्हा) का निर्माण किया जाना चाहिए।।७-८$^1/_2$।।

भोजन पाक पात्र विवरण

मृन्मयादीनि भाण्डानि क्षालितानि च वारिण॥९॥
तेषु यत्पच्यते द्रव्यं गुणवत्सर्वसंमतम्।
मृदभावे पचेल्लौहे चक्षुरर्शोविकारनुत्॥१०॥
कांस्यजे पाचितं यद्धि तद्धितं मतिदं शुचि।
यच्च ताम्रमये सिद्धं न रुच्यं त्वम्लपित्तकृत्॥११॥
सौवर्णे राजते पाच्यामाढ्यभूमिभृतां गृहे।
तत्पात्रं सर्वदोषघ्नं धिषणोत्सवदायकम्॥१२॥

१. मृत्तिकापात्र (क्षलितानि वारिणा– जल से धोते हुआ)	:	भोजन रुचिकर तथा अनेक गुणवान्
२. मृत्तिका पात्र के अभाव में लौह (धातु) का पात्र	:	वेग रोग तथा अर्श अशुरु
३. कांस्य पात्र में पकव आहार	:	हितकारी, बुद्धिप्रदाता एवं पवित्र (मतिदं शुचि)
४. ताम्रपात्र में पकव आहार	:	अरुचिजनक, अम्लपित्त कारक (न रुच्यं स्वम्लपित्तकृत्)
५. धतिक तथा राजा के गृह/प्रसार) में भोजन पाक	:	(चूर्ण-रजत पात्र में भोजन पाक हितकारी। सर्वदोषहार एवं बुद्धि प्रदाता (धिषणोत्सव दायकम)॥९-१२॥

संकीर्णे पात्रसंसारे मार्गे वा ग्रामवर्जिते।
स्थापयेद्गुणवान् सूदः सिद्धान्नं पात्रकान्तरे॥१३॥
भक्तः स्वपात्रके स्थाप्यो न स्थाप्यः पात्रकान्तरे।
घृतं काष्ठायसोः स्थाप्यं मांसं मांसभवं रसम्॥१४॥
स्थापयेद्राजते हैमे पात्रे लोहेऽथ काष्ठजे।
पत्रादिषड्विधं शाकंर स्थाप्यं काष्ठाश्मलोहजे॥१५॥
पक्वान्नं पिष्टजं भक्ष्यं स्थाप्य कांस्येऽथ दारुजे।
धारजेत्सुश्रृतं क्षीरं पार्थिवे वाऽथ काष्ठजे॥१६॥

पानीयं पायसं तक्रं मृन्मयेष्वेव धारयेत्।
काचजे स्फटिके वाऽथ वैदूर्यादिविचित्रिते॥१७॥
धारयेत्सर्वदा पात्रे रागखाडवसट्टकान्।
उक्तपात्रान्तरे स्थाप्यं यद्द्रव्यं तद्रुजापहम्॥१८॥
सर्वदा सुखदं हृद्यमन्यथा दोषमर्हति।

क. जब भोजन पक जाये, तब संकार्ण पात्र समूह वाले, ग्रामवर्जित स्थान मे गुणवान् पाचक का पक्व (सिद्ध) अन्न की अन्य (दूसरे) पात्र में रख रखना चाहिए।

संकीर्ण पात्र समूह, ग्रामवर्जित (मार्गविरुद्ध) स्थान मे गुणवान् पाचक पक्व (सिद्ध) अन्न को अन्य (उपयुक्त) पात्र में स्थान्तरित करते (सर्वदते) है। भक्त (चावल के भात को) पृथक् पात्र में रखने की आवश्यकता नहीं होती। घृत के लिए काष्ठ या लौह पात्र अनुक्त है। मांस या मांस रस के लिए रजत, सीसक, स्वर्ण, लौह तथा काष्ठ का पात्र उचित है। पत्र कन्द आदि यह प्रकार (पष्ठ शाको) को काष्ठ, पाषाण तथा लौह पात्र में रखना उपयुक्त है।

ख. पिष्टण पकवान्न (पिट्टी से निर्मित सिद्ध अन्न आहार प्रेरण) पदार्थों को कांस्य एवं काष्ठ, पात्र में रखना उपयुक्त है। उष्ण (तप्त) दुग्ध मृत्तिका या काष्ठ पात्र मे रखते है। जल, क्षीरिका (खीर), तक्र आदि मृत्तिका पात्र मे (मृन्मय) रखा जाता है। राग, खाडव एवं सट्टक आदि पदार्थो को कांच कांस्य (सीसक) स्फटिक, वैदूर्य से निर्मित पात्रों में रखना उपयुक्त है।

ग. इस रीति से दूसरे–उपयुक्त पात्रों में स्थान्तरित (रखा गया) आहार योग्य पदार्थों से रोगों का नाश होता है (सर्वदा रुजापहम् सुखदं हृघं दोषमर्हति) सुखकारक एवं हृदय के लिए लाभकारी होता है, परन्तु विपरीत क्रम (शास्त्र मे वर्णित विधि के विरुद्ध) पकवान्त पदार्थ (देखकर)– भोजन करने से, शरीर मे दोषों की उत्पत्ति करके विभिन्न प्रकार के रोग का कारण बनते है॥१३-१९½॥

महानस उपकरण स्थापन

वस्तूनि भोजनार्हाणि विविच्यानि पुनः पुनः॥१९॥
सर्वाणि गुणयुक्तानि स्थापितानि महानसे।
दास्याप्तामार्जनी वाटी, पूतहण्डी सुकूर्चिका॥२०॥

घर्षणी वैणवं पात्रं जलपूर्णस्त्वलिञ्जरः।
वह्निसंजननग्रावः कुद्दालं सुकुठारकः॥ २१॥
दारुखण्डानि शुष्काणि हस्तमालकृतानि च।
अजीर्णान्यननिस्थूलान्यजन्तुन्यमलानि च॥ २२॥
तितउचालनी (?) पीठोमुसलं चाप्युलूखलम्।
सूर्यं लोष्ठं शिलादर्वी चतुरस्रा च पट्टिका॥ २३॥
संदंशकं तु गुगलं वस्त्रखण्डं चतुष्टयम्।
नालिका छूरिका चैव सुशूल्यं सुकटाहकम्॥ २४॥
वह्निसंचालनार्थाय दर्वी दीर्घा सुलोहजा।
इत्यादिवस्तुजातं हि युज्यते च महानसे॥ २५॥

महानस (रसोईघर भोजनालय) में भोजन निर्माण हेतु योग्य समस्त वस्तुएँ गुणों से युक्त बार-बार (विविच्यानि पुनः पुनः अवलोकन (विचार) करके स्थापित करना उपयुक्त है। इस प्रकार की कतिपय वस्तुओं को उल्लेख निम्नांकित है, यथा–

१. विश्वसादासी (परिचारिका)
२. मार्जनी (झाड़ू)
३. वाटी (बटलोही)
४. पूतिहण्डी (स्वच्छ-युद्ध हांडी)
५. कुर्चिका (स्वच्छ कूंची)
६. घर्षणी (खरल)
७. वैणव पात्र (बांस की टोकरी)
८. जलपूर्ण स्त्वाजिंजर (जलपूर्ण घट)
९. वह्निसंजननग्राव (अग्नि जनक पाषण)
१०. कुद्दाल (कुठार)
११. दारुखण्ड (काष्ठ या लकड़ी के टुकड़े (शुष्क-कृमिरहित, हस्त मालकृत)
१२. तितउचालनी (चलनी)
१३. पीठ (पीढ़ा)
१४. मुसल (मुखल)

१५. उलूखल (ओखली)
१६. शूर्प (सूप)
१७. सूर्यलोष्ठ
१८. शिलादर्वी (लोढ़ा)
१९. चतुरस्रा
२०. पट्टिका (पट्टी)
२१. संदंशक (दो सेंड़सी)
२२. वस्त्रखण्ड (कपड़े के टुकड़े)
२३. चनालिका (नाली नाला)
२४. छूरिका (छुरीत्वाक्)
२५. सुरकल्प (शलाका)
२६. सुकदाहकम् (कढ़ाई)
२७. दर्वी-वह्निसंचालनायमि (करकुल)
२८. दीर्घा-सुलोहजा (लमी-लौह निर्मित)
२९. अन्य उपकरण वस्तुएँ महानस हेतु उपयोगी॥१९-२५॥

सविषान्नपरीक्षार्थ जन्तवः

तस्याजिरे मृगमरालचकोरकीक-
क्रौञ्चप्लवङ्गशिखिकुक्कुटवभ्रवश्च।
धार्या विषस्य परिहारधिया धनेशैः
किं श्रीमतां जगति दुर्लभमस्तिकिञ्चित्॥ २६॥
एणो रौति स्कलति गमने राजहंसश्चकोर-
स्याक्षिद्वन्द्वं विरजतितरां वान्ति कृत्कीरपत्री।
रौति क्रौञ्चो विसृजति कपिर्म्रीयते नीलकण्ठः
शब्दप्रीतिं सपदि सृजतो दक्षवभ्रू विषेण॥ २७॥

विषयुक्त अन्न-परीक्षा हेतु जीव-जन्तु उपयोग

क. इस कार्य हेतु महानस (रसोईघर) के मध्य (औगन/ चबूतरे/ अजिरे) पर विभन्न प्रकार के पशु-पक्षी पालन का प्रबन्ध अनिको (राजाओ आदि) को करना

चाहिए। इस प्रयोजन की पूर्ण किरणे के लिए मृग, हंस, चकोर, शुक, क्रौंच, प्लवंग, नीलकण्ठ, वभ्रु प्रभृति जन्तुओं (पक्षी आदि सहित) को पाल कर रखना चाहिए। यह धनिकों के लिए व्यवस्था है– धनियों को कोई भी वस्तु संसार मे दुर्लभ नहीं है (किं श्रीमतां जगति दुर्लभमस्तिकिञ्चित्)।

ख. यदि मृग को विषाक्त अन्न खाने को दिया जाये, तो वह शब्द करता है। या होता है (रीति) राजहंस का विषाक्त खाने पर वह चलते (हुए) गिर जायेगा (स्खलति)। चकोर दोनों नेत्रों को नचाता है (अक्षिद्वद्वं विरजतितराम्); शुक (कीरकौंची) वमन करता है (वान्ति)। क्रौञ्च पक्षी रुदन करता है (रौति क्रौञ्च)। कपि अन्न का पदित्याग कर देता है (विसृजति कपि), नीलकण्ठ मृत्यु को प्राप्त करता है (भ्रीयते)। मुर्गा (दक्षवभ्रू) तथा नेवला प्रिय शब्दों (शब्द प्रीतिं सपदि सूजहाँ दसवभ्रू विषेण)। करें बोलते लगता है।।२६-२७।।

सविषान्न-परीक्षा

ओदनो विषवान् सान्द्रो याति वैवर्ण्यमाशु हि।
चिरेण पच्यते पक्को भवेत्पर्युषितोपमः ॥ २८ ॥

विषाक्त अन्न की परीक्षा का विधान

विष मिश्रित सान्द्र (गाढ़ा) भक्त (भात) शीघ्र ही विवर्ण हो जाता है; यह पक्व (सिद्ध) होने में सामान्य से अधिक समय होता है तथा पयुषित (वासीभात) के समान हो जाता है।।२८।।

मयूरकण्ठतुल्योष्मा मोहमूर्च्छा विकारकृत्।
हीयते वर्णगन्धाद्यैः क्लिद्यते चन्द्रिकाङ्कितः ॥ २९ ॥

मयूर कण्ठ के समान उष्ण होता है तथा मोहमूर्च्छा आदि विकारों को उत्पन्न करता है; वह वर्ण तथा गन्ध रहित हो जाता है। चन्द्रिका के समान चिह्न युक्त हो जाता है।।२९।।

व्यञ्जानान्याशु शुष्यन्ति श्यामक्वाथानि तत्र च।
हीनातिरिक्तविकृता छाया दृश्यते नैव वा ॥ ३० ॥

विषमिश्रित व्यंजन तथा श्याम वर्ण के कवाय, शुष्क हो जाते हैं; इसमें न्यूनाधिक विकृति हो जाती है। यह छाया कम विकृति होने पर दृश्यमान होती है, परन्तु अधिक विकृति होने पर छाया अदृश्य हो जाती है।।३०।।

फेनोर्ध्वराजिसीमन्ततन्तुबुद्बुदसंभवः ।
विच्छिन्ना विरसा रागाः खाडवाःशाकमामिषम् ॥ ३१ ॥
नीला राजि रसे ताम्रा क्षीरे दध्नि च दृश्यते।
श्यावा पीता सिता तक्रे घृते पानीयसन्निभा ॥ ३२ ॥
मस्तुन्यपि कपोताभा राजी कृष्णा च सूपके।
काली गव्ये तथा क्षौद्रे हरित्तैलेऽरुणोपमा ॥ ३३ ॥

विषमिश्रित अन्न में फेन, उर्ध्वराजि, सीमन्त, तन्तु तथा बुदबुद की उत्पत्ति हो जाती है। राग, खाडव, शाक तथा मांस किन्न-भिन्न तथा रस रहित (विरस) हो जाते है।

रस में नीलमणि (देखा या लकीर), दुग्ध-दधि में ताम्रवर्ण की राजि हो जाती है। तक्र में श्याव, पीत वर्ण तथा श्वेत वर्ण की राजि (देखा); घृत में पानी के समान राजि-मस्तु में कपोतापा राजि, सूप (दाल) मे कृष्ण वर्ण की राजि, गव्य (दधि) में कृष्ण रेखा तथा मधु में हरित वर्ण तथा तैल मे अरुण वर्ण की राजि (रेखा) हो जाती है।।३१-३३।।

पाकः फलानामामानां पक्वानां च विशीर्णता।
द्रव्याणामार्द्रशुष्काणां वैपरीत्यं तु जायते ॥ ३४ ॥
मृदुनां कठिनानां च भवेत्स्पर्शविपर्ययः।
माल्यस्य स्फुटिताग्रत्वं म्लानिर्गन्धान्तरोद्भवः ॥ ३५ ॥
श्याममण्डलता वस्त्रे सादनं तन्तुपक्ष्मणाम्।
धातुमौक्तिककाष्ठाश्मरत्नादिषु मलाकृतिः ॥ ३६ ॥
स्नेहे स्पर्शप्रभाहानिः सप्रभत्वं तु मृन्मये।

क. आम फल (कच्चे) फल पकव हो जाते है, पक्व फल विदीर्ण हो जाता है (गल)। शुष्क तथा आर्द्र द्रव्यों में विपरीत स्थिति आ जाती है मृदु द्रव्य कठोर तथा कठोर द्रव्य मृदु हो जाते है।

ख. पुष्पमाला के अग्रभाग स्फुटित हो जाते है, मलिनता तथा गंध उत्पन्न हो जाती है। वस्त्र में श्याम वर्ण के मण्डल (धब्बे) तथा तन्तुओं के पक्ष्म (लोभ) शिथिल हो जाते है।

ग. धातु, मुक्ता, काष्ठ, पाषाण एवं रत्न आदि तथा इनसे निर्मित पात्रो मे मलिनता आ जाती है। स्नेह में स्पर्श तथा प्रभा की हानि हो जाती है, मृत्तिका पात्र में

चमक (प्रभा) आ जाती है। इन वस्तुओं का विष से सम्पर्क होने पर विभिन्न अप्राकृतिक लक्षण प्रतीत होते हैं।।३४-३६१/२।।

विषदलक्षणानि

विषदः श्यावशुष्कास्यो विलक्षो वीक्षते दिशः॥ ३७॥
स्वेदवेपथुमान् स्तब्धो भीतः स्खलति जृम्भते।
प्राप्यान्नं सविषं वह्निरेकावर्तः स्फुटत्यपि॥ ३८॥
शिखिकण्ठाभधूमार्चिरनर्चिश्चोग्रगन्धता ।
म्रीयते मक्षिकाः प्राश्य काकः क्षामस्वारो भवेत्॥ ३९॥

विषदाता के लक्षण

विषदाता का मुख श्याम वर्ण तथा शुष्कता लिये हो जाता है, व्यर्थ में इधर-उधर देखता है (विलसो वीक्षते दिशा); शरीर में स्वेद, कम्पन, जड़ता (स्थिरता), भयभीत स्खलण नृम्भन प्रतति लक्षण होते हैं। विषयुक्त अग्नि अन्न सम्पर्क में आने से एकावर्त चटकना प्रारम्भ कर देती हैं। मोरकण्ठ के समान ज्योति तथा उग्रगंध आने लगती है। इस विषक्ति अन्न को भक्षण करने से मक्षिका मृत्यु को प्राप्त करती है म्रीन्यते) तथा काक क्षाम स्वर (क्षीण आवाज) हो जाते हैं।।३७-३९।।

पाकरक्षा मया प्रोक्ता तस्य स्थानं च शोभनम्।
अथातः प्रोच्यते वैद्यसूपकारगुणागुणाः॥ ४०॥

इति नवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्मविरचिते क्षेमकुतूहलग्रन्थे
महाननसोपयोग्येपकरणप्रशंसनों नाम द्वितीयोत्सवः।

उपसंहार 'क्षेमकुतूहम्'

इस द्वितीय अध्याय में पाक करना की विधि तथा उत्तम स्थान (शोभनम्) का वर्णन किया गया है। आगामी अध्याय (तृती उत्सव) में वैद्य तथा सूपकार के गुण-दुर्गुण को परिचय कराया जायेगा।।४०।।

•

अथ तृतीयोत्सवः

(प्रकरण तृतीय)

अथ वैद्यसूपकारप्रशंसा

राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्यं निवेशयेत्।
सर्वदा स भवत्येवं सर्वत्रैवाप्रमादवान्॥ १॥
अन्नपानं विषाद्रक्षेद्विशेषेण महीपतेः।
यस्माच्च चेतोऽनित्यत्वमश्ववत्प्रथितं नृणाम्।
न विश्वसेदतो राजा कदाचिदपि कस्यचित्॥ २॥

क. वैद्य (प्राणाचार्य) को राजा राजगृह के समीप (राजगृहासन्न) निवास की जाना देनी चाहिए। वह सदैव प्रत्येक स्थान पर प्रमादरहित होकर (सर्वदा) इन निर्देशों के अनुसार कार्य करे।

ख. वैद्य राजा के अन्नपान की दशा सावधानी पूर्वक प्रमादरहित होकर (शंका के (समाधान सहित) करें। मनुष्य का चित्त (मन के समान) चंचल रहता है, राजा किसी का विश्वास नहीं करे (न विश्वेषेण राजा कदाचित्)।।१-२।।

आयुर्वेदकृताभ्यासः सर्वत्र प्रियदर्शनः।
युक्तिहेततसमायुक्त एष वैद्यो विधीयते॥ ३॥
क्रोधपारुष्यमात्सर्यमायालस्यविवर्जितम् ।
जितेन्द्रियं दयावन्तं शीलशौचक्षमान्वितम्॥ ४॥

महानसिक वैद्यः गुणावली

१. अयुर्वेद कृतम्भास
२. सर्वत्र प्रिदर्शन
३. युक्तिवेत्ता
४. क्रोध-निष्ठुर वचन-मात्सर्य आलस्य रहित
५. जितेन्द्रिय
६. दयालु
७. शीतवान्
८. शुचियुक्त
९. क्षमावान्

वैद्य के गुण

कुलीनं धार्मिकं स्निग्धं सुव्रतं सन्मते स्थितम्।
अलुब्धमशठं भक्तं कृतज्ञं प्रियदर्शनम्॥ ५॥
मेधाविनमसंभ्रान्तमनुरक्तं हितैषिणम्।
पटुं प्रगल्भं निपुणं दक्षमालस्यवर्जितम्॥ ६॥
सर्ववैद्यगुणैर्युक्तं नित्यं सन्निहितागदम्।
महानसे प्रयुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम्॥ ७॥

१. कुलीन	९. कृतज्ञ	१७. शाख निपुण
२. पवित्र	१०. प्रियदर्शक	१८. कार्यदक्ष
३. स्निग्ध	११. बुद्धिमान	१९. आलस्यरहित
४. सुनियमपालक	१२. असभ्रान्त	२०. वैद्य गुणों (शास्त्रों) में पारंगत
५. सुविचारशील	१३. अनुरक्त	२१. विभिन्न कर्म दर्शिता
६. निर्लोभ	१४. हितैषी	२२. सर्वथा औषध युक्त
७. शठतारहित	१५. चतुर	२३. अन्य गुण-विशेषतायें
८. भक्त	१६. निहद	

इन गुणों/ वैशिष्ट्य। कार्मिक श्रेष्ठता में युक्त वैद्य महानस (भोजन पाक गृह) में नियुक्ति के योग्य होता है, क्योंकि इस प्रकार का वैद्यपूजित माना गया है॥५-७॥

वैद्यः पुरोहितो मन्त्री दैवज्ञश्च चतुर्थकः।
प्रातरेव हि द्रष्टव्या नित्यं स्वश्रेय इच्छता॥ ८॥

राजा द्वारा प्रातःदर्शनीय महापुरुष

१. वैद्य २. पुरोहित ३. मन्त्री ४. ज्योतिषी

इन चार व्यक्तियों का दर्शन राजा के लिए कल्याणकारी होता है॥८॥

दैवज्ञो मन्त्रविद्वैद्यश्चतुर्थश्च पुरोहितः।
एते राज्ञासदा पोष्याः कृच्छ्रेणापि स्त्रियो यथा॥ ९॥

पालनार्थ राजा का कर्तव्य

इन चारों सम्मानीय व्यक्तियाँ (श्लोक ८) का पालन-पोषण अपनी स्त्री की भाँति (कष्ट से भी) राजा को करना चाहिए॥९॥

वैद्यविद्वज्जनामात्या यस्य राज्ञः प्रियंवदाः।
आरोग्यधर्मकोशाश्च प्रहीयन्ते हि सर्वदा॥ १०॥

प्रियता राजा हेतु अहितकर

राजा के सम्पर्कता (राज्य मुख्यालय) में वैद्य, विद्वान तथा मन्त्री- सभी प्रियवादी है। (प्रियंवदाः), उस राजा का स्वास्थ्य, धर्म तथा कोश (धन-भण्डार) क्षीण होना प्रारम्भ हो जाता है॥१०॥

गतश्रीर्गणकान् द्वेष्टि गतायुश्च चिकित्सकान्।
गतश्रीश्च गतायुश्च ब्रह्मणान् द्वेष्टि भारत॥ ११॥

लक्ष्मी (गतश्री) नष्ट होने वाला व्यक्ति ज्योतिषी से द्वेष करता है, तथा आयु क्षीण होने पर चिकित्सक से द्वेष करने लगता है। अर्जुन, दोनों व्यक्तिगतश्री तथा गतायु ब्राह्मणों से द्वेष प्रारंभ कर देते हैं॥११॥

क्वचिद्वित्तं क्वचिन्मित्रं क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः।
क्वचिदभ्यासयोगश्च नाफलं हि चिकित्सितम्॥ १२॥

चिकित्सा की सर्वदा सफलता

चिकित्सक को कहीं धन, कहीं मित्र, कहीं धर्म, कही यश तथा कहीं चिकित्सा कर्माभ्यास- इस रीति से चिकित्सा कार्य कभी असफल नहीं जाता॥१२॥

चिकित्सितशरीरं हि न निष्क्रीणाति यो नरः।
तेन यत्क्रियते पुण्यं तत्फलं भिषगश्नुते॥ १३॥

जब रोगी मनुष्य चिसित्सक को पर्याप्त पुरुस्कार, (जैसे शरीर को क्रय करके) तब तक किसी भी पुण्य कार्य का फल नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में फल चिकित्सक को प्राप्त होता है॥१३॥

संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम्।
व्यक्तिं भेद च यो वेद दोषाणां स भवेद्भिषक्॥ १४॥

वैद्य का दोषस्थिति ज्ञान

दोषों की संचय, प्रकोप, प्रसर, स्थान साम्प्रय तथा व्यक्ति- इन दोषो से अवस्थाओं के ज्ञाता को वैद्य कहा जाता है॥१४॥

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥ १५॥

वैद्य का ज्ञान

व्याधि (रोग के लक्षणों का ज्ञान) तथा उसको निवारण का ज्ञान होना ही वैद्य का वास्तविक ज्ञान है (कर्तव्य वास्तविक रूपसे)। वैद्य आयु का स्वामी नहीं, बल्कि आयु की रक्षा-विशेषरूप से गतायु की रक्षा वैद्य के वश में नहीं रहता॥१५॥

कुचैलः कर्कशो दीनो ग्रामीणोः स्वयभागतः।
पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा अपि॥ १६॥

पंच निन्दनीय चिकित्सक

१. कुचैला, २. स्वयं आहत, ३. कठोर, ४. दीन, ५. अव्यवहारिक- यह पाँच प्रकार के वैद्य धन्वन्तरि के समान होने पर भी सम्मान के योग्य नहीं है॥१६॥

सुश्रुतं न श्रुतं ये हारीतं येन हारितम्।
नालोकि चरकं येन स वैद्यो वैद्यंनिन्दितः॥
सुश्रुतं न श्रुतं येन किमन्यैर्बहुभिः श्रुतैः॥ १७॥

वैद्यों में निकृष्ट (निदनीय)

१. सुश्रुत संहिता का श्रवण नहीं किया
२. हारीत संहिता का अध्ययन नहीं किया
३. चरकसंहिता का अवलोकन नहीं किया
४. सुश्रुत संहिता को अध्ययन के बिना आयुर्वेद का ज्ञान परिपूर्ण नहीं है॥१८॥

श्रुतचरितसमृद्धे कर्मदक्षे दयालौ
भिषजि निरनुबन्धे देहभारं निवेश्य।
भवति विपुलतेजाः स्वस्थकीर्तिप्रभावः
स्वकुशलफलभोगी भूमिपालश्चिरायुः॥ १८॥

स्वदेह के संरक्षण का भार शास्त्रानुसार आचरण करने वाले, चिकित्सा कार्य में कुशल दयालु, निरनुबन्धन निर्दोष वैद्य के हाथों में देकर, विपुल तेज युक्त, स्वास्थ्य एवं यश से प्रभावित, एव कल्याण कारक फलों को उपभोग करने वाला राजा चिरायु होता है॥१८॥

भोजनसमये राजानं प्रति वैद्यस्यानुशासनम्

पारंगतः सकलवैद्यकसंहितानां
सत्पाकशासनबुधो गुरुवत्प्रगल्भः।
ब्रूयादिदं नरपतेः परिवेषकाले
धन्वन्तरिप्रतिभटो भिषजां वरेण्यः॥ १९॥

राजा का भोजन काल– वैद्य का कर्तव्य

समस्त आयुर्वेद संहिताओं के कुशल ज्ञाता (पारंगत) पाकशास्त्र में रस, गुरु के समान प्रभावशाली, धन्वन्तरि समान श्रेष्ठ चिकित्सक को चाहिए कि भोजन परोसने के समय (परिवेषकाले) सम्बोधनात्मक वाक्यों को वैद्य को प्रयोग करना चाहिए॥१९॥

देवावधारय शुभौदनसूपसर्पिः
फटोलकं दृढफलं मृदु पर्पटं च।
मांसं च शाकसहितं शुचि पिष्टमन्नं
पक्वान्नपानकयुतं क्वथितं पयश्च॥ २०॥

हे राजन ! आपके सम्मुख विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ (आहार भक्षण पदार्थों के नाम) प्रस्तुत (परिवेषित) हैं, इनको आप (राजा) ग्रहण करें॥२०॥

मधुरादि रसक्रमेण भोजनस्य नियन्त्रणम्

मधुरमधुरमादौ मध्यतोऽम्लैकभावः
कटुकटुकमथान्ते तिक्तितिक्तं तथैव।
यदि सुखपरिणामं वाञ्छसि त्वं हि राजन्
त्यज खलजनसङ्गं भोजनं मा कदाचित्॥ २१॥

रसानुसार भोजन नियम

प्रारम्भ में मधुर पदार्थ, मध्य मे अम्ल पदार्थ तथा अन्त मे कटु एवं तिक्त रस युक्त पदार्थों को भोजन में ग्रहण करें। यदि सुखकारक फल चाहते है। तब दुर्जनो की संगतिका परित्याग कर दे, परन्तु भोजन की कभी उपेक्षा कहीं करनी चाहिए (त्यज भोजनं मा कदाचित्)॥२१॥

भोजनकाले फलभक्षणविधि:

फलमादौ ही चाश्नीयाद्भोजनस्य नरोत्तम।
बिना मोचफलं तद्वर्जनीया च कर्कटी॥ २२॥

भोजनकाल में कल ग्रहण

हे नरोत्तम ! भोजन के समय (भोजन से पहले) फल भक्षण करना श्रेयस्कर है, परन्तु मोचफल (केला) तथा कर्कटी नहीं खाना चाहिए।।२३।।

भोजनकालनिरूपणम्

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत्।
याममध्ये रसोद्वेगो युग्मेऽतीते बलक्षयः॥ २३॥

भोजनकाल

प्रात:काल एक प्रहर के मध्य भोजन न करे तथा भोजन करने में दो प्रहर नहीं व्यतीत होने दें। एक प्रहर के मध्य भोजन करने रसोद्वेग होता हैं। दोपहर के बाद भोजन करने से बल का क्षय हो जाता है।।२३।।

मात्रापूर्वकभोजनस्य फलम्

मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका।
मात्रां द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरूण्यपि लघूनि च॥ २४॥
अर्धं गुर्वन्नमश्नीयाल्लघ्वन्नं नातितृप्तितः।
मात्राप्रमाणमादिष्टं सुखं येन विजीर्यते॥ २५॥
भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयौजसे।
सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते॥ २६॥
अतिमात्रं पुनः सर्वमाशु दोषं प्रकोपयेत्।
शाकं नवान्नभूयिष्टं शीतमुष्णीकृतं त्यजेत्॥ २७॥

मात्रापूर्वक भोजन

क. सदैव मात्रा पूर्वक भोजन करना चाहिए (मात्रासी सर्वकालम्)। इससे अग्नि प्रदीप्त होती है। मात्रा का निर्धारण गुरु एवं लघु गुण युक्त भोज्य पदार्थों के अनुसार होता है।

ख. गुरु अन्न सामान्य मात्रा मे होना चाहिए, परन्तु लघु अन्न अधिक तृप्ति कारक होने पर भी कुछ कम भक्षण करें।

ग. मात्रा का उचित प्रमाण नहीं है, जिससे सुखपूर्वक अन्न का परिपाक हो सके- यही उत्तम मात्रा है। तीन मात्रा का भोजन कल एवं ओज की वृद्धि नहीं करता, तथा सर्ववात रोगों का कारण है।

घ. अधिक मात्रा में भोजन शीघ्र ही सभी दोषों का प्रकोप करता है।

ङ. नवीन जल अथवा कदन्न के साथ शाक का सेवन उधारकृत (गर्भ किया अन्न खाना हितकर नहीं होता।।२५-२७।।

अतिभोजनस्य दोषा:

अनात्मवन्तः पुशबद्भुञ्जन्ते येऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि॥ २८॥

अतिभोजन जनित दोष

जो व्यक्ति (अनात्मवन्त) अंसयमवरी भोजन लौल्य के कारण पशु वत् (पशुबद्भुञ्जन्ते) प्रमाणरहित (मात्रा की उपेक्षा करके) आहार का भक्षण करते है, वह रोगानीक (रोगो के समूह) के मूल अजीर्ण से पीड़ित हो जाते हैं।।२८।।

आहारं पचति शिखी दोषानाहारवजितः पचति।
दोषक्षयेऽपि धातून पचति च धातुक्षये प्राणान्॥ २९॥
बुभुक्षितो न योऽश्नाति तस्याहारेन्धनक्षयात्।
मन्दो भवति कायाग्निर्यथा वाग्निनिरिन्धनः॥ ३०॥

आहार का अग्निपाचन नियमन

भक्षितु आहार का पाचन जाठराग्नि द्वारा होता है, तदनन्तर दोषो का पाचन करती है, फिर धातुओं का पाचन करके प्राण को पचाती है (धातुओ के क्षीण हो जाने पर)। बुभुक्षा (भूख) से ग्रस्त व्यक्ति यदि पर्याप्त मात्रा मे भोजन नही करता है, (ईधन समाप्त होने पर) भोजन मिलने के कारण जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, जैसे ईधन के अभाव में अग्नि मे मन्दता आ जाती है।।२९-३०।।

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि॥ ३१॥
भुक्तादौ सलिलं पीतं कार्श्यमन्दाग्निदोषकृत्।
मध्येऽग्निदीपनं श्रेष्ठमन्ते स्थौल्यकफप्रदम्॥ ३२॥

जलपान विधान

क. अधिक जलपान करने से अन्न का पाचन नहीं होता, या किंचित् जलपान करने से भी पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता– इससे दोष का पाचन प्रारम्भ हो जाता है, अतः आहार का खाते समय, थोड़ा-थोड़ा (मुहुर्वारि पिवेत्) पानी पीते रहना चाहिए।

ख. भोजन करने से पूर्व जलपान करने से, कृशता एवं मन्दाग्नि दोष हो जाता है, भोजन के बीच (मध्य) पानी पीने से जाठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है भोजन के अन्त में जलपान से स्थूलता तथा कफ वृद्धि हो जाती है।।३१-३२।।

तृषितस्तु न चाश्नीयात्क्षुधितो न पिबेज्जलम्।
तृषितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी॥ ३३॥

भोजन करने तथा जलपान करने का क्रम में व्यतिरेक होने से हानि होती है। तृषित प्यासा (व्यक्ति) को भोजन नहीं करना चाहिए तथा क्षुदित व्यक्ति (भूखे) को जलपान करना निषिद्ध है। तृषित व्यक्ति के भोजन करने पर गुल्म रोग की संभावना हो जाती है; इसी प्रकार क्षुधित (भूखा) व्यक्ति यदि जलपान करता है, तब जलोदर रोग हो जाता है।।३३।।

अत्युष्णान्नं बलं हन्ति शीतं शुष्कं च दुर्जरम्।
अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं युक्तियुक्तं बलप्रदम्॥ ३४॥

अत्युष्ण भोजन जनित हानि

बहुत अधिक गर्म भोजन करने से, बल नाश होता है। शीतल तथा शुष्क अन्न दुर्जर (देर से पचने वाला) होता है। अति आर्द्र अन्न खाने से ग्लानि (आहार में रुचि न होना) हो जाती है। अतः युक्तियुक्त (साधारणतया समशीतोष्ण अर्थात् आवश्यकतानुसार ठंडा या गर्म भोजन बलदायक होता है।।३४।।

तृषितो मोहमायाति मोहात् प्राणान् विमुञ्चति।
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्यते॥ ३५॥

जलपान के अभाव से हानि

तृषित (प्यासा व्यक्ति) यदि जल (पानी) पान नहीं करेगा। तब मोह (मूर्च्छा) से पीड़ित हो जायेगा। मूर्च्छा होने से प्राण का विमोचन (नाश) हो जायेगा। अतः सभी अवस्थाओं जलपान निषिद्ध नहीं हे।।३५।।

चयप्रकोपोपशमा वायोग्रीष्मादिषु त्रिषु।
वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु॥ ३६॥

ऋतु तथा दोषों की स्थिति

ग्रीष्म आदि तीन ऋतुएँ में क्रमशः वायु का संचय, प्रकोप एवं उपशम होता है, वर्षा आदि तीन ऋतुओं में पित्त तथा शिथिर आदि तीन ऋतुओं में कफ का संचय, प्रकोप एवं उपशम होता है। इसके अनुसार वर्षा ऋतु में पित्त का संचय, शरद में प्रकोप तथा हेमन्त में उसका उपशम होता है। शिशिर में कफ का संचय, वसन्त में प्रकोप तथा ग्रीष्म में उपशम होता है। यह दोषों की तीनों अवस्थाओं (संचय-प्रकोप-उपशमन) का विभिन्न ऋतुओं में सामान्यत स्थिति रहती है, जिससे स्वास्थ्य एवं विकार दोनों प्रभावित होते है।।३६।।

राजन्नध्यशनं त्याज्यं त्याज्यं च विषमाशनम्।
त्यजेद्विरुद्धमाहारं तत्सर्वं दोषकारकम्॥ ३७॥

क. अध्यशन
ख. विषमाशन
ग. विरुद्धाशन

हे राजन ! आहार की तीन श्रेणियाँ निषिद्धाहार के अन्तर्गत हैं, क्योंकि ये दोषकारक या रोगोत्पाद हैं। इन तीनों प्रकार के आहार का त्याग कर देना चाहिए।

विद्यादध्यशनं भूयो भुक्तस्योपरि भोजनम्।
अकाले बहु चाल्पं वा भुक्तं तु विषमाशनम्॥ ३८॥
वल्लीफलैरम्लकुलत्थशाकैर्मत्स्यैः सुरामांसतिलैः करीरैः।
पिण्याकजम्बूलवणैश्च दध्ना व्यस्तैः समस्तैश्च पयो विरोधि॥ ३९॥
घृतं धान्यं च तक्रेण दधिमद्यैश्च कुक्कुटाः॥ ४०॥
कपिञ्जलो तित्तिरिलावकौ च गोधामयूराबुरुबूकतैलैः।
यथाविरुद्धाश्च तथा कपोतास्तैलेन भृष्टा अपि सार्षपेण॥ ४१॥

अध्यशन– भोजन करने के बार पुनः भोजन हेतु बैठ जाना, यह अध्यशन की परिभाषा है।

विषमाशन– असमय में कभी अल्प-कभी अधिक भोजन करना, यह विषमाशन की परिभाषा हे।

विरुद्धाहार– (क) बल्ली फल, अम्ल पदार्थ, कुलत्थ, शाक, मत्स्य, सुरा,

मांस, करीर, पिण्याक, जम्बू, लवण, दधि– इनि पृथक् द्रव्यों या एक साथ मिश्रित द्रव्यों के साथ दुग्ध विरुद्धाहार माना गया है।

कपिंजल, तित्तिर, लावा, गोधा तथा मयूर मांस को एरण्ड तैल में पकाना विरुद्ध है। कपोत मांस को सर्षय तैल में पकाना विरुद्धाहार है।

एक साथ अनेक जन्तुओं के मांस परस्पर विरुद्ध हैं। मधु, घृत, वसा, तैल तथा जल का यथाक्रम से विरुद्धाहार की श्रेणी में रखा जाता है।।३८-४१।।

एकध्यं बहुमांसानि विरुद्ध्यन्ते परस्परम्।
मधुसर्पिर्वसातैलपानीयानि यथाक्रकम्॥ ४२॥
अशीतेनाम्भसा स्नानं पयःपानं नवाः स्त्रियः।
एतद्धि मानवाः पथ्यं स्वल्पं स्निग्धं च भोजनम्॥ ४३॥
भोजनंबलकृत्सद्यः प्राणिनां देहधारणम्।
आयुस्तेजःस्वरोत्साहधृतिस्मृतिसुखप्रदम् ॥ ४४॥

पथ्य (हितकर) आहार-विहार

१. अशीति (समशीतोष्ण) जल स्नान
३. नव स्त्रिया
२. दुग्धपान
४. अल्प-स्निग्ध भोजन

भोजन से लाभ– बलवृद्धि, शीघ्र प्राणियों की रक्षा, आयु-तेज-स्वर-उत्साह-धृति, स्मृति तथा सुखकारक।।४१-४४।।

भुक्त्वोपविशतस्तुन्दं बलमुत्तानशायिनः।
आयुर्वामकटिस्थस्य मृत्युर्धावति धावतः॥ ४५॥

भोजनोपरान्त कर्म

भोजन करने के बाद उपविशन (बैठने) से तुन्दीकरण (कुदर-तोंद) निकला, उत्तान सोने से बल की वृद्धि तथा वामशायी (बाँयी करवट) सोने से आयु वृद्धि तथा धावन (दोड़ने) से मृत्यु भी साथ पीछा करती है।।४५।।

उपयुक्ता यत्र वयं तत्ते राजन् कदाचिदपि माभूत्।
जितशत्रोरपि नृपतेर्वद कस्यन बल्लभाः करिणः॥ ४६॥

राजा को आवश्यकता

ऐसा नहीं भी न हो, जहाँ हम लोगों को आवश्यकता पड़े (शत्रुओं से जीते हुए हस्ति किस राजा को प्रिय नहीं होते। राजा के यहाँ सभी सहकारी प्रिय होते हैं।।४६।।

अथ सूपकारप्रशंसा

पितृपैतामहो दक्षः शास्त्रज्ञो मिष्टपाचकः।
शौचयुक्तोऽथ भक्तश्च सूपकारः स शस्यते॥ ४७॥
भवेयुर्धार्मिका स्निग्धाः सूपकाराः क्रमागताः।
कृतोष्णीषाश्च शुचयस्तथा वैद्यवशस्थिताः॥ ४८॥

सूपकार के प्रशंसनीय लक्षण

१. पितृ-पितामह से सूपकार वृत्ति (वंशपरम्पदानुसार पाचक का व्यवसाय)
२. चतुर पाकशास्त्र विज्ञाता-स्वादुपाकी-पवित्रता से युक्त
३. स्वामिभक्त

इन गुणों तथा क्रियाशीलता से युक्त सूपकार उत्तम माना गया है।

ख. धार्मिक, कामलस्वभावी वंश परम्परागत, उष्णीष धारी, शुचित्रान् तथा महानस वैद्य के वश में स्थित (वश/ अधीनता के अन्तर्गत कार्यरत)।।४७-४८।।

अन्येऽपि तत्र ये केचिच्चरन्ति परिचारकाः।
तेऽपि चैवंविधा एव तदध्यक्षोऽपि तादृशः॥ ४९॥
सूदकारपरिस्तत्र प्रायो वैद्यगुणान्वितः।
तत्रत्यजनतत्त्वज्ञस्तत्प्रशासनतत्परः ॥ ५०॥

अन्य महानस-कर्मचारी (परिचारक)

महानस में कार्यरत अन्न कर्यकर्त्ता (परिचारक) पाचक के गुणों से युक्त हो। सूपकार पति (पाचकां का स्वामी), प्रायः वैद्य-गुण युक्त तथा परिचारक के भावों का ज्ञाता तथा अनुशासन नियन्त्रक होना चाहिए।।४९-५०।।

अन्नस्य प्रशस्तिः

जीवनं जीविनामन्नमृतूक्तं विधिपाचितम्।
तदेवाविधिना भुक्तं परिणामे विषोपमम्॥ ५१॥

ऋतूनां लक्षणं ज्ञात्वा ततस्तद्विधिमाचरेत्।
अत एव प्रवक्तव्यं तच्चिह्नं तद्धिताहितम्॥५२॥

अन्न का गुणानगुण

ऋतु के अनुसार तथा विधिपूर्वक पकव अन्न प्राणियों का जीवन है। आहार विधि विरुद्ध अन्न का सेवन परिणाम में विष के समान होते है।

ऋतुओं के लक्षण जानकर, आहार विधि के अनुसार आचरण करें, तथा ऋतुओं के हिताहित का विचार करते हुए, आहार का सेवन करना श्रेयस्कर है।।५१-५२।।

●

अथ चतुर्थोत्सवः

(प्रकरण चतुर्थ)

ऋतुभेदाः

शिशिरः पुष्पसमयो ग्रीष्मो वर्षा शरद्धिमः।
माघादिमासयुग्मैः स्युर्ऋतवःषट् क्रमादिमे॥१॥
उत्तरायणमाद्यैस्तैरन्त्यै स्याद्दक्षिणायनम्।
आद्यमुष्णं बलहरं तत्रान्यदूबलदं हिमम्॥२॥

ऋतुओं का चक्र

	ऋतु	मास
१.	शिशिर	माघ-फाल्गुन
२.	वसन्त	चैत्र-वैशाख
३.	ग्रीष्म	ज्येष्ठ-आषाण
४.	वर्षा	श्रावण-भाद्रपद
५.	शरत्	आश्विन-कार्त्तिक
६.	हेमन्त	मार्गशीर्ष-पौष

उत्तरायण काल– शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म – उष्ण, बलहारक

दक्षिणायन काल– वर्षा, शरद एवं हेमन्त – शीतल, बलदायक

तुषारजालैः पिहितानि यत्र सवाष्पनीराणि मुखानि भानुः।
प्रातः प्रसन्नानि करैः करोति दिशां बधूनामिव खण्डितानाम्॥३॥
प्रियङ्गुपुन्नागकरोध्ररेणुर्व्रजर्नभो वाति हिमार्द्रवायुः।
आच्छादयन् धूमवितानलीढं विद्यादृतुं तं हिमनामधेयम्॥४॥

हेमन्त ऋतु– लक्षण

तुषार कणों से आवृत्त, वाष्प-जलयुक्त दिशाओं से मुख को प्रातःकाल किरणों

से (खण्डित ईर्ष्या से क्रुद्धनायिका के, मुख के समान) प्रसन्न करने वाला; प्रियंगु-पुन्नाग- लोध्ररजकणों से युक्त हिमार्द्र वाए, आकाश आच्छादक अपने मार्ग से बहता रहता है– धूम समूह से आच्छादित काल को हेमन्त ऋतु कहा जाता है।।३-४।।

नीहारानिलसंस्पर्शाद्बलवान् मारुतो यतः।
अतो हेमन्तसमये सेव्या शुण्ठ्या हरीतकी॥ ५॥
तिलतैलेन शिरसो गात्रस्याभ्यङ्गमाचरेत्।
सेवेतादित्यकिरणान्निर्धूमकहुताशनम् ॥ ६॥
आच्छादयेच्च कौशेयं प्रावारं चित्रमम्बरम्।
कार्पासकं नवं सेव्यं गृहं चागुरुधूपितम्॥ ७॥

हेमन्तचर्या

तुषारयुक्त वायु के स्पर्श से वात बलवान हो जाता है, अत: शुण्ठी के साथ हरीत की सेवन का विधान है; धूम रहित अग्नि का सेवन, तिलतैल का शिर एवं शरीर पर अभ्यंग, सूर्यताप (किरण) से ऊष्मा लाभ लेते हैं। उपयुक्त वस्त्रों से शरीर का आच्छादन, धूप आदि सुगंधि नवीन निवास स्थान में वास करना चाहिए।।५-७।।

हेमन्ते कुटुतिक्तोष्णमम्लक्षारघृतं दधि।
गोधूमतिलमापेक्षुविकारान् भक्षेद्बहून॥ ८॥
औदकानूपमांसानि कौलब्रघ्नप्रलेहितान्।
हेमन्ते सेवयेन्नित्यमाशु शीतार्तिशान्तये॥ ९॥

हेमन्त आहार

कटु-तिक्त-अम्ल रसयुक्त, उष्ण पदार्थ, क्षार, घृत, दधि, गोधूम तिल, माष तथा इक्षुविकार (पकवान) का सेवन हितकर है। शीतजन्य कष्ट निवारणार्थ औदक-आनूपज जन्तु मांस, नदी तट पर सूर्यप्रकाश तथा प्रलेह का सेवन करना चाहिए।।८-९।।

कस्तूरिकागरुविमिश्रितकुङ्कुमार्द्र-
देहां निषेव्य रमणीं रतिखेदखिन्नः।
शेते कृती हिमविशालनिशागमेषु
तारुण्पीनकुचयोगनिरस्तशीतः॥ १०॥

हेमन्तचर्या

कामदेव से पीड़ित (रतिखेदखिन्नरमणी) तरुणी के कठोर स्तनों के संयोग से शीतलता को निवारण किया हुआ, विद्वान कस्तूरी तथा अगरु मिश्रित केशर से आर्द्र शरीर युक्तरमणी के आलिंगन सहित रात्रि को मुखपूर्वक शयन करना चाहिए।।१०।।

अथ शिशिरलक्षणचर्ये

यत्रामृतद्युतिकरव्रजसन्निकाशै-
र्व्याप्ता दिशश्च विदिशश्च तुषारजालैः।
रुद्धं नभश्च हिमपीडितवच्च वह्ने-
राशामुपैति तपनः शिशिरः स कालः॥ ११॥

शिशिर ऋतु

क. **शिशिर ऋतु लक्षण**–चन्द्रमा की किरण समूहों के समान तुषारकाल में दिशायें, निकाशों के कोण व्याप्त होकर, शीत से व्यथित जैसा अकाश अवरुद्ध हो जाता है; सूर्य उत्तर दिशा (उत्तरायण) में पहुँच जाता है– इस काल को शिशिर ऋतु कहा जाता है।।११।।

हिमोक्तचर्या शिशिरेऽपि कार्या पथ्या च सेव्या सह पिप्पलीभिः।
पिष्टान्नकं सूरणशृङ्गवेरमिश्रं सदा संवटिकादिसेव्यम्॥ १२॥

शिशिर ऋतुचर्या

हेमन्त ऋतु के समस्त आचरण पालनीय, हरीतकी-पिप्पली का सेवन, पिष्टान्न, सूरण, आर्द्रक मिश्रित संवटिका आदि व्यंजनों का प्रयोग हितकर है।।१२।।

वसन्तलक्षणचर्ये

यत्रागस्त्हरित्प्रवृत्तपवनव्याधूतचूतव्रजा-
रामोदारपरागपुञ्जपिहितं व्योमापि संराजते।
छिन्नं रेणुचयैरिव स्मरविभोर्यत्रोद्व्रतैरिच्छतो
जेतुं सर्वजगन्तिस स्मरसखो ज्ञेयो वसन्तोदयः॥ १३॥

वसन्त ऋतु लक्षण

अगस्त्य के पीत वर्ण हो जाने से, प्रवृत्त वायु के झोके से, आम्र के मनोहर पराग

द्वारा आच्छादित आकाश धूलिका आम्र सुशोभित होता है, तथा छिन्न सम्पूर्ण विश्व विजय की कामना करता है, इस काल को कामदेव का मित्र (स्थिर सखा) वसन्तोदय मानना चाहिए॥१३॥

तत्र श्लेष्मा बलोपेतो रुणद्धि जठरानलम्।
रोगान् करोति बहुशस्तेन पूर्वं कफं जयेत्॥ १४॥
हरीतकी क्षौद्रयुता च सेव्या श्रमो विधेयश्च बलानुरूपः।
भृङ्गवलीकोकिलनादरम्यारामाः सुरामासहितैर्निषेव्याः॥ १५॥

वसन्तऋतुचर्या

इस काल के बलवान् होने से, जाठराग्नि मन्द होकर, अनेक रोग जनक हो जाता है, अतः सर्वप्रथम कफ को विजित करें। मधु-हरीतकी का सेवन, बल के अनुसार श्रम करें, सुन्दर स्त्रियों के साथ भ्रमर तथा कोकिल शब्द-गुंजरित मनोहर आराम (बगीचे) में विहार करना चाहिए॥१४-१५॥

तीक्ष्णं रूक्षं च कटुकं कषायं तिक्तकं लघु।
सेव्यं पुराणगोधूममुद्गशालियवादिकम्॥ १६॥
पलं मार्गं च शाशं च लावतित्तिरकादिकम्।
सेव्यं सर्वरसोपेतं सुष्ठूपस्करपाचितम्॥ १७॥
उद्वर्तनं चरेन्नित्यं दिवास्वप्नं तु नाचरेत्।
गुरु स्निग्धं च मधुरं शीतमम्लं च वर्जयेत्॥ १८॥
श्यामां प्रसन्नशशिबिम्बमुखीं विनिद्र-
पङ्कोरुहाकृतिदृशं धृतचारुवेषाम्।
आलिङ्ग्य मारुतचयं, परिचुम्ब्य पित्तं,
भुक्त्वा जयेत्कफचयं स्मरमित्रकाले॥ १९॥

१. तीक्ष्ण-रुक्ष-कटु-कषाय-तिक्त रसयुक्त पदार्थ

२. लघु द्रव्य

३. जीर्ण (पुराण) गोधूम-युद्ध-शालि आदि धान्य

४. कक्कुट, राक्ष, लावा, तित्तिर आदि जीवों के मांसरस-अच्छे उपकरणों में पका मांस

५. नित्य उद्धर्तन- दिवा निद्रा परित्याग

६. गुरु-स्निग्ध-मधुर-शील अम्ल पदार्थों का परित्याग।

चन्द्रमावत् बिम्ब सदृश मुखयुक्त, अर्धखिले कमल के समान नेत्र, सुन्दर वेश धारिणी श्यामा स्त्री का आलिंगन करके, वात विकारों को विजित कफ।

भलीभाँति चुम्बन से पित्तविकारों का नाश तथा उपभोग करके विकारों को विजित करे॥१६-१९॥

ग्रीष्मलक्षणचर्ये

यत्र प्रचण्डतरचण्डकरप्रताप-
संशोषितद्रुमलतातृणवारिपूरः।
उज्जृम्भते पवनवेगविकीर्णरेणु-
च्छन्ना भवन्ति च दिशः स निदाघकालः॥ २०॥

ग्रीष्मऋतु

ग्रीष्मऋतुलक्षण– इसकाल में अत्युष्ण सूर्य किरणों के संताप से वृक्ष, लता, तृणासमूह, जलाशय पुष्प हो जाते हैं, वायु के वेग से विकीर्ण रेणु उड़ती है (आच्छन्न) तथा दिशाओं का आच्छादन हो जाता है॥२०॥

स्निग्धच्छायं गृहं सेव्यं सेव्या पथ्या गुडान्विता।
सुधौतानि च वस्त्राणि सेव्यान्यातपशान्तये॥ २१॥

ग्रीष्मऋतुचर्या

इस काल में धूप (सूर्यकिरणताप) से रसा हेतु स्निग्ध, छायायुक्त गृह मे निवास करे। गुड़-हरीतकी का सेवन तथा श्वेतवस्त्रों का परिधान हितकर है॥२१॥

आरामभूरुहनिरस्तरविप्रतापा
वाप्यः प्रसन्नकमलाः कमलाकराश्च।
नद्यश्च चन्दनरसो घनसारमिश्रः
सेव्याःस्त्रजो विधुरुश्च निदाघकाले॥ २२॥

भोज्यं शीतं च मधुरं फलं तृष्णाहरं मधु।
स्निग्धं द्रवं रसालादिपानकं शीतलं पिबेत्॥ २३॥

सक्तूनालोडितान् शीतवारिणा शर्करान्वितान्।
भक्षयेच्छीतलं वारि पिबेत्कर्पूरवासितम्॥ २४॥

आराम (बगीचे) के वृक्षों द्वारा सूर्य तप से रहित, कभी में उत्फुल कल, कोमल वाणी, नदी, कर्पूर मिश्रित मलयागिरि चन्दन रस पुष्प की शीतलमलया चन्द्रमा की किरणों का सेवन हितकर है।

शीतल भोजन, मधुरफल, तृष्णाहर मधु, स्निग्ध द्रव पदार्थ, श्लेष्म रसाला, शिखरिणी आदि पानक पान, शर्करा मिश्रित शीतल जल में सत्तू तथा कर्पूर से, सुगन्धित जलपान लाभदायक है॥२२-२४॥

ग्रीष्मतो निषिद्धाहारविहारा:

त्यजेत् कटुकतिक्तोष्णलवणाम्लविदाहकृत्।
व्यायामं शीधुपानं च भास्करस्य च दीधितिम्॥ २५॥

निषिद्ध आहार-विहार

कटु, तिक्त, लवण-अम्ल रस युक्त आहार, उष्ण, दाहजनक पदार्थ, व्यायाम, मद्यपान तथा सेवन कर निषेध किया जाता है॥२५॥

वर्षालक्षणचर्यें

यत्रेन्द्रनीलनिभवारिधरैर्निरुद्धाः
काष्टानभश्च विमला: कुरुते न भानुः।
अम्भःसमीकृतमरुस्थलनिम्नगाभिः
श्यामैस्तृणैरभिनवैः खलु सा च वर्षा॥ २६॥

वर्षाऋतु लक्षण

नीलकान्तमणि के समान मेघों से आच्छादित दिशाओं एवं आकाश को सूर्य स्वच्छ करने में असमर्थ रहता है; जल से मरुस्थल एवं पर्वतीय नदियाँ समान हो जाती है; नवीन श्यामवर्ण में तृणों की उत्पत्ति हो जाती है– इसे वर्षा ऋतु कहते हैं॥२६॥

सशीकरमरुत्स्पर्शधरणीवाष्पयोगतः।
सविषाविलतोयैश्च दोषाः स्ययस्तत्र कोपिनः॥ २७॥

जलकणों से युक्त वायु के स्पर्श तथा पृथ्वी के वाष्प के संयोग, विषयुक्त एवं अविल (गन्दा) जल दोषों (वात-पित्त-कफ) का प्रकोप हो जाता है॥२७॥

पथ्या सैन्धवसंयुक्ता सेव्या गेहं समुन्नतम्।
शुष्कं प्रकाशवच्चित्रं सर्वतोऽगुरुधूपितम्॥ २८॥

वर्षाऋतुचर्या– आहार-विहार

सैंधव लवण तथा हरीतकी का सेवन, शुष्क-प्रकाश युक्त-चित्रित सर्वत्र अगर तथा धूप से सुगन्धित उच्च में निवास करना चाहिए॥२८॥

स्निग्धमम्लं सलवणं पलं शालियवादिकम्।
मस्तुसैन्धवसंयुक्तं पञ्चकोलावचूर्णितम्॥ २९॥

क्वथितं च निषेचेत दिव्यं कौपं जलं पिबेत्।
भवेद्यानैकगमनः शुष्कधूपितवस्त्रवान्॥ ३०॥

स्निग्ध-अम्ल-लवण, शालि-भवादि, मस्तु सैन्ध, पंचकोल-चूर्ण मिलकर सेवन, आकाश-कूप समित जलपान, शुष्क सुगन्धित वस्त्र धारण तथा अनेक गमन (सवारी से योग्य)॥२९॥

निषिद्ध आहार-विहार

सर-नदी-वापी का जल स्नान, पान वर्जित; दिवाशयन, परिश्रम तथा घर्म (धूप) सेवन वर्णित॥३०॥

सरोनद्यादिसलिलं स्नानपाने विवर्जयेत्।
दिवास्वप्नं श्रमं धर्मं प्रावृट्काले न सेवयेत्॥ ३१॥

शरत ऋतुचर्या– आहार-विहार

नदी, वर्षाकालीन संचित पित्त शरद में प्रकुपित; शर्करा सहित हरीतकी सेवन। कषाय-मधुर-तिक्त रसयुक्त पदार्थ, शीतल जल, पशु मांस, शालि-मुद्र, शर्करायुक्त दुग्ध; आमलकी आमलकी-पटोल-गौ दधि-घृत, गुड निर्मित मिष्ठान्न, नदी जल तथा चन्द्रमा किरणों का सेवन हितकर॥३१॥

अथ शरल्लक्षणचर्यें

यत्रोज्वला जलमुचो विकचेन्दुबिम्ब-
तारं नभो विकचनीरजकैरवाणि।
नाराणि मानसनिभानि सतां विभान्ति
काशानि कीर्तिसदृशानि च सा शरत्स्यात्॥ ३२॥

पित्तं प्रावृट्समुत्पन्नं शरत्काले प्रकुप्यति।
तेन शर्करया सार्धं सेवनीया हरीतकी॥ ३३॥
कषायं मधुरं तिक्तं शीतलं जाङ्गलं पलम्।
शालिमुद्गान्नमश्नीयात्पिबेद्दुग्धं सशर्करम्॥ ३४॥
धात्री पटोलं गव्याज्यं सर्वभिक्षुविकरजम्।
सेव्यं नदीसरोवारि करजालं च शीतगोः॥ ३५॥

शरतऋतु लक्षण

स्निग्ध मेघ, चन्द्रोदय बिम्ब के सामान आकाश, खिले हुए कमल-कुमुदनी युक्त मानस, सरोवर सदृश जल एवं सज्जनों के यश के समान सुशोभित– शरत् ऋतु में होता है।।३२-३६।।

तीक्ष्णमम्लं लवणं दधि तैलासवातपम्।
दिवास्वप्नं पुरोवातं शरत्काले विवर्जयेन्॥ ३६॥

शरत ऋतु– निषिद्धाहार-विहार

तीक्ष्ण-अम्ल-लवण, दधि-तैल-मद्य, सूर्य घर्म (धूप), दिन में सोना तथा पूर्वी हवा सेवन वर्जित।।३६।।

सर्वर्तुप्रान्त्यसप्ताहाद्भाविनो विधिमाचरेत्।
ऋतोर्लक्षणसंयोगादृतुसन्धिर्यतो भवेत्॥ ३७॥

ऋतुसंधि

सर्व ऋतु में एक सप्ताह पूर्व, आगामी ऋतु के आचरण को प्रारम्भ कर देना हितकर है; विभिन्न (ऋतुओं के) लक्षणों का संयोग हो जाने पर, इसका काल (संयोजित) को 'ऋतु सन्धि' संज्ञा दी जाती है।।३७।।

स्थानं मयोक्तमृतुसेव्ययोग्यं सर्वस्य द्रव्यस्य गुणागुणाश्च।
ऋतूक्तभोज्यमृतुलक्षणं च त्वथोच्यते प्रत्यहकृत्यकर्म॥ ३८॥

ऋतु तथा ऋतुचर्या– उपसंहार

ऋतुचर्या सम्बन्धी वर्णन किया है, आगे प्रत्पह कर्मों का प्रतिपादन पंचम उत्सव में निहित है।।३८।।

अथ पञ्चमोत्सवः

(प्रकरण पञ्चम)

अथ दिनचर्या

प्रातःकाले समुत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
शरीरशुद्धिं निर्वर्त्य कृतशौचविधिर्नरः॥ १॥
केशपाशे प्रकर्वीत प्रसाधन्यादिशोधनम्।
मुखस्यालोकनं कुर्याद्दर्पणेन विचक्षणः॥ २॥

दिनचर्या

प्रातोत्थापन–जो व्यक्ति स्वस्थ हो, वह अपनी आयु की रक्षा के उद्देश्य से प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा को त्याग कर, उठ जाये; वह शौचादि से निवृत्त होकर, शरीर को शुद्ध करके, केशप्रसाधन आदि से शरीर का शोधव करता है, प्रात:काल मुख को दर्पण में अवलोकन करता है, वह दीर्घायु होता है।।१-२।।

दन्तधावनविधिः

ततो हि दन्तनिर्लेखं प्रकुर्याद्विधिना नरः।
क्षीरितिक्तकषायाणां द्वादशाङ्गुलमायतम्॥ ३॥
कनिष्ठाग्रसमस्थौल्यं ख्यातवृक्षस्य शोभनम्।

दन्तधावन

विधिपूर्वक दन्त धावन करना चाहिए (शौचाद्वि कृत्य से निवृत्त होकर)। दुग्धयुक्त, तिक्त-कषाय रस युक्त वृक्षों की, द्वादशांगुल अथवा कनीष्ठिका अंगुलि के अग्रभाग के समान मोटी तथ्य सुदनानिर्वेटवती (दन्तधावन-दातौन) कर उपयोगार्थ ग्रहण करते हैं।।३½।।

दन्तकाष्ठग्रहणकाले वनस्पते स्तुतिः

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च॥ ४॥
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते।

इत्यादिस्ततिवाक्येन यद्गृह्णीतं वनस्पतेः॥ ५॥
प्रयच्छति भृशं कर्तुरायुःश्रीधीयशःस्थितीः।

दन्त काष्ठ ग्रहण– वनस्पति प्रार्थना (अभिमन्त्रण)

हे वनस्पति ! आप मुझे आयु, वर्ण, यश, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्मप्रज्ञा, मेधा (स्मृति तथा बुद्धि) प्रदान करें। इन स्तुति वाचन से प्राप्त दन्तकाष्ठ (दन्तधावन) करने वाले व्यक्ति को अधिकतम आयु, लक्ष्मी, बुद्धि, यश तथा स्थामित्व की प्राप्ति होती है।।४-५१/२)

वर्णानुसारेण दन्तकाष्ठस्य प्रमाणम्

दशाङ्गुलं क्षत्रियाणां विप्राणां द्वादशाङ्गुलम्॥ ६॥
अष्टाङ्गुलं तु वैश्यानां शूद्राणां तु षडङ्गुलम्।
दन्तकाष्ठं हि गृह्णीयात् स्त्रीणां तु चतुरङ्गुलम्॥ ७॥
भक्षयेद्दन्तकाष्ठाग्रं दन्तमांसान्यपीडयन्।
जिह्वानिर्लेखनं कुर्यात् प्राङ्मुखो वा ह्रदङ्मुखः॥ ८॥

व्रर्ण के अनुसार दन्तकाष्ठ ग्रहण

	वर्ण/जाति/लिंग	दन्तकाष्ठ प्रमाण
क.	ब्राह्मण	दश अंगुल (१०)
ख.	वैश्य	द्वादश अंगुल (१२)
ग.	शूद्र	षडांगुल (६)
घ.	स्त्री	चतुरंगुता (४)

इसके पश्चात् दन्तकाष्ठ के अग्रभाग का चर्वण करके, दन्त स्वच्छता करते हैं। तथा जिह्वानिर्लेखन (दन्त काष्ठ से को चीरकर, इसके दो भाग करके) करते है जिससे जीभ पूर्णतया स्वच्छ हो जायें तथा मल कफ रहित हो जाये।।६-८।।

दन्तकाष्ठस्याभावे दन्तधावनविधिः

अलाभे दन्तकाष्ठस्य निषिद्धदिवसेषु च।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्विधीयते॥ ९॥
रसनादन्तजा रोगा वैरस्य मलसंभवः।
न भवन्ति मुखे तेन वैशद्यं लाघव भवेत्॥ १०॥

दन्तकाष्ठ अभाव– दन्तधावन

यदि दन्त काष्ठ न मिल सके, तथा जब सूत्त धावन निषिद्ध हो, ऐसी स्थिति में द्वादश गण्डूषो से (वारह कुल्ले करके) मुख की शुद्धि कर लें। दन्तकाष्ठ के स्वाद को ग्रहण करने से, दन्तरोग, मुख विरसता तथा मल संभाव्यता मुख से निवृत्त होती है, तथा मुख में स्वच्छता तथा लघुता आ जाती है।।९-१०।।

मण्डूषधारणस्य फलम्

ततो गण्डूषकरणं कफकण्डूमलापहम्।

गण्डूष धारण

दन्त काष्ठ (पवन) के पश्चात् कफ, कण्डू तथा मल की निवृत्ति गण्डूष (कुल्ला) करने से हो जाती है)।।१०१/२।।

मुखप्रक्षालनविधिस्तस्य फलञ्च

मुखप्रक्षालनं कार्यं पयसा शीतलेन च॥ ११॥
रक्तपित्तास्यसंशोषनीलिकाव्यङ्गनाशनम्।
कुर्याद्वाऽपि कदुष्णेन पयसाऽऽस्यविशोधनम्॥ १२॥
कफवातहरं स्निग्धं मुखदोषविनाशनम्।
औषधं चात्र सेवेत सद्वैद्यप्रतिपादितम्॥ १३॥
जातरोगनिवृत्त्यर्थमाग्नेयं बलवर्धनम्।

मुख प्रक्षालन विधान

व्यक्ति को शीतल जल (ठंडे पानी) से प्रतिदिन मुखप्रक्षालन (मुँह धोना) चाहिए; इससे दन्तपित्त रोग, नीलिका नाश होता है, तथा मुख संशोधन होता है। कटुष्ण जल (कुछ गर्म पानी) से मुखप्रक्षालन कहते हैं। उष्ण जल (गर्भ पानी) से मुख प्रक्षालन करने से, वातनाशक, स्निग्धतादायक तथा मुखदोष नाशक प्रभाव होता है। मुखगत दोनों के नाशार्थ सद्वैद्य द्वारा निर्मित औषधियों का सेवन करते है; आग्नेय औषध बलवर्धक है।।११-१३१/२।।

ताम्बूलभक्षणविधिस्तस्य फलञ्च

ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चाद्द्विजशेषं तु शोभनम्॥ १४॥
तीक्ष्णोष्णं कफवातघ्नं मुखैशद्यकारकम्।

ततोऽधिकारिणः सर्वेष्वधिकारेषु योजिताः॥ १५॥

ताम्बूल भक्षण

दन्त` शेष रहे अनावश्यक पदार्थ के निष्कारननार्थ, ताम्बूल (पान) का भक्षण (चर्वण) करना चाहिए। तीक्ष्ण-उष्ण गुणयुक्त होने से, ताम्बू कफनाशक तथा मुख स्वच्छता कारक है। तत्पश्चात् समस्त अधिकारियों को उनके अधिकृत कार्यों हेतु नियुक्त कर देना चाहिए॥१४-१५॥

उद्वर्तनाभ्यङ्गयोर्विधिः फलञ्च

ततश्चोद्वर्तताभ्यङ्गं कारयेच्च यथेप्सितम्।
उद्वर्तनं कफहरं मेदःशुक्रविवर्धनम्॥ १६॥
श्रेष्ठं शोणितदं बल्यं कान्तिकृद्दोषनाशनम्।
अभ्यङ्गमाचरेतद्यस्तु स जराश्रमवर्जिः॥ १७॥
दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुः स्वास्थ्यत्वक्पाददार्ढ्यवान्।
अद्भिः संसिक्तमूलानां तरूणां पल्लवादयः॥ १८॥
वर्धन्ते हि तथा नृणां स्नेहसंसिक्तधातवः।

उद्वर्तनाभ्यङ्गविधान

उद्वर्तन (उबटन) तथा अभ्यंग (तैल मालिश) स्वेच्छानुसार प्रयोग करे।

उद्वर्तन– कफनाशक, मेघा-शुक्रवर्धक, रक्तवृद्धिकर, बल्य, कान्ति प्रद, दोषों निवृत्तिकारक।

अभ्यंग– जरा–श्रमहर, नेत्रज्योतिवर्धक, पुष्टिप्रद, आयुष्य, स्वास्थ्यप्रदायक, चर्म पाद दृढ़ता कारक। जैसे वृक्षों के पत्र (जड़ों का जल सिंचन करने से) बढ़ते हैं, उसीप्रकार शरीर की धातु बढ़ती है॥१६-१८$^{१}/_{२}$॥

स्नानविधिस्तस्य फलञ्च

ततः स्नानं प्रकुर्वीत सुखोष्णेनैवर वारिणा॥ १९॥
तेन गात्राभिषेकस्तु भवत्येव बलावहः।
अत्युष्णेनोत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम्॥ २०॥
स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेण तनुमर्दनम्।
कान्तिप्रदं शरीस्य कण्डुत्वग्दोषनाशनम्॥ २१॥

स्नान विधान

स्नान सुखोष्ण (कदुष्ण-हल्का गर्भ) जल से करना चाहिए; यह बलवर्धक होता है। अत्युष्णजल (बहुत गर्म पानी) से स्नान केश तथा नेत्र ज्योति नाशक है। स्नानोपरान्त वस्त्र से भलीभाँति मर्दन (तदनुमर्दमम्), शरीर कान्ति दायक, कण्डू तथा चर्मरोग नाशक है॥१९-२१॥

ऋतुक्रमेण वस्त्रधारणविधिस्तस्य फलञ्च

शीतकाले तु कौशेयं काषायं घर्मवासरे।
वर्षासु श्वेतवस्त्रं स्यादेवं वस्त्राणि धारयेत्॥ २२॥
कौशेयं चित्रवस्त्रं वा रक्तवस्त्रं तथैव च।
वातश्लेष्महरं नृणां शीतकाले प्रधारयेत्॥ २३॥
मेध्यं सुशीतं पित्तघ्नं काषायं वस्त्रमुच्यते।
तद्धारयेद् धमकाले कषायं वस्त्रं च धारयेत्॥ २५॥

ऋतु अनुसार, वस्त्रधारण

क. **शीतऋतु :** कौशेय (ऊर्जा-रे-शमी-गर्म कपड़े)

ख. **ग्रीष्मऋतु :** कषाय वस्त्र– बुद्धिवर्धक

ग. **वर्षाकरण :** श्वेतपत्र– सुखदायक, शीत-घर्म निवारक (न उष्ण-न शीतल– सभी ऋतुओं में धारण योग्य)

घ. **शीतकाल :** कौशेय, भिन्न वस्त्र– एकवर्ण के वस्त्र कफ-वात नाशक॥२२-२५॥

चन्दनादिलेपनविधिस्तस्य गुणाः

गन्धेनोद्वर्तनं चादौ ततो लेपं प्रकारयेत्।
कुङ्कुमं चन्दनं चैव कृष्णागुरुविमिश्रितम्॥ २६॥
उष्णाभावभिदं श्रेष्ठं शीतकाले तु शोभनम्।
चन्दनं चाम्बुना युक्तं कपूरेण विमिश्रितम्॥ २७॥
सुगन्धं च सशीलं च घर्मकाले सुशोभनम्।
चन्दनं घृसृणोपेतं मृगनाभिसमायुतम्॥ २८॥
न चोष्णं न च वा शीतं वर्षाकाले प्रशस्यते।

लेपन विधान

क. गन्ध से शरीर, को निर्भलीकरण; तदनन्तर, कृतवागुरु- केशर-चन्दन का लेपन- उष्ण तथा श्रेष्ठ (शीतकाल में हितकर)।

ख. जल के साथ घर्षण–कर्पूर मिश्रित लेपन : शीतल एवं सुगन्धित (ग्रीष्मकाल में हितकर)

ग. केशर- कस्तूरी युक्त चन्दन- न उष्ण- न शीत (वर्षा काल में हितकर)।।२६-२८१/२।।

सन्ध्योपासनविधान

कुलाचारं तु कुर्वीत सन्ध्योपासनमादितः॥ २९॥
सूर्योपास्तिं ततः कुर्यादिष्टदेवस्य चार्चनम्।
दत्त्वा दानं च विप्रेभ्यो गृह्णीयात्तेभ्य आशिषः॥ ३०॥

सन्ध्योपासन विधान

सर्वप्रथम (तदनन्तर) सन्ध्योपासन तथा कुलपचार (योगाभ्यास, प्राणायाम, सूर्य नमस्कार आदि उपयुक्त यौगिक क्रियायें), इष्टदेव पूजन तथा ब्राह्मणों को देकर, उनके आशीर्वाद को प्राप्त करना चाहिए।।२९-३०।।

केशानां निचये कुर्यात्कस्तूर्याद्यनुलेपनम्।
सुपुष्पाणि सुगन्धीनि नित्यं शीर्षे प्रधारयेत्॥ ३१॥
क्लेदायाससमुद्भूतस्वेददुर्गन्धनाशनम् ।
चक्षुष्यं दाहशमनं सौमनस्यं च जायते॥ ३२॥

केशप्रसाधनादि विधान

केशों को संवारने के पश्चात्, कस्तूरी–केशर-चन्दन आदि का अनुलेपन, सुगन्धित पुष्पों की शिर पर धारण करें, जिससे परिश्रमजन्य क्लेद, त्रिदज दुर्गन्ध, नेत्ररोगनाशक, दाहशामक तथा सौममस्य जनन (मनसिक आल्हादकर) होता है।।३१-३२।।

पुष्पधारणस्य नियमाः

तीक्ष्णाग्रक्लृप्तकेतक्याः कोमलं धारयेद्दलम्।
जातीपुष्पं च नैवालं सेवन्तीं कुटजं तथा॥ ३३॥
पाटलं च बृहत्पुष्पं बकुलं चम्पकं तथा।

श्रीखण्डं चैव गौलालं कस्तूर्या सह धारयेत्॥ ३४॥
मन्दारं मरुवं चैव कुमुदं नीलमुत्पलम्।
रक्तोत्पलं पूतिपुष्पं कर्पूरैः सह धारयेत्॥ ३५॥

पुष्पधारण विधान

क. तीक्ष्णाग्र केतकी कोमल दल, जाती पुष्प, नैवाल, सेवन्ती, कुरज, पाटला, बृहत्पुष्प, बकुल, चम्पक, मलयगिरि चन्दन तथा तरुणी, कस्तूरी के साथ धारण करते हैं।

ख. मन्दार, मरुद, कुमुद, नीलकमल, रक्तकमल, पूतिपुष्प- इनको कर्पूर भी साथ धारण करते हैं। अरूपतावस्था में छोटी बेल का पुष्प धारण किया जाता है।

ग. स्नान के पश्चात् जाती (मालिका), बेल पुष्प, तथा अभ्यंग के समय केतकी पुष्प तथा उत्पल पुष्प सदैव धारण करते हैं। पराग युक्त जाती, कुद, नेपाल, चन्दन, बिल्व तथा मल्लिका- इनका पुष्प शिर पर धारण करना चाहिए।।३३-३७।।

पुष्पाणां गुणाः

अस्नातैर्मल्लिका धार्या सुस्नातैर्जातिबिल्वजम्।
अभ्यङ्गे केतकी धार्या धार्यं चोत्पलकं सदा॥ ३६॥
जातीं कुन्दं च नैवालं श्रीखण्डं बिल्वमल्लिके।
मकरन्दे संयुक्त शिरसा धारयेन्नरः॥ ३७॥
सर्वाण्येतानि तुल्यानि रसतो वीर्यतस्तथा।
त्रिदोषशमनीयानि सर्वकाले प्रधारयेत्॥ ३८॥
कैतकं बाकुलं पुष्पं श्रीखण्डं शतपत्रकम्।
गौलालं चम्पकं पुष्पं वातश्लेष्महर परम्॥ ३९॥
उष्णवीर्य च तत्प्रोक्तं शीतकाले प्रधारयेत्।

पुष्पों का गुण

यह समस्त पुष्प (उपरोक्त) रस-वीर्य मे समान हैं, त्रिदोषनाशक है, इसलिए इनको सदैव धारण करें। केतकी, वकुल, चन्दन कमल, तरुणी तथा चम्पक पुष्प वात-कफ नाशक (श्रेष्ठतम) एवं उष्णा वीर्य है। अतः इन पुष्पो को शीतकाल में धारण करें।।३६-३९१/२।।

श्रीबकं मरुबं चैव नीलोत्पलकवत्सकौ॥ ४०॥
कुब्जकं पाटलं चैव श्रीखण्डं च तथैव च।
नात्युष्णं न च वा शीतं सर्वदोषनिबर्हणम्॥ ४१॥
निर्मलं नेत्ररोगघ्नं वर्षाकाले प्रधारयेत्।

श्रीवक मरुव, नीलकमल, वत्सक, कुटज, कुब्जक, पाटला, चन्दन- ये सभी पुष्प न अधिक- न अधिक शीत (समशीतोष्ण)- सर्व दोपहर, निर्मल तथा नेत्ररोग शामक पड़ता हे- ये समस्त पुष्प वर्षाकाल में धारणीय हैं।।४०-४१½।।

षड्यामं जातिकुसुमं नैवालं द्विमुहूतकम्॥ ४२॥
त्रिरात्रमुत्पलं चैव पञ्चरात्रं तु कैतकम्।
द्विरात्रं शतपत्रं तु अर्धरात्रं तु मल्लिका॥ ४३॥
अहोरात्रं चम्पकं तु पूतीपुष्पं मुहूर्तकम्।
श्रीखण्डमेकरात्रं तु बकुलं माधवी तथा॥ ४४॥
श्रीपर्णं यावदाहारं तावत्कालं तु धारयेत्।
मन्दारं मरुबं चैव दामनं चैव पाटलम्॥ ४५॥
यावत्कालं भजेदन्धं तावत्कालं प्रधारयेत्।

पुष्प तथा धारण काल

जाती पुष्प	-	षट्भाग
नैवाल पुष्प	-	दो मुहूर्त
नीलकमल	-	त्रिरात्रि
केतकी पुष्प	-	पंचरात्रि
शतपत्र	-	द्विरात्रि
मल्लिका	-	अर्धरात्रि
चम्पक	-	दिवा-रात्रि
पूतिपुष्प	-	एक मुहूर्त (घड़ी)
श्रीखण्ड	-	एक रात्रि
वकुल-माधवी-श्रीपर्ण	-	भोजनकाल

मन्दार-मकव-दम्लक-पाटला – सुगन्धित अवस्था (पर्यन्त)।।४२-४५½)

दोषानुसारेण पुष्पाणां प्रयोगः

त्रिदोषशमनी जाती महादाहविनाशिनी॥ ४६॥
सुगन्धं दोषशमनं गौलालं पुष्पमुच्यते।
पित्तहृद्विशदं चैव चक्षुष्यं चोत्पलं स्मृतम्॥ ४७॥
श्लेष्मवातप्रशमनमुष्णवीर्यं च निर्मलम्।
पुष्पाणां प्रवरं चैव केतकीपुष्पमुच्यते॥ ४८॥

दोषानुसार– पुष्प धारण

जाती	-	त्रिदोष नाशक, महादाहशामक
गौलाब (गुलाब)	-	सुगन्धित, वात पित्ताद दोषहर
नीलकमल	-	पित्तशामक, विशद तथा चक्षुष्य
कतकी	-	सर्वपुष्प उत्तम, कफवातशामक, उष्णवीर्य, निर्मल।।४६-४८।।

ईषदुष्णं सुगन्धं च सुशीतं दृष्टिदायकम्।
शिरोभ्रमविनाशार्हं शतपत्रं तु शोभनम्॥ ४९॥
अधार्यं मल्लिकापुष्पं दृष्टिहानिकरं परम्।
चम्पकं वातशमनं चक्षुष्यं विशदं शुभम्॥ ५०॥
पाटलं च महच्छीतं श्लेष्मवातविवर्धनम्।
मन्दाग्निपित्तदोषघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम्॥ ५१॥
पाटलं धारयेद्यस्तु सम्यग्वाससन्वितम्।
ज्वरमूर्च्छापिपासाघ्नमायुष्यं दाहनाशनम्॥ ५२॥

पुष्पों के गुण

१. **कमल पुष्प–** अल्पोष्ण, सुगन्धित, शीतल, नेत्रज्योतिवर्धक, शिरोभ्रमनाशक तथा प्रशस्त।

२. **मल्लिका–** दृष्टिहानिकर (परम) अधार्य

३. **चम्पक–** वातशामक, चक्षुष्य, कफवात वृद्धिकर तथा क्षुभा।

४. **पाटका–** अतिशीतल, कफवातविवर्धक, मन्दाग्नि, पित्तनाशक कर्णरोगहर।

५. सुगन्धित पाटला पुष्प- ज्वर, मूर्च्छा, तृष्णाहर, आयुष्म तथा दाहशामक।

ऋतुक्रमेण पुष्पधारणविधि:

हेमन्ते शिशिरे चैव शतपत्रं तु शोभनाम्।
वसन्ते केतकी धार्या घर्मे नैपाल मालती॥ ५३॥
प्रावृट्सु पाटलं धार्यं चम्पकं शरदि स्मृतम्।

विभिन्न ऋतुओं में पुष्पधारण

१. हेमन्त तथा शिशिर – कमल पुष्प

२. वसन्त – केतकी पुष्प

३. ग्रीष्म – नैपाल-जातीपुष्प

४. वर्षा – पारला पुष्प

५. शरद् – चम्पक पुष्प

आभूषणधारणविधिस्तस्य फलश्च

भूषणैर्भूषयेदङ्गं यथाविभवसारतः॥ ५४॥
शुचि सौभाग्यसन्तोषदायकं काञ्चनं स्मृतम्।
रत्नानां भूषणानां च धारणं ग्रहतुष्टिकृत्॥ ५५॥

आभूषण धारण

स्वधन सम्पत्ति के अनुकूल आभूषणों से अंगों का विभूषण करना चाहिए। कांचन (स्वर्ण) आभूषण पवित्र (शुचि), सौभाग्य एवं सन्तोषदायक होता है। रत्नों का आभूषण धारण से ग्रहों की तुष्टि प्राप्त होती है।।५४-५५।।

धार्मिककार्यविधिस्तस्य फलञ्च

धर्मसंग्रहणं कार्यं दीनदानोपवासकैः।
स्वबन्धुपितृदेवानां ब्राह्मणानां च तर्पणम्॥ ५६॥
कार्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं पापहरं परम्।

धार्मिक कृत्य विधान

क. दरिद्रों को दान

ख. उपवास-व्रत द्वारा धर्मसंग्रह (उपजीवन)

ग. बन्धु-बान्धव, पितृ, देवता, ब्राह्मणों का तर्पण : यश, आयु वर्धक, स्वर्गप्रदातकर्ता, पाप नाशक (परम्)।।५६१/२)

भोजनकालिकविधि:

ततो भोजनवेलायां कृताचारः सहात्मवान्॥ ५७॥
देवान् पितृन् समभ्यर्च्य कुर्यान्मङ्गलवीक्षणम्।

भोजन कालिक विधान

कृताचार उपरान्त संयमी व्यक्ति रुदान्नारों से युक्त, भोजन के समय देव-पितृ पूजन कर, व्यक्ति को मांगलिक वस्तुओं का अवलोकन करना चाहिए।।५७१/२।।

अष्टौ मंगलवस्तूनि

लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणौ गौर्हुताशनः॥ ५८॥
हिरण्यं सर्पिरादित्य आर्यो राजा तथाऽष्टमः।
एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेत्तथा॥ ५९॥

अष्टमाङ्गलिक पदार्थ

१. ब्राह्मण ५. घृत

२. गौ ६. सूर्य

३. अग्नि ७. आर्य

४. स्वर्ण ८. राज्ञ (राजा)

इन समस्त- अष्टमंगलदायक वस्तुओं का दर्शन तथा नमस्कार करना चाहिए।।५८-५९।।

प्रदक्षिणाया: फलम्

प्रदक्षिणं सदा नित्यमायुर्वर्धनमुत्तमम्।

प्रदक्षिण

प्रतिदिन प्रदक्षिणा करना आयुवर्धक तथा अति उत्तम होती है।।५९१/२।।

भोजनविधि:

पत्नीविहितशृङ्गारं प्राप्य भोजनमण्डपम्॥ ६०॥

तथा चाग्निबलं वीक्ष्य कुर्याद्भोजनकं नरः।
एक एव न भुञ्जीत यदीच्छेतितर्द्धिमात्मनः॥ ६१॥
द्वित्रिभिर्बहुभिः सार्धं भोजनं तु दिवानिशम्।
ततश्चाभीष्टसिद्धिः स्याद्दिष्टकामं तु संपदः॥ ६२॥

भोजन विधान

अपनी पत्नी– आभूषण एवं वस्त्रादि धारण करने से सुसज्जित– से युक्त भोजनालय में पहुँचकर, अपनी जाठराग्नि से बल का अनुभव करके भोजन व्यक्ति को करना चाहिए। स्वकल्याणकारी व्यक्ति को एकाकी (अकेले) भोजन नहीं करना चाहिए। दिवा-रात्रि (दोनों समत्त) तीन या बहुतों के साथ भोजन करना चाहिए। इससे अभीष्ट की सिद्धि होती है तथा अभिलाषा के अनुरूप धन की प्राप्ति होती है।।६०-६२।।

ताम्बूलभक्षणगुणाः

ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चाद्दत्वा विप्राय शोभनम्।
मनसो हर्षदं श्रेष्ठं रतिदं मदकारकम्॥ ६३॥
मुखरोगकृमिहरं ताम्बूलं रुचिकारकम्।

ताम्बूल भक्षण के गुण

राजा को चाहिए, पहले ब्राह्मण को दान देवें तथा फिर पान (ताम्बूल) का भक्षण (चर्वण) करें। यह हर्षदायक, अभीष्टकारी, को रतिद (कामोतेजक), मदकारक (नशीला), मुखराग एवं कृमि कर तथा रुचिकारक होता है।।६३ १/२।।

भोजनान्तरं कर्माणि

दिवास्वप्नं न कुर्वीत संयतो हि कफावहम्॥ ६४॥
दिवा स्त्रीगमनं नृणामायुःक्षयकरं भवेत्।
धर्मशास्त्राणि सततं पुराणश्रवणं तथा ॥ ६५॥
कारयेद्विधिना सम्यगात्मतत्त्वविवेचनम्।

भोजनान्तर कर्म (कर्त्तव्य)

भोजन के पश्चात् दिन में शयन नहीं करना चाहिए, क्योंकि दिवा निद्रा कफवर्धक है। दिन में स्त्री मैथुन से पुरुष की आयु क्षय होती है। धर्मशास्त्र एवं पुराणों का अध्ययन निरन्तर करते रहना चाहिए, तथा विधिपूर्वक (सम्यक् रूपेण); आत्म तत्व का विवेचन करते रहना चाहिए।।६४-६५ १/२।।

अथ सद्वृत्तम्

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ ६६॥
सुखं च न विना धर्मं तस्माद्धर्मपरो भवेत्।
हिंसास्तेयान्यताकामं पैशुन्यं परुषानृतम्। ६७॥
दुर्गोष्ट्यहितचिन्ता च परद्रव्यस्य चिन्तनम्।
पापकर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत्॥ ६८॥

सदवृत्त

समस्त प्राणियों की सर्वप्रवृत्ति सुखार्थ (सुख के लिए) होती है, सुख धर्म के बिना नहीं मिल सकता, इसलिए व्यक्ति को धर्म कार्य में तसर रहना चाहिए।

हिंसा– अस्तेय (चोरी)– यथाकाम (मनमाना कार्य), पैशुन्य, कठोरवाचक, असत्यवादन, दुर्जन संगति अन्य के अहित की चिन्ता, दूसरे का धन (परद्रव्य) को चिन्ता (योजना बनाना)– इस प्रकार के पापों को शरीर, वाणी तथा मन से विरत (त्याग) कर देना चाहिए।।६६-६८।।

अवृत्तिव्याधिशोकार्तानुवर्तेत शक्तितः।
भक्त्या सेवेत मित्रिणि, नसेवेताहिताज्ञानान्॥ ६९॥

अवृत्ति व्यवसाय वृत्ति रहित– (धनहीन), रोगी तथा शोक पीड़ितों को विशक्ति-समार्थ्य के अनुसार व्यक्ति द्वारा सहायता व्यक्ति द्वारा जानी चाहिए। मित्र संगति शक्तिपूर्वक तथा हानिकारक पुरुषों के संग का परित्याग कर देना चाहिए।।६९।।

आत्मवत्सततं पश्येत्सर्वजन्त्वापिपीलिकम्।
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ ।।७०।।

पिपीलिका (चींटी) से सर्व जन्तुओं (हस्ति तक) को आत्मवत् (अपने सभाव) देर बना समझाना चाहिए। हानिकारक शत्रुओं में भी उपकार की भावना करनी चाहिए।।७०।।

काले हितं मितं ब्रूयान्नाहितं तु कदाचन।
हिताभिलाषी सुमुखो भवेच्च करुणो मृदुः।।७१।।

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शङ्कितः ।

उचित समय पर हितकर वचन तथा सीमित (भित) भाषी, अहित की बाते कभी भी न बोले अहितकांक्षी सुमुख, दयालु, कोमल स्वभाव युक्त होते हैं; अकेला-सर्वत्र-विश्रव्धा तथा सशंकित सुखी नहीं हो पाता॥७१$^{१}/_{२}$॥

न कञ्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिरिपुम् ।।७२।।
प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां व्रजेत् ।

निज शत्रु को तथा किसी का शत्रु अपने को घोषित (प्रकाशित) नहीं करना चाहिए। किसी का अपमान नहीं करें तथा निस्नेहता (द्वेष/वैर) नहीं रखना चाहिए॥७२$^{१}/_{२}$॥

न पीडयेदिन्द्रियाणि नात्यर्थं लालयेदबुधः।।७३।।
परस्पराविरुद्धो यस्त्रिवर्गस्तं समाचरेत् ।

हस्त, वाद, मुख आदि इन्द्रियों को पीड़ित न करे या न अधिक लालन (आराम) देवें। पस्पर अविरोधी त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) का सम्पादन-अनुसरण करना चाहिए॥७३$^{१}/_{२}$॥

अनुयायात्प्रतिदिनं सवंधर्मेषु मध्यमाम् ।।७४।।
कृत्तरोमनखश्मश्रुः शुद्धवेशधरो भवेत् ।

समस्त धर्मो का प्रतिदिन समान भाव से आचरण करना चाहिए। बाल-नख, रोम का प्रतिदिन कर्त्तन करायें तथा शुद्ध वेश धारण करना चाहिए॥७४$^{१}/_{२}$॥

चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुपाशुचीन् ।।७५।।
नाक्रामेच्छकंरालौष्ठबलिस्नानभुवोऽपि च ।
नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाभिस्कन्धमभिव्रजेत् ।।७६।।
सन्दिग्धनावं वृक्षं च नारोहेद्दुष्टयानकम् ।

चैत्य, पूज्य, ध्वजा, अपवित्र छाया, भस्म, अपवित्र वस्तु, शर्करा, लोष्ठ, वति स्थान पर पृथ्वी के ऊपर से नहीं लांघना/ चलना चाहिए। दोनों भुजाओं से नदी को न तेरें, अग्निकंघे पर लेकर चलना, सन्दिग्ध नाव, वृक्ष तथा दुष्ट यान का प्रयोग (सेवन उपयोग) न करें॥७५-७६$^{१}/_{२}$॥

नासंवृतमुखः कुर्यात् क्षुतं हास्यं विजृम्भणम् ।।७७।।

अङ्गानि लोडयेन्नैव नासीतोत्कटुकश्चिरम् ।
नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्नक्तं सेवेत न द्रुमम् ।।७८।।
तथा चत्वरचैत्यं च चतुष्वथसुरालयान् ।
शून्याटवीं शून्यगृहं श्मशानानानि दिवाऽपि च ।।७९।।

सुवथ, हास्य तथा (जृम्भा के समय मुख को न संवृत्त (फेला कर); अंगों को अधिक न मोड़े (लोडयेत्); विषमासन पर न बैठें, जंघा के सहारे बहुत देर तक खड़ा न हो।

रात्रि में वृक्ष, चत्वर, चैत्य, चतुष्यक्ष, देवालय के पास न रहें। एकान्त जंगल (वन), एकान्तगृह तथा श्मसान में दिन में भी नहीं रहना चाहिए॥७७-७९॥

त्यजेद्दुष्टातपरजस्तुषारपरुषानिलान् ।
कु(कू) लच्छायानृपद्वेषिवालदंष्ट्रिविषाणिनः ।।८०।।

दुष्टातप, अतिधर्म, वर्षा एवं रूक्षता युक्त वायु का सेवन नहीं करना चाहिए। नदी तट की छाया में राजा से द्वेष, बालदंष्ट्री, विषाण (सींग) वाले पशुओं का त्याग कर देना चाहिए॥८०॥

सन्ध्यासु भोजनं स्वप्नं मैथुनाध्ययने त्यजेत् ।
गात्रवक्त्रनखैर्वाद्यं हस्तकेशावधूननम् ।।८१।।

प्रातःकाल भोजन, शयन, मैथुन तथा अध्ययन वर्जित है। शरीर, नख मुख से ध्वनि न निकाले तथा हाथ से बालों को फटकारना (हस्तकेशावधूननम्) अनुचित है।

मद्यातिसक्तिं विश्रम्भं स्वातन्त्र्यं स्त्रीषु च त्यजेत् ।
शास्त्रं नृत्यं च गीतं च वाक्यं सेवेद्विचक्षणात्॥८२॥

१. अति मद्यपान का अभ्यास न करें
२. स्त्रियों का विश्वास तथा स्वतन्त्रता का त्याग
३. शास्त्र, मीत, नृत्य गीत, विद्वानों के शास्त्रीय वाक्यों (उपदेशों) का सेवन करना हितकर॥८२॥

अत्यर्थं व्यसनं त्याज्यं कायवाग्रेतसां दमः।
स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्व्रतम्॥८३॥

अति व्यसन का परित्याग। शरीर, वाजी तथा वीर्य को वशीभूत, दूसरों (अन्य) के अकार में पर्यान्त स्वार्थ बुद्धि (अन्य उपकार में ही अपना स्वार्थ) समझना आदि सद्वृत्त के नियमान्तर्गत हैं।।८३।।

रात्रिचर्या

निशि स्वस्थमनास्तिष्ठेन्मौनी दण्डी सहायवान्।
एवं दिनानि मे यान्तु चिन्तयेदिति सर्वदा॥८४॥
दुःखभाङ्न भवत्येवं नित्यं सन्निहितस्मृतिः।
एवं कृत्स्नं दिनं नीत्वा रात्रिं यामार्धिकावधिम्॥८५॥

रात्रि चर्या

रात्रि (निशि) में स्वस्थ मन होकर। मौन धारण से, दण्डधारण करके, सहायक के साथ ठहर कर, सदैव विचार करे कि हमारे दिन इसी प्रकार व्यतीत होते रहें। यह निरन्तर स्मरण रखने से व्यक्ति को दुःख नहीं होता। इस प्रकार दूसरे (अगले) दिन की चिन्ता न करके, एक प्रहर से अधिक रात्रि को व्यतीत करना चाहिए।।८४-८५।।

व्यवायस्य विधिः निषिद्धविधिश्च

दिवासन्ध्यं वर्जयित्वा सदा पर्वदिनानि च।
रात्रौ व्यवायं कुर्वीत योषिता निजया सह॥८६॥
कुचैलां च कुशीलां च विधवां च पर स्त्रियम्।
नारीं नीचकुलोद्भूतां त्यजेत्सम्यग्विचक्षणः॥८७॥
वयोधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः स्थविरायते।
वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा यौवनत्वमवाप्नुयात्॥८८॥
ऋतुकाले तु सुरतमवश्यं कारयेद्बुधः।
स्त्रीनिःश्वासहतो ना हि दुर्भगत्वमवाप्नुयात्॥८९॥

व्यवाय (मैथुन) विधि

दिन, सायंकाल तथा पर्व दिवसों को छोड़कर, सदैव रात्रि को अपनी पत्नी के साथ संभोग करना चाहिए। विद्वान व्यक्ति मलिन वस्त्रधारिणी, दुःश्चरित्रा, विधवा, पर स्त्री तथा बीच कुल में उत्पन्न स्त्री को मैथुन हेतु त्याग कर दे।

अपने से अधिक आयु की स्त्री से संभोग न करें, अन्यथा युवा व्यक्ति वृद्ध हो

जाता है। वृद्ध व्यक्ति युवती से मैथुन करने से व्यक्ति युवावस्था को प्राप्त करता है। बुद्धिमान ऋतुकाल में (रजोनिवृत्ति के पश्चात) मैथुन करना चाहिए। अन्यथा स्त्री के निःश्वास से आहत मनुष्य दुर्भाग्य शाली हो जाता है।।८६-८९।।

ऋते वै शोडषा द्वर्षात्तथाऽतिक्रान्तसप्तते:।
स्त्रियं कामयमानस्य जायते हि बलक्षयः॥९०॥

षोडश (सोलह) वर्ष के पूर्व तथा सत्तर वर्ष के बाद स्त्री से मैथुन करने वाले व्यक्ति के बल का क्षय हो जाता है।।९०।।

ऋतुक्रमेण व्यवायस्य नियमाः

त्र्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वृष्टिनिदाघयोः।
प्रकामं तु निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे॥९१॥
शीते रात्रौ, दिवा ग्रीष्मे, प्रावृट्सु घनगजिते।
वसन्ते च दिवा रात्रौ शरत्सु सरसः स्मरः॥९२॥

ऋतुभेदानुसार मैथुन

१. वसन्त एवं शरद ऋतु : तीन-तीन दिन में
२. वर्षा एवं ग्रीष्म ऋतु : १५ दिन में
३. शिशिर एवं हेमन्त ऋतु : स्वेच्छानुसार

(उपर्युक्त तीनों में) संभोग करना उचित है।

ख. शीतकाल-रात्रि, ग्रीष्मकाल दिन तथा वर्षा में मेघ गर्जन होने पर तथा वसन्तकाल दिन तथा शरद काल में रात्रि में कामदेव सरस (उद्दीप्त) रहा करता है– संभोग हेतु उपयुक्त समय होता है।।९१-९२।।

स्वास्थ्याय विशेषकर्तव्यानि

वामशायी द्विभुञ्जानो षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
स्वल्पमैथुनकारी च शतं वर्षाणि जीवति॥९३॥

स्वास्थ्य रक्षक-वर्धक उपाय

१. वामशायी (बाँयी करवट सोना)
२. दिन-रात में दो बार भोजन (द्विभुंजान)
३. स्वल्प मैथुनकारी (संभोग कम से कम)

४. षण्मूत्री (छह बार मूत्र त्यागी)

५. द्विपुरीषक (दो बार मल त्याग)

इन नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति सौ वर्ष (शतं वर्षाणि जीवति) जीवित रहता है॥९३॥

उपसंहार:

दिनचर्या समाप्ताऽथ भोक्ता च परिवेषकः।
पानीयं भोजनं चाथ रन्धनस्योच्यते विधिः॥९४॥

इति श्रीनरवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्माविनिर्मिते क्षेमकुतूहले ग्रन्थे
दिनचर्याप्रशंसनो नाम पञ्चमोत्सवः॥५॥

उपसंहार

दिनचर्या पूर्ण हो गयी, अब भोक्ता, परिवेषक, मान योग जल, भोजन तथा भोज्यविधि आगामी उत्सव (षष्ठ) के वर्ण्य विषय हैं॥९४॥

इति हिन्दी व्याख्या सहित क्षेमकुतूहल का दिनचर्या वर्णन नामक पांचवाँ उत्सव समाप्त॥

अथ षष्ठोत्सवः

(षष्ठ प्रकरण)

भोक्तुः स्वरूपम

अथ भोजनप्रकारस्तत्र भोक्ता

स्नातः सुधौतमृदुसुन्दरशुक्लवासा-
स्तत्कालधौतचरणः प्रियपुत्रमित्रैः।
स्रग्वी प्रसन्नहृदयो रसपाकवेद्यां
भोक्ता प्रविष्य हितसात्म्यसमानवैद्यैः॥१॥

भोक्ता का स्वरूप तथा भोजन ग्रहण

भोक्ता को शुद्ध स्नात, सुन्दर वस्त्र धारण (मृदु- सुधौत-शुक्लवास) किए हुए, धौत करण (पैर धुले), माला धारी, प्रसन्न हृदय, प्रिय पुत्र मित्रों के एक साथ महानस में जाकर हितकर तथा सात्म्य भोजन (ग्रहण) करना चाहिए॥१॥

अथासनम्

भोक्तुरासनम्

मृदुतूलमये स्थूले चाररवस्त्रावगुण्ठिते।
आसने प्राङ्मुखो भोक्तोपविशेद्वाऽप्युदङ्मुखः॥२॥

भोक्ता का आसन

सुन्दर वस्त्रधारी, मदु, स्थूल, मोटे (स्थूल) आसन पर भोक्ता को पूर्वामुख आसन ग्रहण करना चाहिए॥२॥

अथ भोजनपात्राणि

तिष्ठन्ति यत्र नवकाञ्चननिर्मितानि
श्रेणीकृतानि परितस्तु कचोलकानि।
राकाशशाङ्कनवमण्डलभास्वरं यत्
क्षोणीभृतां रजतनिर्मितपात्रकं स्यात्॥३॥

अर्धार्धप्रतिमादर्शि कांस्यमादर्शवच्छुचि।
कास्यं बुद्धिप्रदं भव्यं पालाशं रुचिकृद्वरम्॥ ४॥

भोजन पात्र

भोजनालय में नव स्वर्ण निर्मित, पंक्तिबद्ध कचोलक (आलमारी) स्थित होता है वहाँ राजा का पाव रात्रि– चन्द्रमा के नवीन बिम्ब के समस्त रजत पात्र तथा अ प्रतिमादर्शी (शीशे) के समय स्वच्छ भास्य पात्र रखा हो। कांस्यपात्र बुद्धिप्रद एवं भव (सुन्दर) निर्मित पालाश (पत्तल) रुचिकृत् (श्रेष्ठ) है।।३-४।।

अथाचमनोदकम्

(भोजनकाले पेयजलम्)

उषितं पटसंपूतं सौवर्णे भाजने स्थितम्।
सव्यभागे जलं भोक्तुः स्थापितं चन्द्रवासितम्॥ ५॥

भोजन पात्र

जल उष्ण करके, वस्त्रपूर्ति पश्चात् स्वर्ण पत्र में स्थित, कर्पूर से सुगंधित जल भोक्ता के दक्षिण पार्श्व में स्थित हो।।५।।

ऋतुक्रमेण जलस्य गुण:

हेमन्ते शिशिरे चैव सरोजं वातडागजम्।
सुशीतं रक्तपित्तघ्नं तृष्णादाहरुजापहम्॥ ६॥
वसन्तग्रीष्मयोः कौपं वाप्यं नैर्झरमेव च।
सक्षारं पित्तलं कौपं दोषघ्नं चारु नैर्झरम्॥ ७॥
प्रावृट्सु कौपं दिव्यं वा क्वथितं चैन्द्रसंभवम्।
कौपं वातहरं प्रोक्तं दिव्यं दोषत्रयापहम्॥ ८॥
शरत्प्रसन्नमुदयादगस्त्यस्याखिलं हितम्।
तत्तोयं गुणवज्ज्ञेयं बल्यं दोषत्रयापहम्॥ ९॥

ऋतु के अनुसार जल

क. हेमन्त तथा शिशिर ऋतु	: सरोज या तडागज जल	: शीतल रक्तपित्तनश तृष्ण-दाह-संग हर
ख. वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु	: कौप्य, कप्य, नैर्झर जल	: क्षारयुक्त, पित्तकर, कू जल दोषनाशक एवं नैर्झर जल स्वच्छ-सुन्दर
ग. वर्षा	: कृषज, दिव्य जल या उष्ण किया, जल (अकाश का जल)	: दोषनाशक; कूपज वातनाशक; दिव्य जल त्रिदोषहर।
घ. शरद ऋतु	: उदय (अगस्त तारा के पश्चात्) स्वच्छ	: सर्वप्रकार हितकर, जल गुणवान्, बल त्रिदोषहर।

स्थालीपात्रे परिवेषस्य नियमा:

पुरस्ताद्विमलं पात्रं सुविस्तीर्णं मनोरम्।
स्थापितं पीठके शुभ्रे नाभिदेशसमुन्नते॥ १०॥
तत्र भक्तं परिन्यस्तं मध्यभागे सुसंयतम्।
सूपः सर्पिः पलं शाकं पिष्टमन्नं तु मत्स्यकम्॥ ११॥
स्थापयेद्दक्षिणे पार्श्वे भुञ्जानस्य यथाक्रमम्।
प्रलेहाद्या द्रवाः सर्वे पानीयं पानकं पयः॥ १२॥
चोष्यं सन्धानकं लेह्यं सव्ये पार्श्वे प्रदापयेत्।
सर्वं इक्षुविकाराश्च पक्वान्नं पायसं दधि॥ १३॥
पुरतः स्यापयेद्धोक्तुर्द्वयोः पङ्क्त्योश्च मध्यतः।
एवं विज्ञाय मतिमान् परिवेषप्रकल्पनम्।
ततोऽर्हो भवति प्राज्ञः सम्यक्क परिवेषितुम्॥ १४॥

स्थाली पात्र परिवेषनम्

भोक्ता के समुख भक्ति नाभि तक उच्च, श्वेत पीठिका, मनोहर, बड़ा तथा स्वच्छ पात्र रखना चाहिए। स्थाली (थाली) के मध्य भाग में ससंयुत भक्त तथा क्रम से सूप (दाल), घृत, बल (मांस), शाक तथा मत्स्यादि दक्षिण पार्श्व में परोसकर रखना चाहिए। प्रलेह आदि पदार्थ, द्रव पदार्थ, पानीय जल, दुग्ध, चोष्य, संधानक तथा लेह्य, सव्य पदार्थ। समस्त गुड निर्मित पदार्थ, पकवान, पायाल, दधि-भोक्ता के दोनों पंक्ति के मध्य भाग में स्थित करते है। इस प्रकार परिवेषक मतिमान् सुज्ञात परिवेषन (परोसने की) कला से युक्त होना चाहिए।।१०-१४।।

अथ परिवेषकलक्षणम्

स्नातश्चन्दनचर्चितः सुवसनः स्रग्वी प्रसन्नाननः
स्पष्टात्मा सुभगः प्रसन्नहृदयः श्रीकान्तपूजारतः।
स्वामिस्नेहपरः सुपाकनिपुणः प्रौढो वदान्यः शुचि-
विप्रो वा परिवेषकः सुकुलश्चान्योऽपि वा भूपतेः॥ १५॥

योग्य परिवेषक

स्नात, चन्दन आलेषित, स्वस्थ वस्त्र धारित, पुष्पमाला धारण कर्श्य, प्रस गुण, स्वस्थ आत्मा, सुन्दर, प्रसन्न हृदय, विष्णुपूजा रत, स्वामी सेवा परापण, सुपा में चतुर, युवा, दासी, पवित्र ब्राह्मण, सुकुल में उत्पन्न, अन्य (उपरोक्त गुणों से युक्त) सत्पात्र व्यक्ति राजा का परिवेषक (खाना परोसने वाला) होना चाहिए।।१५।।

स्नाता विशुद्धवसना नवधूपिताङ्गी
कर्पूरसौरभमुखी नयनाभिरामा।
बिम्बाधरा शिरसि बद्धसुगन्धिपुष्पा
मन्दस्तिमता क्षितिभृतां परिवेषिका स्यात्॥ १६॥

श्रेष्ठा परिवेषिका

स्नाता, स्वच्छ पत्रधारिणी, नवीन धूप से सुगन्धित शरीर, कर्पूर से सुगन्धित मुखवाली, सुन्दर नेत्र, पकव बिम्बी फल, शिर के बालों में सुगन्धित पुष्प (बद्ध सुगन्धित पुष्पा), मुस्कान (मन्दस्मिता) से युक्त-स्त्री परिषेविका (खाना परोसने वाली) होना चाहिए।।१६।।

अथ भक्तम्

भोजनस्य प्रकाराः

भक्तादेः पत्रशाकादेरन्नानां मत्स्यमांसयोः।
क्षीरादेर्गोधुमादेश्च प्रकारा एवमादयः॥ १७॥
वक्ष्यन्ते तत्र भक्तस्य रन्धने विधिरुच्यते।

भोजन के प्रकार—

भक्त रूप आदि, पत्र-फल-कन्द-शाक आदि, मांस, मत्स्य, दुध आदि, गोधूम आदि अनेक प्रकार के भोजन अनेक प्रकार है।।१७१/२।।

भक्तनिर्माणविधिः

वारिणा बहुशः शालितण्डुलान् क्षालितान् बहून्॥ १८॥
तक्रे संसिच्य तान् तप्ते स्थाल्यम्भसि विनिक्षिपेत्।
ततः पयो घृतं क्षिप्त्वा स्विन्नानास्त्रावयेदिमान्॥ १९॥
राजार्हं तद्भवेद्भक्तं गन्धवर्णरसान्वितम्।
एवं हि धान्यजातीनां रन्धनस्य त्वयं क्रमः॥ २०॥

भक्तपाक

शालि तण्डुल (धान के चावलों) को भलीप्रकार धोकर, तक्र से सिंचन कर, इन चावलों को भोजन पाक पात्र (उष्ण जल से परिपूर्ण) में छोड़ें तथा इसके बाद दुग्ध, घी डालकर, सब चावलों को पकानें। यह गन्ध, वर्ण, रस से युक्त राजा के योग्य भोजन तैयार हो जाता है। यही विधि धान्यवर्ग के अन्य पदार्थों को पाक करने की यही विधि अनुसरण योग्य है।।१८-२०।।

स्वेद्यं शालेयमन्नं शशिकरनिकरप्रोज्वलं सिद्धसारं
भ्राम्यद्वाष्प्यच्छलेन त्रिदशपुरसुधाधेयमाधुर्यतत्त्वत्।
अन्योन्यं नैव लग्नं परिमलभरिताङ्गरवेदीविभागं
स प्राप्नोति प्रसन्नः प्रमथपरिवृढो यस्य पुंसः सदा स्यात्॥ २१॥

ग्राह्य भक्त का सुन्दर स्वरूप

चन्द्र किरण सम उज्ज्वल, सुपरिपक्व, वाष्प भ्रायी, स्वर्ग-अमृत समान मधुर रस युक्त, परस्पर विभिन्न प्रकार की सुगन्धों से युक्त स्वर्गमयी अमृत के मधुर रस युक्त, अंगार सदृश विभक्त, शालि अन्य तण्डुलों से भक्त (भात) जिसको प्राप्त होता है, वह सर्वाधिक प्रसन्न रहता है।।२१।।

भक्तस्य गुणाः

भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं मूत्रलं लघु।
सधौतं स्त्रावितं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम्॥ २२॥
रन्धनस्य प्रकारोक्तो भक्तस्य च गुणोत्तमः।
यस्य धान्यस्य यद्भक्तं तस्य तद्गुणमावहेत्॥ २३॥

भक्त के गुण– १. अग्निदीपक, २. पथ्य, ३. तृप्तिकर, ४. मूत्रवर्धक, ५. लघु, ६. सुधौत श्रावित पथ्य, ७. विशद, ८. गुणवान्। जिस धान्य का भक्त (भात) बनाया जाता है, उसके गुण उसी प्रकार के होते हैं। यहाँ भात (भक्त) पाक का प्रकार तथा उसका उत्तम गुण बताया गया है।।२२-२३।।

अथ सूप:

तां कण्डितां दधिविमर्दितमुद्गदालिं
संसाधितां लवणगन्धसमायुता च।
ते भुञ्जते कुमुदहासकरार्धमूर्धा
येषां सदा हृदयाचारुगृहं निषण्णः॥ २४॥

सूप (दालि-दाल)

कण्डिता, सुपक्व, लवण तथा सुगन्धित वेसवर, दधि से विमर्दित मुद्ग की दाल का वह ही भोजन करते है, जिनके हृदयरूपी सुन्दर गृह में विकसित कुमुद की भाँति अर्धचन्द्र को शिरोधार्य किए भगवान शंकर (शिव) निवास करते है।।२४।।

अथ मुद्गकुल्माषा:

अर्धं विकसितं स्विन्नाः कुल्माषा मुद्गमाषजाः।
सैन्धवेन सबाह्लीकाःस्वान्नस्य तु गुणावहाः॥ २५॥
मुद्गसूपो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः।
स्वादुर्नेत्र्योऽनिलहरः कुल्माषः शुक्रवधनः॥ २६॥

मुद्ग-कुल्माष

मुद्ग (मूँग) तथा माष (उरद) आधाखिला हुआ परिपक्व कुल्माषा– की दाल, सैन्धा एवं केशर युक्त खाद्य पदार्थ से अन्न के गुणों में वृद्धि होती है।

क. मुद्ग (मूँग) की दाल लघु ग्राही, कफपित्तनाशक तथा शीतल होती है।

ख. माष (उरद) की दाल स्वादु, यक्षुष्य, वातनाशक तथा कफवर्धक होती है।।२५-२६।।

अथ माष:

माषसूपोऽथ कुल्माषः स्निग्धो वृष्योऽनिलापहः।
उष्णः संतर्पणो बल्यः सुस्वादूरुचिकारकः॥ २७॥

माषसूप-कुल्माष

माषसूप (उरद की दाल) तथा कुल्माष की दाल स्निग्ध, वीर्यवर्धक, वातनाशक, उष्ण, तृप्तिकर बल्य, स्वादु एवं रुचिकारक होती है।।२७।।

अथ घृतम्

करीषवह्निना तप्तं क्षीरं तदुषितं दधि।
तज्जमाज्यं न तत्त्वाजं नवीननवनीतजम्॥ २८॥

घृत (सर्पि)

करीषाग्नि (उपलों की आग) के पकाये हुए दुग्ध से निर्मित दधि का घृत का नवीन नवनीत (मक्खन) से निष्कासित आज घृत (बकरी के घी) के समान गुणवान नहीं कहा जा सकता।।२८।।

मञ्जिष्ठावारिरुचिसारि तनूष्मधारि
सौरभ्यचारि रुचिकारि विलोमहारि।
भुङ्क्ते नरः स खलु सर्पिरिदं नवीनं
यः पार्वतीचरणमौलिविलोलमौलिः॥ २९॥

विशिष्ट घृत

मंजिष्ठा जल (वारि) के समान आकृति युक्त तन्द्र (पतला), सुगन्धित, रुचि-कर तथा विलोमवातनाशक, इस नवीन घृत को वही व्यक्ति सेवन करता है, जो देवी पार्वती के चरणों को (कमलों) को स्वहृदय में अपने शिर पर धारण करता है।।२९।।

अथ सामान्यं घृतम्

घृतं रसायनं स्वादु पित्तानिलविषापहम्।
आयुष्यं बृंहणं शीतं पापालक्ष्मीविनाशकम्॥ ३०॥

सामान्य घृत

१. रसायन, २. स्वादु, ३. पित्त वात हर, ४. विषधा, ५. आयुष्य, ६. बल्य, ७. शीतल, ८. पाप-दरिद्रा विनाशक।

ये घृत के सामान्य गुण-प्रभाव होते है।।३०।।

अथ गव्यं घृतम्

गव्यमग्निकरं सर्पिः कफपित्तानिलापहम्।
चक्षुष्यं बृहणं शीतं विपाके मधुरं स्मृतम्॥ ३१॥

गव्य (गौ) घृत

१. जाठराग्निवर्धक, २. कफपित्तनाशक, ३. वात शामक, ४. चक्षुष्य, ५. बल्य, शीतल, ७. मधुर-विपाकी। ये गौघृत (गाय के धी) के सामान्य गुण होते है।।३१।।

अथ माहिषं घृतम्

माहिषं मधुरं पाके रक्तपित्तानिलापहम्।
सुशीतं बृहणं वृष्यं चक्षुष्यं रुचिकारकम्॥ ३२॥

माहिष (भैंस) का घृत (घी)

१. घृत पाक में मधुर, २. रक्तपित्तहर, ३. वातनाशक, ४. शीतल, ५. बल्य, ६. चक्षुष्य, ७. रुचिकर।।३२।।

अथाजं घृतम्

आज्यमाजं हि चक्षुष्यं दीपनं बलवर्धनम्।
श्वासे कासे क्षये पथ्यं लघु गव्याद्गुणावहम्॥ ३३॥

आज (बकरा की) घृत (घी)

१. चक्षुष्य, २. अग्निदीपन, ३. बल्य, ४. श्वासवर्धक, ५. कासहर (पथ्य), ६. क्षयनाशक (पथ्य)।

ये गोघृत के समान गुणवान्, गौघृत से भी अधिक गुणयुक्त होता है।।३३।।

अथान्नदृग्दोषपरिहारकश्लोका:

अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता चैव महेश्वरः।
ध्यात्वा नारायणं देवमन्नदोषैर्न बाध्यते॥ ३४॥
या दृष्टिः सर्वलोकेषु दृष्टिर्या च स्वभावतः।
आत्मदृग्दोषनाशाय संस्मरेन्नारदं मुनिम्॥ ३५॥

अन्नगत दृष्टि-दोष दूरी करण

अन्न में दृष्टि-दोष निवारणार्थ मन्त्र (श्लोक) इस प्रकार है—

अन्न ब्रह्मा है, विष्णु है तथा शंकर भोक्त हैं। नारायण देवता का ध्यान करने से अन्न को दृष्टिदोष दूषित नहीं करते। जो दृष्टि सभी संसार में है, जो दृष्टि स्वाभाविक है, आत्मदृष्टि दोष को नाश करते हैं- इसके लिए नारद मुनि का स्मरण करना चाहिए।।३४-३५।।

अञ्जनीगर्भसंभूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्।
दुष्टदृष्टिविनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्॥ ३६॥

भोजन पर दुष्ट दृष्टि का निवारण (रक्षण) करने के लिए, अंजनी के गर्भ से उत्पन्न कुमार, ब्रह्मचारी, हनुमान का स्मरण किया जा रहा है।।३६।।

पठतीत्यादिकं वाक्यं भोजनादौ भिषग्वरः।
सर्वदोषविनाशाय भुक्तं शीघ्रं यथा पचेत्॥ ३७॥

उत्तम महानसिक वैद्य भोजन के प्रारम्भ में, मुख वाक्यों (श्लोकों-पूर्व में लिखित) से समस्त दोषों के नाशनार्थ पाठ करते हैं, इससे युक्त आहार का पाचन शीघ्र हो जाता है।।३७।।

पञ्चग्रासं तु मौनेने प्राणापानादिकाश्रितम्।
अन्यद्वैद्यसहालापैः कर्तव्यं भोजनं नृपैः॥ ३८॥

राजा को चाहिए, पंच ग्रास मौन होकर पंच वायु/प्राणों-यथा प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान को स्मरण करते हुए, विशेष अन्न (आहार) राजाओं के साथ वार्तालाप करते हुए, उनके साथ भोजन ग्रहण में सहभागिता करनी चाहिए।।३८।।

अथ पर्पटः

मुद्गजीरकवाह्लीकस्वर्जिकामरिचान्विताः।
अरोचकजिगीषूर्णं पर्पटाः पुरुतो भटाः॥ ३९॥
अङ्गारभृष्टास्ते श्रेष्ठा न तु स्नेहविपाचिताः।
पर्पटा लघवो रुच्या मुद्गजा विधिपाचिताः॥ ४०॥

पर्पट (पापड़)

पर्पट (पापड़) का निर्माण जीरक केशर, स्वर्जिका क्षार तथा मरिच के साथ मुद्ग के साथ करते हैं। इसका सेवन से अरोचकनाशक सभी आहार द्रव्यों में उत्तम माना जाता हैं, जब कि स्नेह विपाचित (तैल आदि में मुनि) पापड़ (उसके समान) गुणकारी

नहीं होते। सामान्यतः मुद्ग (मँग) के पापड़ लघु एवं रुचिकर आदि गुणों को प्रदान करते है– (विधिपाचितः)॥३९-४०॥

अथ पटोलफलम्

फलं पटोलं विहितद्विखण्डं विशुद्धदर्व्याहत शुष्कपाकम्।
वाघारितं हिङ्गुकणे सहाज्ये ससैन्धवं बोधयति क्षुधां च॥ ४१ ॥
पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम्।
स्निग्धोष्णं हन्ति कासार्शोज्वरदोषत्रयकृमीन्॥ ४२ ॥

पटोल फल (परवल)

पटोल के फलों के द्विखण्डों को घृत-हिंगु में भूनकर, विशुद्ध द्रव्य, (बेसवार) तथा सैंधव लवण मिश्रित करने के साथ पकाते है (यह अग्निदीपन, पाचक, हृद्य, वृष्य, लघु, स्निग्ध, उष्ण तथा कास-अर्श-ज्वर-त्रिदोष-कृमिनाशन होता है॥४१-४२॥

अथ ताहडी

निरस्थिवेसवाराढ्यं पलं पक्कं सतन्दुलैः।
घृतार्द्रमार्द्रकैर्युक्तं नाम्ना तत्ताहडी स्मृता॥ ४३ ॥
वातपित्तहरा गुर्वी शुक्रपुष्टिप्रदा भृशम्।
गुणानां यो विशेषोऽय मांसभेदात्स जायये॥ ४४ ॥

ताहड़ी (ताहरी)

अस्थिरहित वेसवार युक्त तन्दुल (चावल) से पतन, घृत सहित (आर्द्र) तथा आर्द्रक युक्त मांस-को 'तहड़ी' नाम दिया जाता है। यह मल का आहार है। यह वात-पित्तनाशक, गुरु तथा शुक्रपुष्टिदायक हैं; ताहडी के गुण अन्य मल के गुणों (मल मुखर घटक द्रव्य) के अनुसार होती हैं॥४३-४४॥

अथ कृशरा

तन्दुलैः षष्टिसंभूतैः कण्डितैर्न च खण्डितैः।
अष्टभागयुतैर्मुद्गैः संयुक्तैर्द्वादशांशकैः॥ ४५ ॥
सार्द्रा नार्द्रा सुगन्धाना सवाह्लीका वरान्विता।
सस्नेहा कामिनीवेयं कृशरा शिशिरे हिता॥ ४६ ॥
कृशरा दुर्जरा बल्या गुर्वी वातविनाशिनी।
बलपुष्टिमलश्लेष्मपित्तविष्टम्भकृत्सरा ॥ ४७ ॥

कृशरा (खिचड़ी)

अखण्डित तन्द्वल (तण्डुल-चावल) अष्टभाग तथा मुद्ग द्वादश भाग, केशर एवं सुगन्धित द्रव्य (वेसवार), हरिद्रा मिश्रित– शुष्क या आर्द्ध पाक किया जाता है। यह आहार-द्रव्य घृत के साथ खाने से, नवयौवक (कामिनी) स्त्री के समान शिशिर (हिम) ऋतु में हितकारी है। यह दुर्जर, वस्त्र, मुद्ग, वातनाशक, बल्य, पुष्टिदा, मल-कफ-वातावरोध (आनाह-विष्टम्भ) जनक तथा सारक होती है॥४५-४७॥

अथ कर्चरी

क्षाराम्लकृतसंस्कारा शुष्का स्नेहविपाचिता।
अरोचकादिरोगाणां कचरी कण्ठकर्तरी॥ ४८ ॥
कर्चरी रुचिकृद्बल्या सुस्वाद्वी त्वतिलेखनी।
उष्णा पित्तपरा प्रोक्ता कफकृत्सारका स्मृता॥ ४९ ॥

कर्चरी (कचरी)

क्षार एवं अम्ल पदार्थो के मिश्रण से पक्व शुष्क कर्चरी बनती है। यह अरोचक आदि रोगनाशक, कण्ठ कर्चरी (गले को साफ करनेवाले) होती है। रुचि, बलवर्धन, स्वादु, अतिलेखनी (मल पतला करने वाली), उष्ण, पित्त-कफकारक तथा सारक होती हे॥४८-४९॥

अथ मूलकम्

सुकलितमतिसूक्ष्मं बालमूलस्य मूलं
लवणमथितमुच्चैः पीडितं पाणियुग्मे।
सुरबितमतिनिम्बूहिङ्गुधूपेन युक्तं
भवति जठरवह्नेस्तूर्णमुद्दीपनाय॥ ५० ॥

मूलक (मूली)

बालमूलक (छोटी मूली) के अत्यन्त सूक्ष्म (पतले) मूल में लवण मिलाकर, दोनों हाथों से मसलकर, निम्बूक स्वरस तथा भ्रष्ट हिंगु मिश्रितकर सुंगन्धित करते हैं। यह मूलक का आहार-द्रव्य तुरन्त जाठराग्नि का प्रदीपन करता है॥५०॥

मूलकं वातलं रुच्यं वीर्योष्णं पाचनं लघु।
हन्ति दोषत्रयं श्वासं सुष्टुयोगाच्च पीनसान्॥ ५१ ॥

महत्तदेव विष्टम्भिर रूक्षं दोषत्रयप्रदम्।
स्निग्धसिद्धं तदेव स्यद्दोषत्रयविनाशनम्॥ ५२॥
तत्पुष्पं श्लेष्मपित्तघ्नं फलं वातकफापहम्॥ ५३॥

वात मूलक (छोटी मूली) शाक के गुण– १. वातनि:सारक, २. रोचक, ३. उष्णवीर्य, ४. पाचक, ५. लघु, ६. त्रिद्वेष हर (रोगनाशक द्रव्यों के संयोग से), ७. श्वासवृद्धि, ८. पानसनाशक है।

मूलक (बड़ी मूली) आनाहकारक– १. रूक्ष, २. त्रिदोषवर्धक। घृत तलित मूलक (मूली) त्रिदोषहर। मूलक पुष्प कफपित्तहर तथा फल (फली) वातकफ नाशक होते हैं।।५१-५३।।

अथार्द्रकम्

भोजनाऽग्रेसदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्।
अग्निसंजननं श्रेषअठं लवणार्द्रकभक्षणम्॥ ५४॥

आर्द्रक (अदरक)

भोजन के पूर्व (आहार भक्षण प्रारम्भ करने के पहले) आर्द्रक (अदरक) खण्ड (टुकड़ों) को लवण (नमक) मिलाकर खाना सर्वद (सदैत) पथ्य, हितकर तथा लाभदायक है (भोजनाग्रे सदा पथ्यं निवणर्द्रक भक्षणम्– अन्य ग्रन्थ/ संहिता)। यह जिह्वा तथा कण्ठ का विशोधन कारक है तथा जठराग्नि का श्रेष्ठ रूप से (भलीप्रकार) प्रदीपन करता है।।५४।।

मृत्त्वचारहितमङ्कुरवच्च क्षालितं सुविमलैर्बहुतोयैः।
मिश्रितं लवणानिम्बुपयोभिर्बालमार्द्रकमुमापतियोग्यम्॥ ५५॥

मृदा एवं वल्क रहित, अंकुर सहित आर्द्रक कन्द-स्वच्छ जल से धौत-सुविमल कन्द, निम्बू स्वरस मिश्रित लघु खण्ड (आर्द्रक) भगवान् शंकर के सेवन योग्य है; यह यह स्वादिष्ट तथा सर्वजन प्रिय होती है।।५५।।

तैलासुरीरजनिसिन्धुजपङ्कसङ्गि-
प्रस्यन्दमाननवनिम्बुरसप्रसिक्तम्।
स्वादूत्तरं शिशिरवासरभोजनेषु
कस्येति वर्णनपथं खलु शृङ्गवेरम्॥ ५७॥

तैल, राजिका, हरिद्रा तथा सैंधव को निम्बुक स्वरस में आर्द्रक मिश्रित कर; स्वाद मुक्त शिशिर ऋतु में भोजन के साथ प्रार्थना का किसका विषय नहीं है। अर्थात् सेवन योग्य है।।५७।।

एके वदन्त्यमृतमस्ति पुरेसुराणामन्येऽपि चारुवनिताधरपल्लवेषु।
ब्रूमो वयं सकलवैद्यमतानुसारं जम्बीरनीरपरिपूरितशृङ्गवेरे॥ ५८॥

अमृत रस स्वादी कहते हैं कि देवताओं के नगर (स्वर्ग) में अमृत है, तथा सुन्दर स्त्री के अघर पल्लव में अमृत का वास बताया गया है (कुछ व्यक्तियों द्वारा)। परन्तु समस्त वैद्यों का मत है कि जम्बीर (निम्बूक) स्वरस में परिपूरित (लुप्त) शृंगवेर (अदरक) के अमृत से भी उत्तम होता है।।५८।।

वष्योष्णं दीपनं हृद्यं सस्नेहं लघु पाचनम्।
रोचनं प्रीणनं बल्यमार्द्रकंर परिकीर्तितम्॥ ५९॥

आर्द्रक वृष्य, दीपन, हृद्य, स्निग्ध, लघु, पाचक, रुचिकर, प्रीणन (प्रसन्नतादायक) तथा बल्य होता है।।५९।।

अथ हरीसा:

कृत्तं निरस्थि संपक्वमाज्ये स्वोपस्करान्वितम्।
मांसं गोधूमसंयुक्तं हरीसेत्याह सूदकः॥ ६०॥

हरीसा (आसा)

अस्थि रहित मांस खण्ड, उपस्कार (वेशवार) से युक्त, गोधूम के साथ घृत में पकाकर, व्यंजन को पाचक (सूदक) गण हरीसा की संज्ञा देते हैं।।६०।।

बल्या समधुरा गुर्वी शीतीष्णाऽनिलपित्तहा।
स्निग्धा शुक्रप्रदा हृद्या सरा सन्धानकारिणी॥ ६१॥

हरीसा के गुण– बल्य, मधुर, गुरु, शीतोष्ण, वातपित्तनाशक, स्निग्ध, वीर्यवर्धक, हृद्य, सर तथा सन्धानकारिणी।।६१।।

अथ मांसरन्धनविधि:

ग्राम्यस्यानूपजस्यापि जाङ्गलस्याम्डजस्य च।
बिलौकसश्च मांसानां रन्धनस्योच्यते विधिः॥ ६२॥

मांसरन्धन क्रिया

मांस को पकाने की विधि यह है कि मांस (ग्राम्यज), आनूपज एवं जांगल प्राणियों तथा अण्डज एवं विलेशय जन्तुओं के मांस का पाक किया जाता है।।६२।।

तलितं भृष्टकं स्विन्नं शुष्कं बहुरसं स्मृतम्।
तान्दूरं वण्टितं चैवं शूल्यं च पुटपाकजम्॥ ६३॥

तलित, भृष्टक, स्विन्न, शुष्क, बहुरस, तन्दूर (तान्दूर), वण्टित, शूल्य तथा पुटपाकज आदि विभिन्न प्रकार मांस पाक के होते हैं।।६३।।

तलितं त्रिविधं प्रोक्तं भृष्टकं द्विविधं स्मृतम्।
सुस्विन्नमस्थिगलितं शुष्कं तद्रसवर्जितम्॥ ६४॥
सरसं रसवज्ज्ञेयं तान्दूरं वह्निपाचितम्।
वण्टितं तु शिलापिष्टं तत्पाको बहुधा स्मृताः॥ ६५॥

तलितं मांस के तीन प्रकार हैं– भृष्ट मांस दी प्रकार का होता है। अस्थि गलित करने हेतु मांस स्विन्न, रसरहित को शुष्क तथा रसयुक्त को सुरस (सरस), अग्नि पर पकाने मांस को तन्दूर शिला-पिष्ट मांस वण्टित पाक कहते हैं। यह मांसपाक विविध प्रकार का होता है।।६४-६५।।

शूलेन पक्कं मांसं यत्तज्ज्ञेयं शूलपाचितम्।
गर्तयन्त्रेण यत्पक्कं तज्ज्ञेयं पुटपाकजम्॥ ६६॥
एवं बहुविधः पाकः सूपकारधिया कृतः।
यस्य जन्तोर्हि यन्मांस तन्मासं तद्गुणावहम्॥ ६७॥
विशेषोऽत्र यदुद्दिष्टः स ज्ञेयः सुष्ठुपाकतः।

शूल (लौह के डंडी पर पकाये मांस का प्रकार) द्वारा पक्व मांस को शूल्य या शूलपाचित मांस कहा जाता है। गर्ततन्त्र (भूधर तन्त्र) में पकाये मांस को पुटपाकज मांस कहते हैं। उस प्रकार सूदक (पाचक) के मतानुसार अनेक प्रकार के पाठ होते है। जिस प्राणी का मांस पका है, गुण इसी के अनुसार हो जाते है। परन्तु मांस में विशेष गुण उसकी पाक विधि द्वारा आता है।।६६-६७।।

मांसप्रक्षालनस्य विधिः

एवं बहुविधं मांसं प्रत्यङ्गं च पृथक्कृतम्॥ ६८॥

स्थूलातिस्थूलविहितं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं च तत्।
खण्डशः कलितं मांसं धान्यहिङ्गवम्बुना क्रमात्॥ ६९॥
क्षालयित्वा पनुर्हिङ्गुतोयमिश्र पचेत्ततः।

मांस प्रक्षालन

मांस के अंग-प्रत्यंग पृथक कर, स्थूल से सूक्ष्म खण्ड बनाकर, हिंगु तथा धान्यक जल से प्रक्षालन करते हैं, तदनन्तर हिंगु जल मिलाकर मांस का पाक (अग्निपर) करते हैं।।६८-६९½।।

इति प्रक्षालनम्

अथ मांसवाचनविधिः

हिङ्ग्वार्द्रजीरमरिचैर्यदुक्तं वेसवारकम्॥ ७०॥
तच्च तैले पचेत्पूर्वमाज्ये वा सात्म्ययोगतः।
अर्धस्विन्ने क्षिपेत्तक्रमथवा दाडिमीरसम्॥ ७१॥
सिद्धे पाके च दातव्यं चूर्णमुद्धूलनस्य यत्।

मांस का तैल या घृत से युक्त (मतानुसार/ पाचन) पात्र (कढ़ाई आदि) में तप्त कर, हिंगु, आर्द्रक, जीरक, मरिच आदि वेसवार सहित) पकाते है, तथा उसी में मांस खगु को डाल देते हैं। अर्ध पका हो जाने पर, इसमें तक्र या दाडिम स्वरस मिश्रित कहते हैं, मांस सिद्ध (पक्व) हो जाने पर मसाले का चूर्ण भलीप्रकार मिला देते हैं।।७०-७१।।

तैलपक्वमांसस्य गुणाः

मांसं तैलेन यत्सिद्धं तन्मांसं गुरु पित्तलम्॥ ७२॥
वीर्योष्णं रुचिदं वृष्यं वातघ्नं पुष्टिकारकम्।

तैल पक्व मांस

तैल के साथ पकाये मांस के गुण– गुरु (गरिष्ट), पित्तजनक, उष्णवीर्य, रुचिकर, वृष्य, वातघ्न तथा पुष्टिकारक।।७२½।।

घृतपक्वमांसस्य गुणाः

मांसमाज्येन यत्सिद्धं लघु रुच्यमपित्तलम्॥ ७३॥
अनुष्णवीर्यं बलदं हृद्यं दृष्टिप्रसादनम्।

घृत पक्व मांस

घृत के साथ पकाये मांस के गुण– लघु, रुचिकारक, पित्तशामक, शीत वीर्य, वल्य, हृद्य एवं दृष्टि प्रसादन॥७३½॥

अथ सुस्विन्नमांसरन्धनम्

सवेसवारपानीये हिङ्गुधान्यजलेऽथवा॥ ७४॥
केवले वा जले स्वेद्यं मांसं सुस्विन्नको विधिः ।
पश्चाद्वाघारितं तप्ते स्नेहे सम्यक्करालिते ।।७५।।
छमत्कारस्तथा कार्यो रुचिः स्यात्यप्रतिवेशिनाम्।
तत उद्धूलनं देयं शुद्धमांसमिति स्मृतम्॥ ७६॥

सुस्विन्न मांसरन्धन विधि

वेसवार के जल में हिंगु एवं धान्यक के जल अथवा केवल जल में मांस पकाते हैं। यह माँस को सुस्विन्न करने की किया है।

सुस्विन्न मांस (पूर्वोक्त) को उष्ण तैल या घृत में तप्त (वघार) कर, मुतलित करें। मांस को क्षमत्कार (छौंकने) की विशिष्ट रीति अपनायें, जिससे प्रतिविपीन (पड़ोस में/ निकट। या सह निवासियों) की रुचि में वृद्धि हो जाये। फिर मसाला का चूर्ण (उद्धूलन) मिलाकर, शुद्ध मांस का निर्माण करते हैं॥७४-७६॥

सुस्विन्नमांस गुणा:

सुस्विन्नं कोमलं हृद्यं बल्यं वृष्यं रुचिप्रदम्।
त्रिदोषशमनं चेति श्रेष्ठमग्निकरं परम्॥ ७७॥

गुण (सुस्विन्न मांस)

कोमल, हृद्य, बल्य, वीर्यवधक (वृष्य), रुचिकर, त्रिदोषशामक, श्रेष्ठ अग्निकर (दीपन)॥७७॥

अथ कोमलसुगन्धम्

कुठेर-पृथु-कर्चूर-गुञ्जापामार्गजस्तथा ।
कुठेरकादिजक्षारवारिणा चाशुकारिणा॥ ७८॥
पाचितं धूपितं मांसं सुगन्धमतिकोमलम्।

कोमल सुगन्ध

कुठेरक, पृथु, गुंजा, अपामार्ग– इन सभी को शीघ्र प्रवेशीक्षार-जल के संयोग मांस तथा सुगन्धित मांस, अति कोमल सुगन्धित होता है॥७८½॥

सुगन्धं रुचिकृन्मांसं बल्यं वृष्यं रुजापहम्।
अग्निसंजननं श्रेष्ठं ग्राम्यं वा जाङ्गलोद्भवम्॥ ७९॥

सुगन्ध मांस गुण

ग्राम्य या जांगल प्राणि मांस रुचिकारक, बल्य, वीर्यवर्द्धक, रोगनाशक (रुजापहम्) तथा श्रेष्ठ अग्नि संजजन (उत्तम दीपन)॥७९॥

अथाजमांसम्

तिलजतैलसुपाकपाचितं कासमर्दसुरसे विमर्दितम्।
सूपधपभवधूमधूपितं मणिमन्थमथितं त्वजापलम्॥ ८०॥
याद्दशा धातवो नृणां अजानामपि दादृशाः।
अतो धातुविवृध्यर्थमाजं मांसं प्रशस्यते॥ ८१॥

अजा (बकरी) मांस

तिल तैल में सुपक्व कासमर्द (मसाले को छोंककर) भलीप्रकार सुमर्दित, सूप (दाल) की सुगन्धित करने वाले सुगन्धित द्रव्यों के धूम से धूपित, सैंधव मिश्रण के द्वारा अजा (बकरी) का मांस निर्माण करते हैं। जिसप्रकार मनुष्य की धातुएँ है, उसीप्रकार बकरी के शरीर में धातुओं की स्थिति होती है– इसप्रकार धातुवृद्धि हेतु अजामांस को प्रशस्त (उत्तम-उत्तम) माना जाता है।८०-८१॥

अथ बर्कर:

सहिङगुनाऽऽज्येन युतं सुपक्वमजासुतस्यामिषमल्पकस्य।
एलालवङ्गोषणयोगयोगात् करोति पुष्टिं जठरानलस्य॥ ८२॥
अजासुतस्य बालस्य मांसं गुरुतरं स्मृतम्।
हृद्यं मृदुतरं श्रेष्ठं सुस्वादु बलदं भृशम्॥ ८३॥

बर्कर (बाल बकरे) मांस

बर्कर (बकरी के बालक या छोटे बच्चे) का मांस में हिंगु भ्रष्ट कर, घृत में पक्व मांस में एला, लवंग,मरिच का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करने से अग्निदीपन गुण कहता

है।। बर्कर का मांस गुरुतर, हृद्य, अधिक कोमल, उत्तम स्वादु तथा अति बल्य होता है।।८२-८३।।

अथ बर्करी

सिद्धार्थसंभवे तैले घृते चोपस्कराविन्ते।
साधितं त्वप्रसूतायाः पलमाजं गुणोत्तमम्॥ ८४॥
अप्रसूताजसंभूतं मांसं पीनसनाशनम्।
शुष्कक्कासेऽरुचौ शोषे हितमग्नेश्च दीपनम्॥ ८५॥

बर्करी

बर्करी (अप्रसूता बकरी) जिसके बद्यान हुआ हो) का मांस, सर्षप तैल एवं घृत में उपस्कार मिलाकर पकाते हैं, जो उत्तम गुणवान है। यह मांस पीनस, (दुर्गन्धयुक्त नासास्राव) नाशक है, यह शुष्क मांस अरुचि, शीष (क्षय) रोग में पश्य हितकर है, तथा अग्निदीपन होता है।।८४-८५।।

अजासुतस्य पीनस्य यौवनस्थस्य साधितम्।
घृतरामठसिन्धूत्थोपस्कैरै रसवत्पलम्॥ ८६॥
वातपित्तहरं बल्यं सुस्वादु रुचिकारकम्।
हृद्यं पीनसकासार्शोदोषघ्नं पुष्टिकृद्वरम्॥ ८७॥

अजासुत

क. तरुण बर्कर के सुत (बच्चे) का मांस– यौवनस्थ, युवा बर्कर का घृत, हिंगु, सैन्धव, उपरकर (मसाले) के साथ पकाया रसवत पल (रस-तरीदार) मांस तैयार करते है।

ख. **गुण–** वातपित्तहर, बल्य, सुस्वादु, रुचिकार, हृद्य, पीनस-कास-अर्श नाशक एवं श्रेष्ठ पुष्टिकर।८६-८७।।

अथ छिलोधिया

शूलनिष्काशिताण्ड्य मांसं कृत्तमजस्य च।
रन्धितं बहुधा सूदैराखुरादा च मस्तकम्॥ ८८॥
तन्मां मांसदं बल्यं रुच्यं पित्तानिलापहम्।
सुस्वादु मधुरं पाके किञ्चित्कफकरं सरम्॥ ८९॥

छिलोधिया (छैलेधिया)

क. स्थूल (मोटे) पतले बर्कर (बर्कर) का मांस द्विखण्डकोश निष्कासित का खण्ड-खुर से मस्तष्क तक का मांस स्विन्न (उबालकर)– रन्धित करते हैं– घृत, हिंगु सैन्धव, वेसवार (मसाला) मिलाकर, सिद्ध (प्रकार) करते हैं।

ख. **गुण–** मांसजनन, बल्य, रुचिवर्धक पित्त-वातनाशक, स्वादु, मधुर पाकी, किंचित कफकारक तथा सारक।।८८-८९।।

अथ मेषामांसम्

मेषस्य मांसं बहुधा निकृत्त सुपाचितं रामठयुक्ततैले।
सुयोजितं बल्हिजसैन्धवाभ्यां रुचिं विधत्ते भुवि सर्वकाले॥ ९०॥
मेषमांसं गुरु स्निग्धं बल्यं पित्तकफप्रदम्।
मेदःपुच्छामिषं वृष्यं कफपित्तकरं गुरु॥ ९१॥

मेष

क. मेष (भेड़) का मांस– खण्ड करके, हींग से तैल में भ्रष्ट (छोंककर), घृत में सिद्ध (पाक) करते है, फिर मरिच चूर्ण तथा सैन्धव मिश्रित करते है।

ख. **गुण–** प्रत्येक समय रुचिवर्धक, स्वादु, गरिष्ठ (विष्टमती), स्निग्ध, बल्य, पित्तकफप्रदम् । मेष तथा पुच्छ मांस वृष्य, कफपित्त कारक एवं गुरु।।९०-९१।।

अथ गाडरमांसम्

कृत्तं संपाचितं तैले घृते चोपस्कराान्विते।
मधुरं पाचनं बल्य कटूष्णं गाडरं पलम्॥ ९२॥

गाडर

गाडर का मांस के सूक्ष्म खण्डों को तैल तथा घृत में वेसवार (मसाला) मिलाकर, सुपक्व करते है। मांस मधुर, पाचक बलकारक, कटु रस तथा उष्ण।।९२।।

अथ मृगीमांसम्

मृगमातृपलं सुकोमलं शतखण्डीकृतमाज्यभृष्टकम्।
दधिसैन्धवहिङ्गुकोषणैररुचिं शीघ्रमपोहति शृतम्॥ ९३॥
मृगस्य जननी शीता असृक्पित्तविनाशिनी।
सन्निपातज्वरश्वासहरा मधुरपाकिनी॥ ९४॥

मृग

क. मृग मातृ (मृग की माता) अर्थात् हरिणी के मांस के छोटे टुकड़े (शतखण्डी) कोमल (मुलायम) को, घृत में भृष्ट (भून) कर, दधि-सैन्धव-हिंगु-मरिच चूर्ण मिश्रित करके, पाक करते हैं।

ख. यह शीघ्र अरुचि (अरुचिं शीघ्रमपोहति शृतम्) नाशक है। यह शीलता, रक्तपित्त हर, सन्निपात ज्वर एवं श्वासुरोग नाशक तथा मधुर विपाकी है।।९३-९४।।

अथ मृगमांसम्

मांसं मार्गं बहुशकलितं स्विन्नमीषच्च तोये
तप्ते स्नेहे ज़रणसहिते पाचितं शब्दमुच्चैः।
सार्द्रं सान्द्रं लवणसहितं दाडिमेनातिचुक्रं
खादन् वादन् कलयति शिरश्चन्द्रचूडोऽपि नूनम्॥ ९५॥
एणमांसं ग्राहि रुच्यं दोषत्रयापहम्।
षड्रसं बलदं पथ्यं लगग हृद्यं ज्वरापहम्॥ ९६॥

मृग

क. मृग (हिरण) के मांस के छोटे टुकड़ों से अरूप जल में उबालकर (स्विन्न) करते हैं, फिर श्वेताजीरक के साथ साथ उष्ण (तप्त) तैल या घृत में पकाते हैं (तीव्राग्नि), तथा सैन्धव एवं दाडिम (अनार) रस मिश्रित कर, मांस पाक (सिद्ध) करते हैं। यह सान्द्र-आर्द्र मृग मांस खाते हुए, डमरु (कलमारी शिराचन्द्र चूडोऽपि नूनम्) बजाते ही, भगवान शंकर भी अपना शिर में कम्पन (हिलाते) है– जो मृग मांस की अति प्रशंसा का द्योतक है।

ख. एणमांस के गुण– शीतल ग्रही, रुचिकर, त्रिदोषहर, षट्रसी (छह रसौं वाला), बल्य, पथ्य, लघु, हृद्य एवं ज्वरघ्न है।।९५-९६।।

मांसं छिक्कारजं कृत्तमाज्ये तप्ते सुभृष्टकम्।
दधिसैन्धवहिङ्ग्वाढ्यं सुधूलेनावधूलितम्॥ ९७॥
छिक्कारं मधुरं स्वादु कफपित्तानिलापहम्।
विपाकं कटुकं प्रोक्तं विशेषेणाग्निवर्धनम्॥ ९८॥

छिक्कार (मृगाल)

क. छिक्कार (मृगाल) को मांस के छोटे खण्ड (टुकड़ों) को उष्ण घृत में सुमृष्ट (भूनकर) कर, दधि-नैन्धव-हिंगु का चूर्ण (सुधूलन) मिश्रित करते हें।

ख. मृगाल मांस के गुण– मधुर, स्वादु, वात-पित्त एवं कफपित्तनाशक, कटुविपाकी तथा विशेषता अग्निदीपन है।।९७-९८।।

अथ शशकस्य मांसम्

निरस्थिकृत्तं षलमेव शाशं सहिङ्गुनाऽऽज्येन कृतं सुपाकम्।
ससैन्धवं धूलनदत्तवासं करोति कोष्ठाग्निमतिप्रकाशम्॥ ९९॥
शशः शीतो लघुः स्वादुर्ग्राही पथ्योऽग्निदीपनः।
सन्निपातज्वरश्वासरक्तपित्तकफापहः ॥ १००॥

शशक

क. शशक-शश (खरगोश) के मांस के टुकड़े (अस्थि रहित), हिंगुभृष्ट कर, घृत में सुपक्व करते हैं, फिर उसमें सैंधवयुक्त मसाले का चूर्ण (उद्धूलन) मिश्रित कर देते हैं; सुगन्धित स्वरूप का पक्व मांस।

ख. शशक मांस के गुण– शीतल, लघु (शीघ्रपाकी), स्वादु, ग्राही, पथ्य, अग्निदीपन, सन्निपात ज्वर-श्वासवृद्धि रक्तपित्त कफ नाशक।।९९-१००।।

अथ पाठीमांसम्

पाठीमांसं बहुतरघृते स्वल्पवह्नौ विपक्वं
त्रैकं चूर्णं लवणसहितं शृङ्गबेरप्रभूतम्।
मध्ये तस्मिन् क्षिपति सुतरां कर्कशे हिङ्गुनाऽऽढ्यं
तेन घ्रातं नयति सुतरामाश्रयां संप्रकाशम्॥ १०१॥

पाठी

पाठी का मांस अधिक घृत में मन्दाग्नि से पाक करके, त्रिकटु (त्रैका चूर्ण, सैंधव, आर्द्रक (अधिक मात्रा में) मिलाते हैं, तथा मांस के अर्धपक्व होने पर हिंगु (पर्याप्त) डालते हैं।

इस पाठी मांस को सूंघने मात्र से (तेन घ्रातं नयति), उसके निकटतम व्यक्तियो को अधिक प्रकाश या बल प्राप्त होता है (सुतरामाश्रयां संप्रकाशम्)।।१०१।।

पाठी सुशीतमधुरा बल्या पित्तविनाशिनी।
वातहृत्कफहाऽत्यर्थं शुक्रदा रुचिकृद्वरा॥ १०२॥

पाठी मांस के गुण

शीतल, मधुर, बल्य, पित्तशामक, वात-कफनाशक, शुक्रदा, रुचिकर (परम्)॥१०२॥

अथ साम्बरमांसम्

मांसं साम्बरसंभूतं पाचितं बहुधा घृते।
वेसवारोषणाकीर्णे हिङ्गुसैन्धवसंभृते॥ १०३॥
बलपुष्टिकरं रुच्यं विष्टम्भि गुरु पाचनम्।
साम्बरं बलदं शीतं सुस्वादु पललं मतम्॥ १०४॥
रसे पाके च मधुरं रक्तपित्तनिबर्हणम्॥ १०५॥

साम्बर

साम्बर (सावर) मृग मांस के खण्डों को हिंगु भृष्ट कर, सैन्धव-वेसवार-मरिच चूर्ण मिलाते है- इसप्रकार मांस को सिद्धकर लेते है।

सोम्बर मांस के गुण– बल्य, पुष्टिकर, शीतल एवं स्वादु रस-पाक में मधुर, रक्तपित्त शामक॥१०३-१०५॥

अथ चित्तलस्य मांसम्

असिततिलोद्भवतैलविपक्वं लवणयुतं नवहिङ्गुरसाढ्यम्।
त्रिकटुकयुक्तनिशार्द्रकमिश्रं बहुगुणचित्तलमांसमनर्घ्यम्॥ १०६॥
विचित्रशम्बरौ शीतौ गुरुस्निग्धौ कफावहौ।
रसे पाके च मधुरौ रक्तपित्तविनाशनौ॥ १०७॥

चित्तल

क. चित्तल (विशिष्ट जाति का मृग शाखिश्रृंग) के मांस-खण्डों को वृष्ण तिल तैल में सैन्धव लवण, हिंगु, त्रिकटु, चूर्ण एवं आर्द्रक मिलाकर पकाया (सिद्ध किया) मांस अति गुणवान् तथा उत्तम (बहुगुणवान्)।

ख. द्विजाति शाम्बर (विचित्र-चित्तकावर) मांस शीतल, गुरु, स्निग्ध, कफवर्धन, मधुर (रस-विपाक) तथा रक्तपित्त शामक होता है॥१०६-१०७॥

अथ रोजस्य मांसम्

तैले सुपाचितं तप्ते हिंगुसैन्धवसंयुते।
मांसं गवयसंभूतं सुस्विन्नं भूरिवारिणा॥ १०८॥
गवयो मधुरो वृष्यः स्निग्धोष्णः कफपित्तलः।
गुरुर्विदाही विष्टम्भकारको विरसः सदा॥ १०९॥

रोज (गवय)

क. रोज (गवय नील गाय) के मांस खण्डों को प्रभूत (पर्याप्त) जल में उबाल कर, तप्त (गर्म)– तैल में हींग से भृष्ट (भूनकर), सैंधानमक मिलाकर विधिवत् पाक कर लेते हैं।

ख. रोज-मांस मधुर, उष्ण वृष्य, स्निग्ध, वतपित्तजनन, गरिष्ठ (विष्टाम), गुरु, विदाही, मलावरोधक तथा सर्वदा विरस हमेशा फीका-स्वाद में हल्का) रहता/होता है॥१०८-१०९॥

अथ वराहः

वराहस्य तनुं तप्ततोयैः प्रक्षालितां मुहुः।
तृणाग्निनाऽथवा दग्धां किञ्चित्तोयेन सेचिताम्॥ ११०॥
शस्त्रेण दंशयेत्तत्र यथा निर्लोमता भवेत्।
ततस्तत्तीक्ष्णशस्त्रेण पाटयित्वा यथोचितम्॥ १११॥
गृह्णीयादामिषं तस्य पृथगङ्गविभागतः।
रन्धयेद्बहुधा ब्रध्नं प्रलेहतलनादिकम्॥ ११२॥
स्वेदनं बृंहणं वृष्यं शीतलं तर्पणं गुरु।
श्रमानिलहरं स्निग्धं वाराहं बलवधनम्॥ ११३॥

वराह

क. वराह (सुअर) सम्पूर्ण मांस युक्त शरीर की उष्णजल से बहुप्रक्षालित करके (अथवा तृणाग्नि से वराह) शरीर अंग को दहन करके) अल्प जल से पुनः प्रक्षालन करें, शस्त्र से काटकर कूल (रोम) रहित कर लेते है (निलेमिका)। तदनन्तर तीक्ष्ण शस्त्र से उचित टुकड़े कर लेते हैं (पाटन)। इस मांस द्रव्य से विविध प्रकार के कल्प (पाक) निर्माण किये जा सकते हैं, यथा- प्रलेह, तलन आदि (पाक विधि के अनुसार) बनाते है, मांस का सुपाक (रंधनेद्बहुआ ब्रघ्नम्)।

ख. **गुण–** मांसवर्धक-वृंहण, वस्त्र, शीतल, तर्पण, गुरु, श्रम, वातहर, स्निग्ध तथा बलवर्धन।११०-११३।।

अथ गोधा

गोधामुष्णजलैर्भूयः क्षालितां खण्डशः कृताम्।
स्विन्नां च तोयतक्राभ्यां क्षालितां सूक्ष्मखण्डिताम्॥ ११४॥
तलयेद्वेसवाराम्लैः प्रलेहो वा विधानतः।
विपाके मधुरा गोधा वातपित्तप्रणाशिनी॥ ११५॥
कषाया कटुका प्रोक्ता कफघ्नी बलवर्धिनी।

गोधा

क. **विधि–** गोधा मांस को उष्ण जल से बहुप्रक्षालित कर खण्ड करते हैं तथा उबालने हैं– जल तथा तक्र से पुन: प्रक्षालित कर, वेसवार तथा अम्ल रस मिलाकर, तलन करें या प्रलेह (पाक विधि अनुसार) का निर्माण कर लेते हैं।

ख. **गुण–** महार (विपाक), वातपित्तनाशक, कषाय, कटु रस, कफनाशक तथा बल्य।।११४-११५½।।

अथ कच्छपः

तप्ततोये परिक्षिप्तं सम्यगानीय कच्छपम्॥ ११६॥
तन्मांसं कर्परादग्राह्यं खण्डितं स्वल्पकण्डितम्।
पाचितं सार्षपे तैले हिङ्गुसैन्धवसंयुते॥ ११७॥
वेसवारसमायुक्ते दाडिमेन सहाम्लिते।
कच्छपो बलकृच्छीघ्र वातजिच्छुक्रकारकः॥ ११८॥
स्निग्धोष्णः प्रीणनः सद्यो विपाके कटुकः सरः।

कच्छप

क. **विधि–** कच्छप (कछुए) के मांस को उष्ण जल में डालकर, उसके अस्थि भाग को पृथक करके मांस निष्कासित कर– छोटे खण्ड बना लेते हैं। इसकों हिंगु से तैल में भ्रष्ट (छोंककर) करके, सैन्धव, वेसकार चूर्ण मिलाते हैं, फिर दाडिम रस मिश्रित बनाकर अम्ल बना लेते हैं– इस प्रकार मांस पक्व (सिद्ध) हो जाता है।

ख. **गुण–** बल्य, आशु वातरोगहारी, वृष्य, स्निग्ध, उष्ण, सद्यः प्रसन्नतादायक, कटुविपाकी तथा सारक।।११६-११८½।।

अथ प्रलेहा:

स्थूलानि मांसखण्डानि क्षालितानि च वारिणा॥ ११९॥
तप्तस्नेहे विनिक्षिप्य दर्व्या संचालयन् पचेत्।
ततस्तत्र विनिक्षिप्त लवणं जलमल्पकम्॥ १२०॥
पचेत्पटपटाशब्दं तस्मिन्मांसे प्रकुर्वति।
प्रक्षिपेद्दडिमीनीरं बहु तेन पचेत्पुनः॥ १२१॥
मांसपिण्डेषु सिद्धेषु देया शुण्ठी सजीरका।
तत उत्तार्य तन्मांसं पृथक्कुर्यात्प्रलेहतः॥ १२२॥
प्रलेहं वाससा पूतं स्यापयेदन्यभाजने।
हिङ्गुना घृतयुक्तेन धूप तत्रैव दापयेत्॥ १२३॥

प्रलेह विधान (गौरीमतानुसारेण)

मांस के स्थूल (बड़े-मोटे) खण्ड (टुकडों) को जल से प्रक्षालित करके, तप्त स्नेह में दर्वी (कलछुल) से चलाकर, पकाते हैं। फिर सैन्धव चूर्ण की अल्प जल मिलाकर; पटपटा शब्द वक होने तक, इस मांस द्रव्य का पाक करते हैं, पुन: दाडिम स्वरस डालकर एक बार फिर पकाते हैं। इसके पश्चात् जीरक तथा शुण्ठी चूर्ण मिला कर, अग्नि से उतारकर, मांस खण्डों को पृथक् कर लेते है (अन्य पात्र में स्थानान्तरित)। तदनन्तर घृत सहिता हिंगु के धूम से सुगन्धित (सुवासित) कर लेते है। यह गौरी मत के अनुसार 'प्रलेह' होता है।।११९-१२३।।

अथ पत्तलप्रलेहः

स एवाल्पामिषस्नेहः साधितः पत्तलः पुनः।
तथैव वाससा पूतो धूपितोऽपि च पत्तलः॥ १२४॥

पत्तल प्रलेह

अल्प मांस तथा स्नेह डालकर सिद्ध किया (पूर्वोक्त विधिवत्) प्रलेह की 'पत्तल प्रलेह' संज्ञा होती है। इसको सुगन्धित करने की प्रक्रिया चूर्णवत् है (वस्त्रपूत)।।१२४।।

धनञ्जय प्रलेह

मांसकूष्माण्डकदलीशृङ्गवेराणि साधयेत्।
प्रलेहविधिना सम्यक् प्रलेहोऽयं धनञ्जयः॥ १२५॥

धनञ्जय प्रलेह

मांस, कूष्माण्ड, कदली तथा शृंगवेर (आर्द्रक)– मिश्रित करके, प्रलेह विधि (पूर्ववत्) के अनुसार सिद्ध (पाक) करते हैं– इसकी 'धनञ्जय प्रलेह' नामकरण होता है॥१२५॥

अथ गौडदेशीयप्रलेहः

हिङ्ग्वार्द्रबीजपूरैलालवणैः संभृतेन च।
कुट्टितामिषपिष्टेन तक्रदाडिमबीजतः॥ १२६॥
सोषणावेसवाराभ्यां प्रलेहोगौडदेशजः।
प्रलेहो रुचिरो हृद्यः कफानिलरुजापहः॥ १२७॥
संग्राही पित्तकृत्किञ्चिछूलाध्मानगदाञ्जयेत्।

गौडदेशीय प्रलेह

क. **विधि–** मांस पिष्ट (पीठी) को हिंगु, आर्द्रक, बीजपूर, एला, लवण को दाडिम एवं तक्र के साथ–कूटकर, उसमें मरिच तथा वेसवार तैयार करते हैं– यह गौडीदेशीय प्रलेह होता है।

ख. **गुण–** रुचिकर, हृद्य, अतिपुष्टिकारक, वातपित्तनाशक, बल्य, मन्दाग्निहर तथा कनफनाशक॥१२६-१२७½॥

अथ पूरणम्

हिङ्गुधान्यजले मांसं सुन्विन्नं सूक्ष्मकुट्टितम्॥ १२८॥
संयुक्तं हिङ्गुजीरार्द्रबीजपूरैलसैन्धवैः।
घृते तप्ते परिभृष्टं धूपितं मांसपूरणम्॥ १२९॥
मांस्य पूरणं रुच्यं हृद्यं पुष्टिकरं परम्।
वातपित्तहरं बल्यं मन्दाग्निकफनाशनम्॥ १३०॥
मण्डकस्य कृतापट्टी पूरणेन प्रपूरिता।

मांसपूरण (प्रपूरण प्रलेह)

क. **विधि–** हिंगु तथा धान्यक के जल में मांस को सुस्विन्न करके, सूक्ष्म कूटकर, संतृप्त घृत में ठीक से भृष्ट करते हैं। जीरक, आर्द्रक, बीजपूर रस, एला, सैन्धव का मिश्रण (भून) करें तथा सुगन्धित बना देते हें इसका काम 'मांसपूरण' होता है।

ख. **गुण–** रोचक, हृद्य, अतिपुष्टिकारक, वातपित्तनाशक, बल्य, मन्दाग्निहर तथा कफनाशक॥१२८-१३०½॥

अथ समोसा

वेष्ट्या शृङ्गाटकाकारं सन्धि लिम्पेत्कनिष्ठया॥ १३१॥
घृते भृष्टा समोसेति नाम्ना चष्टे हि सूपकैः।
सुरुच्या वातजिद्बल्या वृष्या पित्तापहा गुरुः॥ १३२॥
विशेषोऽत्र गुणे योहि मांसभेदादिवविच्यते।

समोसा

क. **विधि–** मण्डक (गेहूँ की मैदा) की पट्टिका बनाकर, उसमें पूर्वोक्त पूरण भरकर, शृंगाटक के आकार में (कनिष्ठिकी ऊँगली से संधि भलीभाँति बन्द कर देते हैं), तथा घृत में पकाते हैं। इसको सूदक (पाचक) लोग समोसा कहते हैं।

ख. **गुण–** रुचिकारक-वातनाशक, बल्य, वीर्यवर्धन, पित्तनाशक तथा गरिष्ठ (गुरु)। इसके विशेष गुणों का विवेचन प्रयुक्त मांस के गुणों के अनुसार होते हैं॥१३१-१३२½॥

अथ पूरणप्रलेहः

मांसपूरणयोगेन लोष्ठाकारं विधाय च॥ १३३॥
स्विन्नं कृत्तं घृते भृष्टं प्रलेहविधिना पचेत्।
पूरणस्य प्रलेहो यः स ज्ञेयो वातनाशनः॥ १३४॥
श्लेष्मप्रकारकश्चैव मुखवैरस्यकृद्धरः।

पूरण प्रलेह

क. मांसपूरण के योग से, (मैदा की पट्टिका में मांसपूरण भरकर) लोष्ठाकार (ढेला) के आकार का बनाकर, स्विन्न (उबाल) लेते हैं, फिर सूक्ष्म काटकर, घृत मे भृष्टकर, प्रलेह की विधि से पाक करते हैं।

ख. **गुण—** वातनाशक, कफकारक, मुखवैरस्यनाशक तथा गुरु होता है।।१३३-१३४१/२।।

अथ शुक्लवर्णप्रलेहः

घृतवेसनधान्याकहिङ्गुभृद्दधिसंयुते ॥ १३५ ॥
वस्त्रपूतेऽर्धसंपक्के स्विन्नं मांसं विनिक्षिपेत्।
लवणं हिंगु निक्षिप्य शुण्ठीं क्षिप्त्वा सुपाचयेत्॥ १३६ ॥
एलां क्षिप्त्वाऽवतार्येत पटपूतं च धूपयेत्।

शुक्लवर्ण प्रलेह

घृत, वेसन, धान्यक, हिंगु, दधि मिश्रित कर वस्त्रपूत करते हैं, अर्धपाक जाने पर स्विन्न मांस डाल देते हैं सैन्धव, शुण्ठी चूर्ण मिलाकर सुपक्व करते हैं तथा बड़ी इलायची (बृहदैला) का चूर्ण मिश्रित कर वस्त्रपूत (छान) लेते है, तथा सुगन्धित धूप से सुगन्धित कर लेते हैं।।१३५-१३६१/२।।

अथ पीतवर्णप्रलेहः

प्रलेहः पीतवर्णोऽपि कार्यः शुक्लप्रलेहवत्॥ १३७ ॥
विशेषोऽत्र हरिद्रायाः संसर्ग कुङ्कुमस्य वा।
तप्तस्नेहे क्षिपेद्धिंगुसंयुक्तं कासमर्दनम्॥ १३८ ॥
धान्यं च लवणाजाजी धौतं मांसं ततः क्षिपेत्।
ततोऽर्धस्फुटिते मांसे दाडिमी बीजसंयुतम्॥ १३९ ॥
तक्रं शुण्ठीं विनिक्षिप्य सिद्धे हिंगु विनिक्षिपेत्।
तत उत्तार्य वस्त्रेण गालयेद्धूपयेदपि॥ १४० ॥

पीतवर्ण प्रलेह

यह (पीतवर्ण) प्रलेह, शुक्लवर्ण प्रलेह के समान बनता है; केवल इसमें हरिद्रा या कंकुम (केशर) का चूर्ण मिश्रित कर देते है। तप्त तैल में कासमर्द (छौंक या मसाला) मिलाने के पश्चात्, धान्यक-सैंधव-जीरक-धौत (धुला) मांस डालते हैं। मांस के अर्ध स्फुण्टित (आधा खिल जाने पर) अनार बीज, तक्र तथा शुण्ठी डालकर सिद्ध करते हैं, फिर (अन्त में) हिंगु (घृत भृष्ट) मिला देते हैं। फिर अग्नि से उतार कर, सुगन्धित धूपित करते है।।१३७-१४०।।

अथ हरितवर्णप्रलेहः

मेथिका कासमर्दाम्लकल्केन च करालिते।
घृते मांसं विनिक्षिप्य पचेच्छुक्लप्रलेहवत्॥ १४१ ॥
सिद्धं च गालयेद्वस्त्रैः कृत्वा वर्णप्रयोजनम्।
ताम्बूलं काष्ठजाङ्गारं देयं हरितहेतुना॥ १४२ ॥

हरित वर्ण प्रलेह

मेथिका, कासमर्द (छौक) अम्लिका कल्क से करालित, घृत में मांस (खण्ड) डालकर शुक्ल प्रलेह (पूर्ववत्) पाक करते हैं, पक्व (सिद्ध) हो जाने पर, वस्त्र धौत करते हैं। ताम्बूल तथा काष्ठमांसाद हरित वर्ण बनाने हेतु मिश्रित कर देते हैं।।१४१-१४२।।

अथ रक्तवर्णप्रलेहः

रक्तवर्णप्रलेहस्य संसिदध्यर्थं विनिक्षिपेत्।
करमर्दं दाडिमस्य स्थाने शेषं तु पूर्ववत्॥ १४३ ॥
अरुचौ रुचिदः सद्यो नानावर्णप्रसाधितः।
प्रलेहः कफवातघ्नः किञ्चित्पित्तकरः स्मृतः॥ १४४ ॥

रक्तवर्ण प्रलेह

क. **विधि—** रक्तवर्ण प्रलेह पाक हेतु, दाडिम के स्थान पर करमर्द डालते हैं। शेषविधान पूर्ववत् (शुक्लवर्ण प्रलेह के समान)।

ख. **गुण—** सद्य रुचिकारक, विविध वर्णीय प्रलेह कफ-वातनाशक तथा किंचित पित्तकारक होता है।।१४३-१४४।।

अथ भृष्टमांसम्

अङ्गारकर्पराभ्यां च शूयन्त्रे पुरेऽथवा।
भर्जनं विविधं प्रोक्तं सूपकारविशारदैः॥ १४५ ॥
जलेन स्वेदयेत्पूर्वं प्रोतं शूलेऽन्तरान्तरम्।
दध्यार्द्रहिङ्गुलवणैर्लिप्ताङ्गाराग्निना पचेत्॥ १४६ ॥
तच्छूल्यं तु सुधातुल्यं रुच्यं वह्निप्रदं लघु।
तदेवाङ्गारपक्कं तु प्रतप्तं वातनाशनम्॥ १४७ ॥

भृष्टमांसम्

क. **विधि–** सूपकार विपादों (पाक शास्त्रियों) ने अंगर आँच तथा कर्पूर (खपरी) द्वारा शूलयन्त्र (या पुर) में विभिन्न प्रकार की विधियों से मांस भूनने का विधान किया है। सर्वप्रथम जल में स्वेदन तथा शूल (लोहे की छड़ या शलाका) में कुछ अन्तर देकर मांस के खण्डों के यूथ (माला जैसे) बना लेते है, उसके बार दधि, आर्द्रक, हिंगु तथा लवण से लेप करके, इस शूल को अंगार (अग्नि) पर पकाते हैं। यह शूल्य मांस अमृत के समान हो जाता है।

ख. **गुण–** रुचिकर, दीपन, तथा लघु। यही मांस अंगार पक्व हो जाने पर उष्ण होता है तथा वात का नाश करता है।।१४५-१४७।।

अथ यकृद्भृष्टम्

स्विन्नं यकृद्घृते तप्ते दघ्नाऽऽलोड्य च भर्जितम्।
मात्रया दधिसिन्धूत्थरामठैलापरिप्लुतम्॥ १४८॥
मरिचार्द्रकसंयुक्तं सुगन्धिद्रव्यवासितम्।
गतद्रवं सुधातुल्यं परिशुष्कं तदुच्यते॥ १४९॥
परिशुष्कं स्थिरं स्निग्धं रोचनं तर्पणं लघु।
बलमेधाग्निमांसौजः शुक्रवृद्धिकरं परम्॥ १५०॥

यकृद्भृष्टम्

क. **विधि–** यकृत (क्लेजी/ कलेजा/ जिगर) को स्विन्न करके, दधि में मिलाकर, शीतल घृत में भृष्ट करते हैं। फिर मात्रानुसार दधि, सैन्धव, हिंगु, एला, मरिच चूर्ण एवं आर्द्रक को मिश्रित करते हैं, तथा सम्पूर्ण मांस द्रव्य को सुगन्धित कर लेते हैं। द्रवांश शुष्क हो जाने पर, परिशुष्क यकृत् को प्राप्त करें– इसे सुधा (अमृत) के समान कहा गया है।

ख. परिशुष्क यकृत् स्थिर, स्निग्ध, रुचिकारक, तृप्तिकर एवं लघु होता है; यह बल्य, मेध्य, मांस-ओज तथा वीर्यवर्धक (गरम) है।।१४८-१५०।।

अथ तान्दूरम्

अङ्गारपूर्णगर्तायामलग्नमवलम्बितम् ।
विहितं संभृतैर्मासं पक्कं तान्दूरमुच्यते॥ १५१॥

तान्दूरम्

अग्नि-अंगार से पूर्ण गड्ढे (गर्त) में एकत्रित कर बिना लटकाये हुए। (अलग्नमग्नविचितम्– दोलायन्त्र के समान) परिपक्व मांस को पकाने की विधि को 'तानदूरमांस' नाम दिया जाता है। यह तान्दुरी रोटी पकाने की विधि का अन्तरभेंद है, जिसमें रोटी (गेहूँ के रोटी से बनी) के स्थान पर मांस प्रयोग है।।१५१।।

अथ सुस्वादुतान्दूरम्

पचेद्गर्तान्तरिक्षस्थंलम्बि संबारसंभृतम्।
चतुर्दिङ्मण्डलाकारे पार्श्वप्रज्वलितानले।। १५२॥
विपक्कं सुरभि स्वादु तान्दूरमिति कीर्त्यते।

तन्दूर मांस पाक

एकगर्त का खात (गड्ढे) के मध्य (बीच) में संग्रह (एकत्रित) कर की लटका देते हैं, तथा चारों ओर मण्डलाकार पार्श्व में प्रज्वलित (जली हुई आँच) अग्नि में पक्व (पकाते) हैं।

यह गुणों में सुस्वाद, सुगंधित एवं स्वादिष्ट पाक 'तान्दूर मांस' नाम धारण करता है।।१५२$^1/_2$।।

अथ शूलपक्वतान्दूरम्

कोष्ठिकायां ससंभारमलग्नमवलम्बितम्॥ १५३॥
मांस विधाय बाह्याग्निज्वालया स्वेदितं वरम्।
तान्दूरं रुचिदं मांसं मृदु पथ्यतमं स्मृतम्॥ १५४॥
सद्योहतं नवं स्थूलमन्यथा दोषकारकम्।

शूलपक्व तान्दूर

क. **विधि–** कोष्ठिका (गर्त की चतुर्मिति-चारदीवारी पर) एकत्रित करके-शूल (अल्पका) में लिप्त (लगा) तथा लटकाकर, बाह्याग्नि की ज्वला (अग्नि की लपट) से मांस को भलीभाँति स्वेदित करते है– इस पाक की 'शूल पक्व तान्दूर' नाम दिया जाता है।

ख. **गुण–** रुचिकारक, मृदु, पथ्यतम (बहुत हितकर। नवीन स्थूल तान्दूर मांस विशेष लाभप्रद होता हैं; अन्यथा यह दोषजनक हो जाता है।।१५३-१५४$^1/_2$।।

अथ पुटपाकः

सूक्ष्मंयत्कुट्टितं मांस संभृतं वेसवारकैः॥ १५५॥
छन्नं पत्रैर्मृदा सर्वं वेष्टितं वर्तुलाकृति।
पचेत्प्रज्वलिते गर्ते कणिक्यान्तितवेष्टितम्॥ १५६॥
पचेदेवं बीजपूरनारङ्गदलवेष्ट्यपि।

पुटपाक

मांस के सूक्ष्म खण्ड-कुट्टित वेसवार के साथ पीसकर-पक्ववृत्त, मृन्हिका से वर्तुलाकृति में वेष्टित (बटलोही के आकार का गोला) तथा प्रज्वलित गर्त में रखकर, ऊपर से अग्नि (किरीषआदि से) प्रदान करते हैं- पाकार्थ। इसको बीजपूर तथा नारिकेल पत्रों से भी अविष्टित (ढ़कने) करने की विधि हैं, जिससे मांस पाक सम्यक् रूप से सिद्ध हो जाये॥१५५-१५६१/२॥

अथ फलपुटपाकः

पिष्टं साम्लमनम्लं वा संभृतं कोरिते फले॥ १५७॥
पूर्ववत्पुटितं वह्नौ विपचेत्फलसज्ञंकम्।
पुटपाकेन यन्मांसं पाचितं पाचकं हि तत्॥ १५८॥
सोष्मं तद्‌गुणवज्ज्ञेयं शीतं शुष्कं तु दुर्जरम्।

फलपुटपाक

क. **विधि–** मांस पिष्ट को, अम्ल सहित या रहित– चीरकर (फल के मध्य में अवस्थित कर), पूर्ववत् पुटपाक विधि का अनुसरण करते हैं– यह 'फलपुटपाक' की क्रिया है (पूर्ववत्)।

ख. **गुण–** पुटपाक का उष्मा सहित (गर्भ) सेवन करने से गुणवान सिद्ध होता है; शीतल एवं शुष्क पुटपाक दुर्जर (देर से पचने वाला) मांस व पाक हो जाता है॥१५७-१५८१/२॥

अथ राजिकमांसम्

मांसस्य पिष्टिका कृत्वा वेसवारेण योजिताम्॥ १५९॥
बहुधा क्रियते तस्या वटिकावटकादिकम्।
आम्रचिञ्चीफलाकारं लड्डुकावटकादिकम्॥ १६०॥

शृङ्गाटकफलाकारं यथाबुद्धिप्रकारजम्।
कृत्वाऽपि बहुधाकारं स्वेदितंघृतभर्जितम्॥ १६१॥
वेसवारयुते तक्रे क्रथिते च मनोरमे।
निक्षिप्य चालयेदीषदुत्तार्यैलादिवासिते॥ १६२॥
एवं तु बहुधा कार्यो मांसमुद्गप्रलेहकः।
प्रलेहो वातजिद्‌बल्यस्तक्रमांसभवो रसः॥ १६३॥
प्रीणनो व्रणयुक्तानां शुक्रदः क्षीणरेतसाम्।

राजिक मांस

क. **विधि–** वेसवार मिश्रित मांस पिष्ट से विभिन्न प्रकार के वटक, वटिका, आम्र-चिंचा फलाकार, लड्डू आकार, शृंगारकाकार तथा स्वेच्छानुसार वटक बनाकर, स्वेदित करते हैं, फिर घृत में भृष्ट– वेसवार युक्त, तक्र में डालकर, एला से सुगन्धित काढ़ी (क्वचित) में डाल देते है, फिर दर्वीचालन ((अग्नि से हटाकर)। इस रीति से मांस तथा मुद्ग के विभिन्न प्रकार के प्रलेह-पुटपाक निर्मित हो सकते हैं।

ख. **गुण–** प्रलेह वातनाशक तथा बल्य। तक्र एवं मांस निर्मित रस (शोरकातरी) व्रणी तथा क्षीर्ण वीर्य पुरुषों के लिए लाभकर है॥१५९-१६३१/२॥

अथ मांसेण्डरी

पिष्टे मांसेण्डरीं स्विन्नां मासूरे पर्णवेष्टिाम्॥ १६४॥
मरिचैः स्नेहलवणैः संस्कुर्याद् धूपयेत्ततः।
मांसस्येण्डरिका प्रोक्ता गुर्वी वृष्याऽनिलापहा॥ १६५॥
विशेषोऽत्र गुणानां यः स ज्ञेयो मांसभेदतः।

मांसेण्डरी

क. **विधि–** मसूर पिष्ट में मांस पूरण कर, 'मांसेण्डरी' निर्माण करते हैं, जिसको पत्राविष्ट कर स्विन्न करते हैं, फिर मरिच चूर्ण, स्नेह तथा लवण मिश्रित कर पक्व (सिद्ध) करते है; तदनन्तर सुगन्धित धूपाचित्त कर लेते है– इस 'मांसेण्डरी' नाम देते हैं।

ख. **गुण–** गुरु (विष्टभ), कृष्य तथा वातनाशक। विशेष गुण 'मांसेण्डरी' में प्रयुक्त मांस द्रव्यानुसार होता है॥१६४-१६५१/२॥

अथ कुट्टितं मांसम्

मांसमस्नायु संगृह्य सूक्ष्मं कृत्वा त कुट्टितम्॥ १६६॥
वेसवारसुगन्धं तत्स्वेदितं पाचितं भवेत्।
कुट्टितं पाचितं मांसं तन्मांसं लघु दीपनम्॥ १६७॥
तत्रापि जाङ्गलं श्रेष्ठं जाङ्गलेष्वपि पक्षिणाम्।

कुट्टित मांस

क. **विधि–** स्नायु रहित मांस के सूक्ष्म खण्डों का कुट्टन (कूटकर) सुगन्धित द्रव्य मिलाकर स्वेदन कर पकाते हैं। यह 'कुट्टित मांस' कहा जाता है।

ख. **गुण–** यह लघु, पाचक तथा दीपन होता है। यह जांगल पक्षियों में उत्तम मांस माना जाता है।।१६६-१६७१/२।।

अथ मधुरमांसपाक: (क्षीरामृतम्)

घृताम्बुस्वेदिते मांसे शुण्ठिचूर्णं विनिक्षिपेत्॥ १६८॥
दुग्धं च शर्करोपेतं पश्चात्सौगन्धिकं न्यसेत्।
नातिसान्द्रं नातिशुष्कमिदंक्षीरामृतं स्मृतम्॥ १६९॥
क्षीरामृतं बहुरसं न चोष्णं नातिशीतलम्।
वातपित्तहरं वृष्यं सुस्निग्धमतिकोमलम्॥ १७०॥

मधुर मांसपाक (क्षीरामृतम्)

क. **विधि–** घृत तथा जल के साथ पाक्व मांस, में शुण्ठी चूर्ण डालते हैं, फिर दुग्ध तथा शर्करा का मिश्रण कर देते हैं, तथा अन्त में सुगन्धित द्रव्य से सुवासित कर देते हैं। यह पाक, अधिक गाढ़ा (सान्द्र) तथा न अधिक शुष्क (सूखा) होना चाहिए।

ख. **गुण–** यह बहुरसयुक्त पाक, न अधिक उष्ण एवं न अधिक शीतल, वातपित्त-नाशक, वृष्य, सुस्निग्ध तथा अतिमृदु।।१६८-१७०।।

अथ मुण्डरन्धनम्

समग्रं विदहेन्मुण्डमग्निा स्थूलहेतिना।
प्रक्षाल्य तप्तपानीयैर्लोमनाशाय घर्षयेत्॥ १७१॥
खण्डयित्वा पचेत्तैले घृते चपस्करान्विते।
मुण्डामिषं वातहरं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम्॥ १७२॥

पशोर्यस्य हि यन्मुण्डं तन्मांसैकगुणावहम्।
मुण्डस्य विधिना पाच्यं चरणं तु प्रलेहितम्॥ १७३॥
चरणं वातहृद्बल्यं वृष्यं पित्तहरं गुरु।

मुण्डरन्धन विधान

क. **विधि–**पशु के सम्पूर्ण मुण्ड के तीव्र अग्नि में दहन करें, तप्त जल में- जल से प्रक्षालन हेतु- रोगों (बालों) का घर्षण करके उनका निष्कासन कर देते हैं। तत्पश्चात मुण्ड के खण्ड करके स्नेह में पाक करते हैं- लवण तथा उपस्कार मिलाकर, पाक कर लेते हैं। मुण्ड का भलीभाँति पकाते हैं तथा चरण (पैरों) को प्रलेह की भाँति पकाना चाहिए।

ख. **गुण–** यह (मुण्ड मांस) वातनाशक, स्निग्ध, गुरु (गरिष्ठ) पशु के गुणानुसार मुण्ड का भी गुण रहता है। पशु चरण (पक्व) वातनाशक, हृद्य, वृष्य, पित्तशामक तथा गुरु होता है।।१७१-१७४।।

अथान्त्ररन्धनम्

अन्त्रिकां छिद्रमार्गेण धौतां निर्मलावारिणा।
श्रृङ्खलासंज्ञितां कृत्वा स्वेदयेद्धिङ्गुवारिणा॥ १७४॥
कर्तितां वेसवाराम्लैस्तलयेद्वा प्रलेहयेत्।
अन्त्रिका गुर्विकाऽरूक्षा वातहृच्छ्लेष्मकारिणी॥ १७५॥
नि:सारा विरसोद्गारा तद्वज्ज्ञेया तु घण्टिका॥ १७६॥

आन्त्राधनम्

क. **विधि–** आन्त्र के छिद्र को स्वच्छ जल से प्रक्षालन करके, शृंखलाकार में हिंगु-जल से स्वेदन करते हैं। तत्पश्चात् काटकर वेसवार तथा वेसवार तथा अम्ल जल मिलाकर, तेल या प्रलेह बना लेते हैं।

ख. **गुण–** अन्त्रिका मास गुरु, अरुक्ष (स्निग्ध), वातनाशक, कफवर्धक, क्षार-रहित, विरस, उद्गार जननी। इसी प्रकार घण्टे का (घाँटी) का भी गुण होता है।।१७४-१७६।।

अथ राजिकामांसम्

स्विन्नं तक्राम्बुना मांसं घृतभृष्टं सुवासितम्।
सुचूर्णं सैन्धवोपेतं दधिराजिकया युतम्॥ १७७॥

मांसासुरी तु वातघ्नी लघ्वी रुच्या बलप्रदा।
कफघ्नी पित्तला किञ्चित्सर्वाहारम्य पाचनी॥ १७८॥

राजिका मांस

क. **विधि–** तक्र जल में मांस खण्ड का स्वेदन (उबाले) मांस को घृत में भृष्ट (भून) कर सुवासित (सुगन्धित द्रव्यों) द्वारा करें, तदनन्तर राजिकाचूर्ण (राई), सैंधव, वेसवार, दधि मिश्रित करके, राजिका मांस का पाक करते है।

ख. **गुण–** यह वातनाशक, लघु, रजिकारक, बलप्रद, कफघ्नी, चिन्तल तथा किंचित् सर्वाहार पाचनी है।।१७७-१७८।।

अथ मांसपूरितवातकिम्

वृन्तमुत्तार्य वार्ताकं कोरितं पूरयेद्दृढम्।
कुट्टिताख्येन मांसेन पूरितं पूरणेन वा॥ १७९॥
ततस्तेनैव वृन्तेन तच्छिद्रं मुद्रितं पुनः।
सन्धिं कणिक्यया लिप्य प्रलेहविधिना पचेत्॥ १८०॥
मांसवृन्ताकसंभूतः प्रलेहो वातनाशनः।
रुचिपुष्टिकरश्चैव बल्यो वृष्यो रुजापहः॥ १८१॥

क. **विधि–** वृन्ताक (बैंगन) के वृत्त तथा कोरित (गूदा) का निष्कासन कर, उत्तम कुट्टित मांस-पुटपाक पक्व वेसवार युक्त की दृढतापूर्वकपूरित करते हैं अथवा मृंगु-धान्यक के जल में स्वेदन किए मांस को, सूक्ष्म कुट्टित कर, हिंगु-जीरक, आर्द्रक, निम्बू, एला, सैन्धव मिलाकर, संतृप्त घृत में भृष्ट करें तथा सुगन्धित मांस से पूरित करते हैं।

ख. **गुण–** मांस वृन्ताक प्रलेह बाह्य, रुचिकर पुष्टिदा, बल्य, वृष्य तथा रोगनाशक।।१७१-१८१।।

अथ पक्षिमांसप्रकार:

त्वक्पक्षरहितं मांसं स्विन्नं तक्रेण वा जले।
अथवा पुटपाकेन स्वेदितं वाऽथ दार्विके॥ १८२॥
शलकास्थं पचेदग्नौ दधिसैन्धवहिङ्गुभिः।
संस्कृतं मरिचैलाभिरेतत्पक्वतमं स्मृतम्॥ १८३॥
अथवा स्वेदितं मांसं पाचितं वैसवारिकम्।

घृते द्रवे वा विरले प्रलेहविधिवत्पचेत्॥ १८४॥

पक्षिमांस

क. **विधि–** पक्षियों के चर्म-पक्ष निष्कासित कर, तक्र या जल में स्वेदन करके, काष्ठ या लौह शलका पर रख (लगा) कर, सैन्धव एवं हिंगु के साथ मरिच-एला का चूर्ण डालकर पाक करते हैं। इस भलीभाँति पक्व मांस की पथ्यतम मानते हैं अथवा स्विन्न (उबले) मांस को वेसवार मिश्रित कर, घृत या द्रव में पृथक्-पृथक् प्रलेह का पाक किया जाता है।।१८२-१८४।।

अथ महाबलपाक:

कृत्वा पक्षविहीनं तद्बीजपूरार्द्रसैन्धवैः।
लवङ्गैलायुतं पेष्यं लोष्टीकृत्य सुस्वेदितम्॥ १८५॥
ततः कृत्तं शलाकास्थं भृष्टकं स्यान्माबलम्।

महाबलपाक (महाबलभूरिपाक)

क. **विधि–** पक्ष विहीन पक्षी में, बीजपूर स्वरस, आर्द्रक सैन्धव चूर्ण के साथ, लवंण-एला-चूर्ण मिश्रित करके- जोष्टीकृत (सिल पर घीस लेते हैं) तथा फिर गोलक बनाकर, स्वेदन किया जाता है। तदन्तर काटकर शलाका पर रख (लगा) कर, अग्निभृष्ट कर लेते हैं– इसी को महाबल या महाबलभूरिक पाक कहा जाता है।।१८५½।।

अथ बलभूतिपाक:

त्वक्पक्षरहितं स्विन्न गुम्फितं चान्तरान्तरम्॥ १८६॥
शलाकायां च संपाच्यं भृष्टोपस्करसंयुतम्।
शूल्यं सर्वोत्तमं मासं लघु रुच्यमपित्तलम्॥ १८७॥
कफवातहरं श्रेष्ठं सर्वपाकोत्तमोत्तमम्।

बलभूतिपाक (महाबलभूरिपाक)

क. त्वक् (चमड़ी) तथा पक्ष (पंख) रहित पक्षी-मांस (के छोटे-टुकड़ों की) को स्विन्न करके, शलाका में गृथित। गुण्ठित (माला की तरह बाँधकर) करके पकाते हैं, फिर उपस्कर (वेसवार) सैंधवसहित, भृष्टकर (भून लेते) हैं।

ख. यह भृष्ट शल्य मांस सर्वोत्तम माना जाता है। लघु, रुचिकारक, पित्तनाशक,

कफ-वातनाशक के रूप में श्रेष्ठ, तथा सर्वपाकों में उत्तमतम श्रेणी का है।।१८५-१८७$^{१}/_{२}$।।

अथानूपजम्

स्वेद्यमानूपजं मासं लुञ्चितं भर्जितं मनाक्॥१८८॥
क्षालितं वारिणाऽत्यर्थं वेसवारेण संयुतम्।
रन्धितं बहुधा भुक्तौ स्वेदितं वारिणा भृशम्॥१८९॥
सुस्विन्नं खण्डितं सर्वमङ्गाङ्गेऽस्थिविवर्जितम्।
तप्तमाज्ये सवाह्लीके बेसवारसमन्विते॥१९०॥
भर्जितं पाचितं तोयैः पूर्ववत्स्वेदसंभवैः।
प्रलेहतलने वाथ शूले वा बहुधा पचेत्॥१९१॥
आनूपं बलकृन्मांसं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम्।
धान्याङ्कुरचरा येऽत्र तेषां मांसं लघूत्तमम्॥१९२॥
विपाचितास्तित्तिरिवर्तिकाद्याः कपिञ्जला लावकगोतकाश्च।
एकैकशो द्रव्यचयानुयोगान्मण्डूकाकरूपा कथिता सुधानाम्॥१९३॥
उदकस्थलजातानां विधिरुक्तस्तु रन्धने।
पक्षिणो यस्य यन्मांसं तन्मासं तद्गुणावहम्॥१९४॥

आनूपदेशजपक्षी मांस

क. **विधि–** आनूप (निम्न) देशज पक्षी के चर्म-पक्ष निष्कासित मांस की अल्प भृष्ट कर, जलप्रक्षालन-स्वेदन करते हैं, फिर उपस्कार (वेसवार-लवण सहित) मिश्रित कर, शुष्क पाक करते हैं, पुनः जल में स्वेदन करके, समस्त अंगों से अस्थियाँ निकालकर, संतप्त घृत में (हिंगु सहित) उपस्कार के साथ) भूनते हैं, तथा स्वेदन जल (पूर्व में अवशिष्ट) में पाक करते हैं। इसको प्रलेह के समान, तलकर शूल पर कई प्रकार से पाक करके, निर्माण किया जा सकता है।

ख. **गुण–** आनूप देशज पक्षी का मांस बल्य, स्निग्ध एवं गुरुतर। धान्यांकुर चर पक्षी का मधुर, सुपाकी तथा उत्तम। तित्तिर, वर्तिक, वर्तिक, कपिञ्जल, लावक, कपोतक आदि पक्षियों के मांस से– अनेक द्रव्यों के संयोग से– अमृत के मण्डूक के समान। माना गया है (अर्थात् अमृत के समान गुणकारी)।

जल तथा थल के निवासी पक्षियों के मांस की विधि उपरोक्त है, जिस पक्षी के

जो मांस के गुण होते हैं, उसीप्रकार के उसके कल्पों (पाकों) के गुण उसी के समान होंगे।।१८८-१९४।।

अथ तित्तिरिः

तित्तिरिर्वर्णदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः।
श्वासकासहरः कृष्णस्तस्माद्गौरोऽधिको गुणैः॥१९५॥

तित्तर-तित्तिरि

तित्तिर का मांस वर्णदायक, ग्राही, हिक्का-श्वास-त्रिदोष-कास नाशके। कृष्णतित्तिर की अपेक्षा श्वेत तित्तिर का मांस अधिक गुणवान् ।।१९५।।

अथ वर्तीरः

वर्तीरोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः।
सुरुच्यः शुक्रदो बल्यस्ततोऽल्पा वर्तिका स्मृता॥१९६॥

वर्तीर

वर्तिर (वर्तीर-बटेर) के मांस के गुण– यह हृद्य, शीतल, स्निग्ध, अग्निदीपन, शीतल; ज्वर-त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, वृष्य तथा बल्य होता है। वर्तिका (स्त्री बटेर) के मांस के गुण अल्प होते हैं।।१९६।।

अथ लावकः

लावो हृद्यो हिमः स्निग्धो ग्राही वह्निप्रदीपनः।
पांसुलः श्लेष्मलस्तेषा मुष्णीवीर्योऽनिलापहः॥१९७॥
गौरकः कफवातघ्नो रूक्षो वह्निप्रदः परम्।
पौण्ड्रकः पित्तकृत्किञ्चिल्लघु श्लेष्मश्रमापहः॥१९८॥
दर्भरो रक्तपित्तघ्नो हृदामयहरो हि सः।
शीतलो रुचिकृद्द्रव्यः पथ्यदः शीघ्रपाचनः॥१९९॥

लावक

लावक (लावा) के मांस के गुण– यह हृद्य, शीतल, स्निग्ध, ग्राही, दीपन, पांसुल तथा कफकारक होता है। इन पक्षियों का मांस उष्णवीर्य होने से वातनाशक होता है। गौरवर्णीय लावा का मांस कफवातनाशक, रूक्ष, उत्तम अग्निवर्धन है। पौण्ड्र देशज लावा का मांस पित्तवर्धक, किंचित् लघु, कफघ्न, श्रयहर होता है। दर्भर लावा (मांस)

रक्तपित्तनाशक, हृद्रोगनाशक, शीतल, रुचिकारक, उततम पथ्य (हितकर) तथा लघु (शीघ्रपाकी) होता है॥१९७-१९९॥

अथ कपोत:

कपोतको गुरुः स्निग्धो रक्तपित्तानिलापहः।
संग्राही शुक्रलः शीतः सुस्वादूरुचिकारकः॥ २००॥

कपोत

कपोत के मांस का गुण– गुरु, स्निग्ध, रक्तपित्त, वातनाशक, संग्राही, वृष्य, शीतल, स्नायु एवं रुचिकारक होता है॥२००॥

अथ मयूर:

मायूरं पाचितं मांसं घृते स्वोपस्करान्विते।
ईषल्लवणसंयुक्तं मरिचैलासमन्वितम्॥ २०१॥
मायूरं मुष्णं काषायं कफानिलहरं गुरुः।
वर्षाकाले न तत्सेव्यं दुष्टकीटाहिभक्षणात्॥ २०२॥

मयूर

क. **विधि–** मयूर का मांस उपस्कार (मसाला) आदि के साथ घृत में पाक करते हैं; इसमें अल्पलवण, मरिच, एला चूर्ण मिश्रित करते हैं।

ख. **गुणः–** उष्ण, कषाय, कफ, वातनाशक, तथा गुरु (दुष्पच) होता है। वर्षाकल में मयूर का मांस निषिद्ध है, क्योंकि इस समय दुष्ट कीटों, सर्पों का भक्षण करने के कारण मयूर– मांस दूषित हो जाया करता है॥२०१-२०२॥

अथ हिताहितम्

सद्योहतं भवेन्मांसं व्याधिहारि सदाऽमृतम्।
वयःस्थमकृशं सात्म्यमन्यथा परिवर्जयेत्॥ २०३॥
वृद्धानां दोषलं मांसं बालानां बलदं गुरु।
च्युतगर्भा गुरुर्योषिद्गर्भो गर्भवती तथा॥ २०४॥
स्वयं मृतमबल्यं स्यादतीसारकरं गुरु।
विषान्मृतानां मांसं तु दोषत्रयरुगावहम्॥ २०५॥
विहङ्गेषु पुमाञ्छ्रेष्ठः श्रेष्ठा स्त्री पशुयोनिषु।

पश्चिमार्घो लघुः पुंसां स्त्रीणां पूर्वार्धमाधिशेत्॥ २०६॥
तुल्यजातिस्वल्पदेहा महादेहेषु पूजिताः।
अल्पदेहेषु शस्यन्ते ये स्युर्विपिनचारिणः॥ २०७॥

हिताहित

हितकर तथा अहितकर मांस का विवेचन (वर्णन) किया जा रहा है।

क. सद्यभृत पशु-पक्षी का मांस रोगनाशक एवं अमृत के समान प्रभावकारी होता है, आदुष्य तथा शारीरिक दौर्बल्पहर तथा सात्म्य होता है।

ख. इसके विपरीत (बिम्ब से मृत पशु-पक्षी का मांस) हानिकर होने से, परित्याग होता है।

ग. सामान्यतः पशु-पक्षी मांस, दोषोत्पादक, अत्यन्त बलदायक एवं गुरु दुष्पाचक होता है।

घ. च्युतगर्भा (गिरे हुए गर्भ) वाले/ वाली मादा, (स्त्री जाति) के। की पशु-पक्षी का मांस गुरु (कठिनाई से पाचक होता है। इसी प्रकार (गर्भवती) मादा का मास मृद होता है।

ङ. स्वयं मृत पशु-पक्षी का मांस दुर्बल, अतिसारकारक एवं गुरु हुआ करता है।

च. विषाक्तप्रभाव से मृत पशु-पक्षी त्रिदोषजनक तथा रोग जनक होता है।

छ. पक्षी मांस श्रेष्ठ तथा पशु योनि में मादा का मांस उत्तम माना जाता है।

ज. स्त्रियों के अग्रभाग तथा पुरुषों में पृष्ठभाग (पशु-पक्षी) ग्रहणीय होता है तथा लघु (पुरुषमांस) माना गया है।

झ. स्थूल शरीर के पशु-पक्षी की तुलना में, सूक्ष्म (छोटे) शरीर के पशु-पक्षी का मांस गुणों में होता है। अल्पदेह वाले (पशु-पक्षी) की अपेक्षा विपिन (वनों मे) विचरण करने वाले का मांस श्रेष्ठ हुआ करता है॥२०३-२०७॥

चेष्टावता परं मांसं हृद्यं रुच्यं लघु स्मृतम्।
देहमध्यं गुरु प्रायः सर्वेषां प्राणिनां मतम्॥ २०८॥
पक्षक्षेपाद्विहङ्गानां तदेव वरमुच्यते।
गुरूम्यण्डानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम्॥ २०९॥

ये मृगा विहगास्तोयदूरावासप्रचारकाः।
तेऽनभिष्यन्दिनः सर्वे विपरीता अतोऽन्यता॥ २१०॥
जलानूपभवाः सर्वे जलानूपचराश्च ये।
गुरुभक्ष्या गुरुतरं तेषां मांसमुदीरितम्॥ २११॥

क. चेष्टावान् पशु-पक्षी का मांस गुण- हृद्य, रुच्य, लघु

ख. देह मध्य मांस गुण- प्राय, गुरु

ग. पक्षी (पंख) मिलाने (पशु-पक्षी) के कारण पक्षी- मांस उत्तम

घ. सर्वप्राप्ति अणु तथा ग्रीवा- गुरु

ङ. जलीय पशु-पक्षी (निवास-विचरणकर्त्ता)- अ अभिष्यन्दी

च. जल के निकटस्थ पशु-पक्षी का मांस- अभिष्यन्दी (पूर्ण के विपरीत)

झ. जलीय प्रदेश- अल्प (निम्न) प्रदेशज तथा विचरणकर्त्ता प्राणियों का मांस- अधिक गुरु (दुष्पाच्य)।

धान्योत्पत्तिप्रचाराणां लघु स्याल्लघुपक्षिणाम्।
ऊरुस्कन्धोदरं मूर्धा पादौ पाणी कटी तथा।
दृष्टित्वग्यकृदन्त्राणि गुरूण्याहुर्यथोत्तरम्॥ २१२॥
ग्राम्यं मांसं वनजमथवाऽनूपजं वा बिलौकं
श्वेतं पीतं हरितमरुणं पाचितं सूपकारैः।
तल्यं शूल्यं सरसमधुरं स्वेदितं वाटितं वा
यस्य प्रायो यदभिरुचितं स्तूयते तेन तद्धि॥ २१३॥

क. धन्योत्पत्तिदेशजश्चपि (विचरक) लघु पक्षी मांस- लघु

ख. प्राणियों के उरु, स्कन्ध, उदर, मूर्धा, पाद, हस्त, कटि, नेत्र, त्वक् (चर्म) तुल्य यकृत एवं आन्त्र (का मांस)- उत्तरोत्तर गुरु

ग्राम्यज, वनजद्ध आनूपन, विसौक (विलेशम) निवासी, श्वेत-पीत-हरित-अरुणवर्णीय पशु-पक्षी के मांस को पाच करें। सूपकारों द्वारा विभिन्न प्रकार से तलित, शस्त्र पका, सरस, मधुर, विदित या वाटित (वण्टित) पर सिद्ध मांस- इनमें जो मांस उसकी कचि के अनुसार सुग्राह्य अभिलिखित है, वह प्राय: उसी (भोक्ता) मांस की प्रशंसा (स्तुति) करना स्वाभाविक है।।११२-११३।।

भक्तादिमांसपर्यन्तं सर्वमुक्तं मया भृशम्।
अथ मत्स्यभवा भक्ष्या उच्यन्ते सप्तमोत्सवे॥ २१४॥

इति श्रीनरवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्मविनिर्मिते क्षेमकुतूहले ग्रन्थे मांसप्रशंसनो नाम षष्ठोत्सवः।।६।।

उपसंहारात्मक रूपरेखा

इस उत्सव (प्रकारण) के अन्तर्गत भक्त (भात) में मांस तक्र पाक की विधि तथा गुणों का विवेचन मैंने किया है। आगामी सप्तम उत्सव (प्रकरण) में मत्स्यज भक्ष्य पदार्थों के पाक (निर्माण) तथा गुणावली प्रस्तुत की जायेगी।।२१४।।

इति हिन्दी व्याख्या सहित क्षेमकुतूहल का षष्ठ उत्सव समाप्त।।

अथसप्तमोत्सवः

(सप्तम् प्रकरण)

अथ मत्स्यमांसप्रकार

मत्स्यखण्डानि संघृष्य क्षालयेत्प्रथमं जले।
ततो वेसनतक्राभ्यां बहुशः क्षालयेत्पुनः॥ १॥

मत्स्य मांस निर्माण

मत्स्य (मछली) का साम्यक सघर्षण तथा खण्डित कर, जल से प्रक्षालन करते हैं, फिर वेसन (चणक्य सूक्ष्म चूर्ण) तथा तक्र (मट्ठा) क साथ बहुशः प्रक्षालन (धोते) करते है॥१॥

अथ गन्धनाशनम्

हरिद्राशुण्ठिधान्याककटुतैलेर्विमर्दयेत् ।
पक्षाल्य हिङ्गुना लिम्पेद् गन्धस्तेनोपशाम्यति॥ २॥

मात्स्य गंध निवारण

प्रक्षालित मत्स्य मांस खण्डों को हरिद्रा- शुण्ठी-धान्यक-सर्षप तैल साथ विमर्दन करके, प्रक्षालन तथा हिंगु लेप का आवरण करें- इस क्रिया से मत्स्यगत गंध का शमन (निवारण/दमन) हो जाता है॥२॥

अथ मत्स्योत्तमरन्धनम्

तप्ततैले क्षिपेद्धान्यं कासमदं सहिङ्गुकम्।
भृष्टं मत्स्यं सलवणं तक्रं क्षिप्त्वा पुनः पचेत्॥ ३॥
अर्धपक्के क्षिपेदाम्रसिद्धचूर्णं सनागरम्।
दग्धं हिङ्गु विनिक्षिप्य साधयेन्मत्स्यमुत्तमम्॥ ४॥

मत्स्योत्तमरन्धन (मत्स्य पाक विधि)

सुप्रक्षालित, गंधविहीन, खण्डशः (सुसंधर्षित) मत्स्य मांस की, संतप्त तैल में,

धान्यक-कासमर्द (मसाला या छोंक), हिंगु भृष्ट के साथ करते (भूनते) हैं। इस मत्स्य को लवण सहित तक्र में पुनः पाक करते हैं, अर्धपकवान में, आम्र चूर्ण (अमचूर) शुण्टी चूर्ण मिला कर घृत संतप्त हिंगु डालकर, मत्स्य का पाक (सिद्ध) करते हैं॥३-४॥

अथ मत्स्यप्रलेहः

मांसप्रलेहवत्कार्यः प्रलेहो मत्स्यसंभवः।
आदौ तैले खरे पक्कं सर्वमन्यद्धि पूर्ववत्॥ ५॥
वर्णस्य करणे देयं पूर्वोक्तं द्रव्यकं हि यत्।
उद्धूलनं सुगन्धाय दातव्यं पूर्वमीरितम्॥ ६॥

मत्स्य प्रलेह

मांस प्रलेह के समान मत्स्य प्रलेह निर्माण विधि है, परन्तु मत्स्य खण्डों को खरपाक तैल में पाक कर लेते हैं (अन्य विधि मांस प्रलेह वत्) मत्स्य प्रलेह के वर्णीकरणार्थ, पूर्वोक्त द्रव्यों (वंकुम तथा रक्तचन्दन) का मिश्रण करते हैं, तथा सुगन्धित बनाने हेतु सुंगन्धिद्रव्यों का उद्धूलन (चूर्ण) का संयोग कर देते हैं॥५-६॥

अथ मत्स्यखण्डप्रलेहः

सम्यक्पक्षालितं मत्स्यं वेसवारेण वेष्ठितम्।
तप्ततैले क्षिपेत्खण्डं हिङ्गुसैन्धवमिश्रितम्॥ ७॥
प्रलेहविधिवत्साध्यो मत्स्यखण्डप्रलेहकः।

मत्स्य खण्ड प्रलेह

सुप्रक्षालित मत्स्य मांस खण्ड के वेसकर से आवेष्टित कर, संतप्त तैल मे छोड़ते हैं, हिंगु तथा सैन्धव मिलाकर प्रलेह विधि से पाक करते है॥७½॥

अथ मत्स्यपिष्टिका

गतत्वक्कण्टको मत्स्यो वेसवारेण संयुतः॥ ८॥
शिलायां पेषितो भूयः प्रोच्यते मत्स्यपिष्टिका।
तैले विपाचयेत्पश्चाच्चतुर्थांशाम्लसंयुतम्॥ ९॥
वेसवारेण च युतं शिलायां पेषयेत्पुनः।
अनया पूर्ववत्कार्या मासस्येव प्रकारकाः॥ १०॥
वटिका वटकाद्याश्च सूपकारधियोचिताः।

मत्स्यपिष्टिका

त्वक्-कण्टकरहित मत्स्य (खण्डों) को वेसवार मिश्रित कर, शिलापिष्ट करते हैं, जिसे तैल में पाक कर होते हैं। फिर अम्लपदार्थ (चतुर्थांश) वेसवार (उपस्कार-मसाला मिलाकर, पुनः शिला पर पीसकर, मत्स्यपिष्टिका से (पूर्ववत्) विभिन्न प्रकार के पदार्थ- वटी, वटक आदि सूपकार (पाचक) की बुद्धि द्वारा निर्माण किए जा सकते है। इसे मत्स्यपिष्टिका कहते हैं॥८-१०१/२॥

अथ मत्स्यपूरणम्

तक्रेण स्विन्नं मत्स्यस्य खण्डं प्रक्षाल्य पेषयेत्॥ ११॥
बीजपूरार्द्रमरिचहिङ्गुसैन्धवजीरकैः ।
संयुक्तं कुटतैलाढ्ये घृते पक्त्वाऽथ चूर्णयेत्॥ १२॥

मत्स्यपूरण

मत्स्य मांस खण्ड सुप्रक्षलित की शिलापिष्ट (पत्थर पर पीस कर लेते है; इसमें बीजपूर- भृष्ट हिंगु-सैन्धव-जीरक का चूर्ण, कटुतैल या घृत में सिद्ध (पाक) करते हैं। इसे मत्स्यपूरण कहते हैं॥११-१२॥

अथ मत्स्यपुटपाकः

गतत्वक्क्षालितं मत्स्यं कदलीपत्रवेष्टितम्।
मृदा लिप्तं पुटे षक्कं संस्कृतं दाडिमादिना॥ १३॥
वरो मत्स्यः पुटे पक्को जीरतण्डुललेपितः।
तविकायां पुनः पक्त्वा संमिश्रो मरिचादिना॥ १४॥

मत्स्यपुटपाक

मत्स्य खण्ड-सुप्रक्षलित एवं चर्मरहित- कन्दली पत्र आवृत्त-मृत्तिका लेपित, को पुटपाक यन्त्र में दखकर (पुटपाक विधि से पाक) करते हैं। तत्पश्चात् दाडिम स्वरस से संस्कृत करते हैं। इस पुटपाक उत्तम मांस को जीरक तथा तण्डुल के कल्क से लेपित करके, पुनः लविका (कटपार्क) में पुनः पाक करके, मरिच-शुंठी, हिंगु, सैंधव आने (चूर्ण) का मिश्रण करके, पाक (सिद्ध) करते हैं॥१३-१४॥

अथ करालमत्स्यः

करालविधिना भृष्टं मुद्गपिष्टेन लेपितम्।
बृहन्मत्स्योदरात्खण्डं रन्धयेत्तलनादिना॥ १५॥

मगरल मत्स्य

कराल विधि से भृष्ट बृहत् मत्स्य के उदर-खण्ड के मुद्ग पिष्टी में मिश्रित करके, तलन-भर्जन-स्वेदन आदि विधियों के अनुसार सिद्ध (पाक) करते हैं- इसे 'मरगल मत्स्य' पाक कहा जाता है॥१५॥

अथ रोहितः

रोहितोदरकण्डाश्च कासमर्देन मर्दिताः।
कटुतैलपरिभृष्टा हिङ्गुसैन्धवयोजिताः॥ १६॥
शकलं पिष्टसंभूतं रोहितं दधिमर्दितम्।
वेसवारान्वितं पाच्यं प्रलेहविधिना भृशम्॥ १७॥

रोहित मत्स्य

क. **विधि-** रोहित (रोहू) मत्स्य (मछली) उदर-खण्डों को कासर्मद (मसालाओं) मर्दन करके, स्वर्ण तैल में भृष्ट करें तथा हिंगु-सैन्धव मिश्रित करें। इस द्रव्य का दधि में मर्दित कर (उपस्कार-वेसवार) मिलाकर प्रलेह विधि से पाक कर लेते हैं॥१६-१७॥

अथ गुणाः

रोहितस्योत्तमं देहं प्रलेहनावलेहितम्।
सोऽश्नातीह नरः पूर्वजन्मवैनायको ध्रुवम्॥ १८॥
रोहितः प्रवरो मत्स्यो नातिपित्तकरो गुरुः।
वातहा पुष्टिदो हृद्यः स्निग्धः पथ्यो समीरिणाम्॥ १९॥

गुण

रोहित मांस प्रलेह विधि (अवलेह) से भक्षण करने वाला मनुष्य, अवश्य ही (पूर्वजन्म का) विनायक स्वरूप होता हैं, उत्तम रोहित मत्स्य नातिपित्तकर, गुरु, वातघ्न, पुष्टिकर, हृद्य, स्निग्ध तथा वातज रुग्णों का पथ्य (हितकर) है॥१८-१९॥

अथ पालाशिमत्स्यः

पालाशिखण्डं तिलतैलयुक्तं विपाचितं सैन्धवकासमर्दैः।
हिङ्ग्वार्द्रधात्रीफलचूर्णकीर्णं नवं नवं रोचकमातनोति॥ २०॥

पालाशिर्बलदा वृष्या वातहा पित्तकृत्सरा।
गुर्वी कफकरा चोष्णा मेदः शुक्रविवर्धिनी॥ २१॥

पलाशि मत्स्य

क. **विधि–** मत्स्य (पलाशि) खण्डों को सैन्धव, कासमर्द (उपस्कार) के साथ, तिल तैल में पाककरके, हिंगु-आर्द्रक-धात्रीपत्र फल चूर्ण मिश्रित करते हैं। यह पलाशि मत्स्य (सिद्ध) पाक, नवरोचक होता है।

ख. **गुण–** यह बल्य, वातघ्न, पित्तजनन, सारक, गुरु, कफकारक, उष्ण, मेदा, वीर्यवर्धक होती है।।२०-२१।।

अथ पाठीनः

पाठीनः खण्डितः शस्त्रैर्वेसवारसमन्वितः।
कटुतैले परिभृष्टो हिङ्गुतक्रेण योजितः॥ २२॥
पाठीनः कफकृद्बल्यो निद्रालुर्वार्तनाशनः।
मांमाशी वातरक्तस्य कारकः शुक्रधारकः॥ २३॥

पाठीन मत्स्य

क. **विधि–** पाठीन मत्स्य (मछली विशेष) शस्त्र द्वारा खण्डित, के वेसवार युक्त, हिंगु–तक्र के साथ, सर्षपतैल पर पक्व करते हैं।

ख. **गुण–** कफकारक, बल्य तथा वातनाशक। पाठीन मांस भोक्ता को वात-रक्त कारक तथा वीर्यधारी होता हैं।।२२-२३।।

अथ मङ्गूरिका

मङ्गूरी मुण्डरहिता कटुतैले सुभर्जिता।
माणिमन्थनिशायुक्ता हिङ्गुना धूपिता च सा॥ २४॥
मङ्गूरी वातहा पथ्या रुच्या वृष्या बलप्रदा।
अग्निसञ्जननी हृद्या तद्वदुक्ता च भृङ्गिका॥ २५॥

मङ्गूरिका मत्स्य

क. **विधि–** मङ्गूरिका (मंगुरिका) मत्स्य का मुण्ड निष्कासित कर, सर्षण तैल में भृष्ट करके, लवण-हरिद्रा चूर्ण-हिंगु धूपित करते हैं।

ख. **गुण–** यह विशिष्ट मत्स्य वातनाशक, मध्य, रुचिकर, वृष्य, बल्य, अग्निदीपन तथा हृद्य होती है। यही सिगी मत्स्य का गुण हैं।।२४-२५।।

अथ गुण्डी

पुच्छशीर्षेण रहिता कासमर्दविमर्दिता।
हिङ्गुतैले च संतप्ता गुण्डीमत्स्यस्य खण्डका:॥ २६॥
गुण्डी वातहरा बल्या वृष्या पथ्याऽग्निवर्धिनी।
सुरुच्या शुक्रदाऽत्यर्थं किञ्चित्कफकरा सरा॥ २७॥

गुण्डी मत्स्य

क. **विधि–** गुण्डी मत्स्य को पुच्छ-शीर्ष रहित अवस्था में, कासमदि (मसाला–वेसवार) मर्दन करते हैं, हिंगु से भृष्ट कर संतप्त तैल में भृष्ट करें– यह गुण्डी मत्स्य का खण्ड होता है।

ख. **गुण–** वातनाशक बल्य, वृष्य, पथ्य, अग्निदीपन,, सुरुचिकर, शुक्रप्रद, अल्पपित्तकर तथा सारक।।२६-२७।।

अथ मत्स्यमण्डकम्

मत्स्यस्य पिष्टिकां कृत्वा पर्णस्थां मण्डलाकृतिम्।
आधारेण समुत्स्विन्ना संयुक्ता धूलनेन तु॥ २८॥

मत्स्यमण्डक

मत्स्य पिष्टी पत्र में रखकर, मण्डलाकृति बनायें तथा आधार काष्ठ पर रखकर स्वेदन करते है, फिर उद्धूलन चूर्ण मिश्रिण करते हैं।।२८।।

अथ मत्स्येण्डरी

कासमर्दीयचूर्णेन मत्स्यपिष्टीं नियोजिताम्।
भर्जितां कटुतैलेन कुर्यान्मत्स्येण्डरी च सा॥ २९॥

मत्स्येण्डरी

कासमर्द (वेसवार-मसाला) के साथ मत्स्य (मछली) पिष्टी (पीठी) को सर्षप तैल में भर्जित करते (भून लेते) हैं। इस पाक को 'मत्स्येण्डरी' नाम है।।२९।।

अथ सूक्ष्ममत्स्याः

भर्जितास्तिलतैलेन सर्वसंभारसंभृताः।
सूक्ष्ममत्स्याः स्वादुरसा दोषत्रयनिबर्हणाः॥ ३०॥
परं सूक्ष्मास्तु ये तेषु सर्वे ते पुंस्त्वनाशनाः।

सूक्ष्म मत्स्य

क. **विधि–** सूक्ष्म मत्स्य (छोटी मछलियों) को तिल तेल में भर्जित कर, संभार (मसाला) आदि मिश्रित करके पाक करते हैं।

ख. **गुण–** मधुर रस तथा त्रिदोषनाशक। अतिसूक्ष्म मत्स्य पुंसरण को हानिकारक॥३०-$^1/_2$॥

अथ मत्स्यसामान्यगुणाः

मत्स्या बलप्रदा वृष्या गुरवः कफपित्तलाः॥ ३१॥
उष्णाभिष्यन्दिनः स्निग्धा बृंहणाः पवनापहाः।
हृदोद्भवा बलकरा न तु स्वल्पजलोद्भवाः॥ ३२॥
हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः।
मधौ ग्रीष्मै च काले च नदीचौण्ड्यतडागजाः॥ ३३॥
शरत्सु नैर्झराः सर्वे वर्षोत्थाः सर्वदोषदाः।

विभिन्न प्रकार की मत्स्य के सामान्य गुण-कर्म

मत्स्य (मछलियों) के विभिन्न भेद, जाति एवं उनके पाक (पूर्वोक्त) के विभिन्न गुण-कर्म तथा आमयिक प्रयोगों का सामान्यतः (साररूप) वर्णन प्रस्तुत है–

क. बल्य, वृष्य, गुरु, कफपित्तकारक, उष्ण, अभिष्यन्दी, स्निग्ध, बृंहण (मांसजनन) तथा वातनाशक– मत्स्य के सामान्य गुण।

ख. अगाध (गहरे) जल के मत्स्य बलकारक, अल्प (कम गहरे) जलाशय के मत्स्य गुणवान् नहीं होते।

ग. हेमन्त ऋतु जन्य कूपजल मत्स्य, शिशिर ऋतु जन्य सारस (तालाब) मत्स्य, वसन्त-ग्रीष्मऋतु जन्य नदी, पौण्ड्य तथा तदाग (तालाब) के मत्स्य तथा शरदऋतु जन्य नैर्झर (झरने) मत्स्य हितकर।

घ. वर्षाऋतु जन्य सर्वप्रकार के मत्स्य सर्वदोष प्रद॥३१-३३$^1/_2$॥

मांसस्य बहुधा प्रोक्ताः प्रकारा रन्धने बुधैः।
सूपकाधिया कृत्वा मत्स्यस्य च ततोऽधिकाः॥ ३४॥

मांस के विविध प्रकार–

विद्वान (पाक विद्या के ज्ञाताओं) ने मांसपाक (सिद्ध) करने के अनेक रूप

प्रकार, पाचक (सूपकार) स्वबुद्धि (ज्ञान-अनुभवानुसार) के आधार पर निर्देश किया है, उससे भी अधिक मत्स्य पाकों का उल्लेख किया गया है॥३४॥

ओदनादि हि पयोन्तभोजनं मत्स्यमांसजनितं च यच्छ्रुतम्।
नाद्यभोजनयतेर्विमत्रणे तत्कथं खलु मयाऽनुर्णितम्॥ ३५॥

श्रुत भोजनातिरिक्त पाक

भात (ओदन) से पयोन्तभोजन, मत्स्य एवं मांस से निर्मित होने वाले भोजन के प्रकार, जो कुछ श्रुत (सुना भी–लेखक द्वारा), जो वर्तमान के भोजन सामग्री (प्रकरण) में समावेश नहीं होते हैं, फिर भी उनका (मैंने) किसी प्रकार वर्णन करने का प्रयास किया है॥३५॥

मत्स्यमांसभवः पाको मयोक्तः सप्तमोत्सवे।
षड्विधानां तु शाकानां प्रकारस्तदनूच्यते॥ ३६॥

इति श्रीनरवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्माविनिर्मिते क्षेमकुतूहले ग्रन्थे
मत्स्यमांसप्रशंसनो नाम सप्तमोत्सवः॥७॥

उपसंहारात्मक रूपरेखा

मैंने (लेखक ने) सप्तम उत्सव (समापनावन सत्र) में मत्स्य तथा मांस से निर्मित अनेक प्रकार के पाक (व्यंजनों) का वर्णन कर दिया है, अब आगे अष्टम उत्सव में षड्विध (छह प्रकार) शाकों के निर्माण विधि के विवरण का विषय प्रतिफल है॥३६॥

इति हिन्दी व्याख्या सहित क्षेमकुतूहल का मांसपाक
वर्णन नामक सप्तम उत्सव समाप्त॥

अथाष्टमोत्सवः

(अष्टम् प्रकरण)

अथ शाकप्रकारः

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं मूलं तथैव च।
शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरुं विद्याद्यथोत्तरम्॥ १॥

शाक के भेद

शाक छह प्रकार के होते हैं, जिनके स्रोत सहित नाम इस प्रकार हैं– इन रसकों में उत्तरोत्तर गुरु (गरिष्ट-विष्टमी-दुष्वाच्य) होत हैं–

१. पत्रशाक, २. पुष्पशाक, ३. फलशाक, ४. नालशाक, ५. कन्दशाक, ६. मूलशाक॥१॥

अथातः पत्रशाकस्य सामान्यतलने विधिः।
ततोऽन्येषां च वक्तव्यः प्रलेहादेरपि क्रमः॥ २॥
हिङ्गुजीरयुते तैले क्षिपेच्छाकं सुशोभितम्।
लवणं चाम्रचूर्णादि सिद्धे हिङ्गूदकं क्षिपेत्॥ ३॥
इत्येवं सर्वशाकानां तलने क्रथने विधिः।

पत्रशाक

इसके बाद पत्रशाक की सामान्य पाक विधि (तलने की क्रिया) वर्णन की जायेगी; तथा असके बाद अन्य शाको का पाक की विधि का उल्लेख किया जायेगा, जिसमें प्रलेहादि समाविष्ट होता है।

शाक का भलीप्रकार प्रक्षालन करते हैं, तथा संतप्त तैल में हिंगु तथा जीरक से भर्जित कर देते है, फिर लवण एवं आम्रचूर्ण (आमचूर) आदि अम्ल पदार्थ मिश्रित कर देते हैं। यह द्रव्य सिद्ध (पका) हो जाने पर, हिंगुजल डालते है। यह समस्त प्रकार के पत्रशाक का पाक करने की सामान्य विधि (तल-स्विन्न-सिद्ध) होती है॥२-३½॥

वास्तुकं काकमाची च तन्दुलीयं पुनर्नवा॥ ४॥
चुञ्चुकं नालिका पाठा पच्यन्तेऽम्लेन तद्बुधैः।

वास्तुक, काकमाची, तण्डलीय, पुनर्नवा, चुञ्चुक, नालिका एवं पाठा– इन समस्त शाक द्रव्यों के बुद्धिमानों द्वारा अम्लरस के साथ पाक किए जाते हैं।

कासमदों मेथिका, प्रफुन्नाट एवं चणक– इनका शाक अम्ल रहित जल में मिश्रित कर, विद्वानगण इन द्रव्यों से शाक का भलीप्रकार से पाक करते हैं। इसी प्रकार वृन्ताक, कूष्माण्ड, पटोल आदि फलों के तलन की विधि का अनुकरण करना चाहिए॥४½॥

कासमर्दी च मेथी च पुन्नाटं चणकोद्भवम्॥ ५॥
रसार्द्रं त्वम्लरहितं पक्वं सम्यग्विचक्षणैः।
एवं वार्ताककूष्माण्डपटोलादिफलेष्वपि॥ ६॥
तलने विधिरुद्दिष्टो विशेषो यः स उच्यते।
तप्ततैले क्षिपेच्छाकं वास्तुकादिसुखण्डितम्॥ ७॥
लवणं तोयमल्पं च क्षिप्तं सिद्धेऽर्धमात्रकम्।
सधान्यवेशनं तक्रे गालितं क्रथितं क्षिपेत्॥ ८॥
ततः शुण्ठीं जीरकं च हिङ्गुं दत्त्वाऽवतारयेत्।
इत्थमेवापरस्यापि वर्णस्य करणे यदि॥ ९॥
तत्सर्वं स्वेच्छया देयं वर्णकृत्प्रथमं स्मृतम्।

सर्वशाक सामान्यतः विधि

फल शाक के तलने की विशेषता हैं। वास्तुक आदि शाकों को स्वच्छकर, भली प्रकार काट लेते हैं, इसे संतप्त तैल में थोड़ाकर, लवण तथा अल्प जल मिला देते हैं। अर्धपक्व हो जाने पर, धान्यक के साथ, बेसन को तक्र के साथ मिलते है तथा पाक करते हैं। तदनन्तर, शुठी, जीरक तथा भृष्ट हिंगु मिश्रित कर, अग्नि से उतार लेते हैं।

इसी प्रकार अन्य शाकों को उपर्युक्त विधि से, वर्णकारक इन सभी पदार्थों को स्वेच्छानुसार छोड़ दिया करते हैं॥५-९½॥

एवं यत्कठिनं शाकं कषायं कटुतिक्तकम्॥ १०॥
तदुत्स्वेद्याम्बुना पूर्वं तक्रेण तदनन्तरम्।
तप्ततैले विनिक्षिप्य रन्धयेच्च यथेच्छय॥ ११॥

अन्य शाक-विधि

इस प्रकार कठिन, कषाय, कटु एवं तिक्त रस प्रधानशाकों को जल के साथ स्वेदन (स्वित्र) करके, पुन: तक्र के साथ विदल करते हैं ग्रथा फिर सन्तृप्त तैल में डालकर स्वेच्छा से शाक का निर्माण (पाक) करते हैं॥१०-११॥

अथ वृन्ताकम्

सर्वासां शाकजातीनां वृन्ताकं शाकनायकम्।
अत: शाकक्रमं त्यक्त्वा प्रथमं नायकं वदेत्॥ १२॥
भोजनं धिगवृन्ताकं वृन्ताकं धिगवृन्तकम्।
सवृन्तं धिगतैलाढ्यं तैलाढ्यं धिगरामठम्॥ १३॥

फल शाक

वृन्ताक

सर्वप्रकार के शाक जातियों (प्रकार-मेद) में वृन्ताक वैगन/बैंगन) का शाक उत्तम (श्रेष्ठ) है इसीलिए इसको 'शाकनायक' कहा गया है (सर्वेसां शाकजातीनां वृन्ताकं शाकनात्रकम्)। इस करण, शाक-क्रम की उपेक्षा करके, सर्वप्रथम फलशाक के रूप में वृन्ताक के फलशाक पर प्रकाश डालते है।

महत्ता

'वृन्ताक' का व्यंगात्मक वैशिष्ट्य निरूपित है– वृन्ताकरहित भोजन को धिक्कार है (भोजनं धिगवृन्ताकं' आदि), वृत्तरहित वृन्ताक के धिक्कार है; अति तैल रहित वृन्तयुक्त वृन्ताक को धिक्कार है, अधिक तैल युक्त वृन्तसहित वृन्ताक हिंगु रहित होने के स्थिति में धिक्कार की श्रेणी में परिगणित होता है– अर्थात् वृन्ताक को 'धिक्कार' की अवस्था मे ले जाने वाली सभी स्थितियाँ की बहिर्ष्क्रिमण अथवा पूर्ति आवश्यक है (जिससे वृन्ताक की गुणवत्ता से पूर्णतया स्वाभाविक कोटि में अवस्थित किया जा सके)॥१२-१३॥

वार्ताकं कलितं सुवृन्तसहितं संस्वेदितं काञ्जिके
शुद्धेऽम्ले घृतधान्यकार्द्रक निशासंपर्कितं पाचितम्।
सक्षारं मरिचावचूर्णितमथो तैलेन हिङ्ग्वा लस-
द्वासं दारुमयेऽपि पुंसि कुरुते घ्रातं क्षुधाबोधनम्॥ १४॥

शाकपाक : विविध प्रकार

वृन्ताक (फल) को सवृन्त (भेंटी सहित–फलवृन्त के साथ) काटकर, कांजिक एवं शुद्ध अम्लपदार्थ से स्वेदित करके, घृत-धान्यक-आर्द्रव-हरिद्रा का चूर्ण मिश्रित करके पाक करते हैं, फिर भृष्टहिंगु (भुनी हींग) सुगन्धित कर तैल में डालते हैं। इस रीति से पक्व (सिद्ध) वृन्ताक शाक की केवल गन्ध (घ्रातं क्षुधाबोधनम्) से काष्ठ-निर्मित पुरुष (दारुमयेऽपि पुंसि) को भी भूख लग जाती है (क्षुधाबोधनम्)॥१४॥

वृन्ताकखण्डा यदि तेऽत्र संवृतस्तैलप्लुता हिङ्गुरसेन युक्ता:।
मरीचधूलीपरिधूसराङ्गा भवनि पुण्योदयराजपुंसाम्॥ १५॥

वृन्ताक फल खण्डों को तैल में हिंगु रस में भृष्ट (भूनकर), मरिच चूर्ण मिश्रित कर पक्व (सिद्ध) किया शाक, पुण्यवान् राजाओं को भाग्य से प्राप्त करता है॥१५॥

हरितं त्वामवार्ताकं कटुतैले सरामठे।
सिद्धं मरिचसंबद्धं कोष्णमेतद्रुचिप्रदम्॥ १६॥

हरित वर्णीय वृन्ताक को हिंगु में भृष्ट कर, सर्षप तैल में पाक (सिद्ध) कर लेते हैं, फिर मरिच चूर्ण का मिश्रण करते हैं। इस विधि से पक्व वृन्ताक शाक, कोष्ण (अल्पगर्भ) शाक रुचिकारक (रुचिप्रदम्) प्रभाव करता है॥१६॥

वार्ताककर्तला लिप्ता: शुण्ठीधान्यकजीरकै:।
घृते भृष्टा: समरिचा हिङ्गुधूपेन धूपिता:॥ १७॥

वृन्ताक फल खण्डों को शुण्ठी-धान्यक-मीरक से (पूर्ण रूप में) लेपन करके, वृत में भृष्ट करके मरिच चूर्ण मिश्रित करते हैं, फिर हिंगु धूम से सुगन्धित करें। वह शाक रुचिवर्धन करता है॥१७॥

सवृन्तवृन्ताकतुरीयखण्डं सरामठं तप्तघृते सुपाचितम्।
ससैन्धवं चुक्रकसाकसंयुतं सपोलिकं पूर्वजपुण्यदापितम्॥ १८॥

सवृन्त वृन्ताक के सु (तुरीय) खण्डों को, हिंगु युक्त संतृप्त घृत में पक्व, सैन्धन एवं चुक्रशाक से युक्त शाक की उपलब्धि, पूर्वजन्म के पुण्यकर्म का द्योतक है। (अर्थात् पूर्वसुकर्मों के फलस्वरूप वृन्ताक का इस प्रकार का समतल होता है)॥१८॥

वृन्ताकं वृन्तसहितं कृत्तं बाह्लिकसंयुतम्।
पक्वमाम्रयुतं स्वाज्ये ललिजिह्वान्तरे स्थितम्॥ १९॥

सवृन्त वृन्ताक खण्ड, हिंगु तथा आम्रपूर्ण (पक्वा) युक्त, घृत में पक्व शाक की जिह्वा मे स्थिति होती है (अर्थात् सुन्दर-सौभाग्यवनती जिह्वा को इस प्रकार का शाक रसास्वादन हेतु उपलब्ध (प्राप्त) होता है॥१९॥

प्रभृष्टतण्डुलसमीकृतनालिकेर-
पिष्टैः सहैव मरिचेन समेलकेन।
वार्ताकमुत्तमघृतैरनुपाचितं यत्
सिन्धूदरानलमिवानलमातनोति॥ २०॥

प्रभृष्ट तण्डुल (भून लण्डुल चूर्ण), नारिकेल पिष्टी, मरिच चूर्ण– मिश्रण का घृत में पक्व वृन्ताक शाक का सेवन, समुद्रगत अस्थि (वाडवाग्नि) के समान पालकाग्नि का दीपन करती है॥२०॥

स्विन्नार्धवृन्तवृन्ताकं कचूरेण विपाचितम्।
जीराज्यवेसवाराढ्यमाप्तवर्गैः सहाशितम्॥ २१॥

अर्धवन्त सहित स्वेदन किया वृन्ताक का शाक, कर्पूर के साथ पक्व, जीरक-घृत–वेसवार मिश्रित करके बनाते हैं। यह शाक आप्त जन (आत्मीय बन्धु बांधनों) के साथ खाद्य योग्य है॥२१॥

वृन्ताकं फलमादृतं सुकलितं शस्त्रेण तद्वारिणि
क्षिप्तं तैलविपाचितं नवदलं जम्बीरनीरान्वितम्।
हिङ्ग्वार्द्रेण सुवासितं बहुरसं सिन्धूत्थसंधूलितं
भोक्त्रा केन न निन्दितं बहुगुणं सौधं जलं दुर्लभम्॥ २२॥

अति रसयुक्त वृन्ताक शाक सिद्ध विधान

आदर के पात्र (सम्मनित) वृन्ताक फल को शस्त्र (चाकू-छूरी आदि) से सुकलित (काटकर) जल में प्लावित करें, तथा उसका तैल में पक्व करें। फिर जम्बीर नीर। जम्बीरी नीबू का स्वरस) में, हिंगु-आर्दक से सुगन्धित करके, सैंधव चूर्ण डालते हैं। इस प्रकार वृन्ताक के सरस शाक भक्षण करने वाला कौन ऐसा है, जो अतिगुणवान् दुर्लभ के अमृत के जल को भी स्वय देता है अर्थात् भोक्ता अमृज जल को भी निन्दित मान लेता है॥२२॥

अकृत्तवृन्तं वृन्ताकं चतुर्धार्धस्य खण्डितम्।
वेसवारोषणाहिङ्गुतक्रक्राथेन पाचितम्॥ २३॥

अङ्गारपक्वं वार्ताकं क्षोदितं घृतयोजितम्।
सैन्धवभृष्टबाह्लीके धूपितं स्याद्भटित्रिकम्॥ २४॥
त्वग्वृन्तगतवृन्ताक पुटपाकेन पाचितम्।
सैन्धवेनाज्यहिङ्गुभ्यां मिश्रितं रुचिकारकम्॥ २५॥

क. **अवृत्तवृत्तं वृन्ताक शाकम्–** वृन्त सहित (बिना काटे डंग्ल या मेंटी) वृन्ताक के अर्धभाग के चार खण्ड, वेसवार (मसाला) सहित, हिंगु तथा तक्र क्वाथ के साथ पाक किया जाता है।

ख. **अङ्गारपाचित-भटित्रिक वृन्ताक शाकम्–** अग्नि ज्वला (अंगार) पकाये वृन्ताक (बैगन) को मसलकर (भोदित) कर घृत का मिश्रण करते है, फिर सैन्धव तथा हिंगु डालकर सुगन्धित बना लेते हैं। इस प्रकार के पकव शाक को 'भटित्रिक' संज्ञा दी गयी है।

ग. **त्वन्वृन्त सहित वृन्ताक शाकम्–** वृन्ताक (फल) के वृन्त (डंगल) तथा खट्ट (छिलका) रहित फलकी पुटपाक विधि से पक्व शाक में, सैंधव घृत-हिंगु (भुनी हुई) मिश्रित कर देते हैं।

यह वृन्ताक (विशिष्ट) का शाक रुचि का वर्धन करता है॥२४-२५॥

सुस्विन्नवृन्ताकफलं भृशाग्निना
संक्षोदितं तत्तु न नालवर्जितम्।
सुवासितं राजिकसैन्धवान्वितं
विमर्द्य दध्ना परिवेष्टितं ध्रुवम्॥ २६॥

स्वेदित वृन्ताक– वृन्ताक फल तीव्र अग्नि (अंगार) से सुस्वेदित करके, फल का मर्दन (शोधित) करके (नालरहित)– वृन्ताक शाक (बैंगन का भरता-भर्त्ता)– सुगन्धित, सजिका-सैन्धव युक्त, दही मर्द न करके, परिवेष्टित किया हुआ शाक बनाते हैं। विशेषतया अवश्य हो रुचि संजनन देता है॥२६॥

निर्धूमानलपाचितमानं वार्ताकमुज्झितं बीजैः।
आर्द्रकनिम्बुकसैन्धवस्नेहैरालोडितं रुचिं धत्ते॥ २७॥

वृन्ताक (फल बीज) निष्कासित बीज रहित वृन्ताक शाक को निर्धूम अग्नि मे पक्व, आर्द्रक-निम्बूक-सैन्धव-घृत मिश्रित कहते हैं। यह शाक रुचि वर्धक होता है॥२७॥

वृन्ताकं स्वादुतिक्तोष्णं कटुपाके च पित्तलम्।
रुच्यं वाताहरं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु॥ २८॥

कृष्ण वृन्ताक फल शाक

स्वादु, तिल, उष्ण, कटुपाकीं, पित्तकारक रोचक (रुचिवर्धन), वातनाशक, हृद्य, दीपन, शुक्रल एवं लघु॥२८॥

अपरं श्वेतवार्ताकं कुक्कुटाण्डोपमं फलम्।
कृष्णाद्धीनगुणंकिंचिदर्शसां नाशनं परम्॥ २९॥

श्वेत वृन्ताक फल शाक

अपर श्वेत वृन्ताक फल (कुक्कुटोपम-मुर्गी के अंडे के समान रंग कुछ कम काला), अल्प गुणवान् तथा अर्शनाशक॥२९॥

वह्नेर्दीप्तिकरं परं रुचिकरं गुल्मापहं पाचनं
प्लीहानं च शिरोरुजं विजयते जीर्णज्वरं कामलाम्।
हन्याद्वातकफामरोगनिचयं मूत्रग्रहं साश्मरीं
वृन्ताको मृदुवह्निना सुपचितः पुंभिः सदा सेव्यते॥ ३०॥

मन्दाग्नि पक्व वृन्ताक शाक

मन्द (हल्की) अग्नि में पक्व वृन्ताक शाक, अग्निदीपन, रुचिकर, गुलाघ्न, पाचक, प्लीहा-शिर:शूल-जीर्णज्वर-कामला-कफ-आमरोग-मूत्रग्रह-अश्मरी, विशेषतया पुरुषों द्वारा भक्षण योग्य (हितकर)॥३०॥

दलितं तलितं सरामठं नवबिम्बीफलमात्तसैन्धवम्।
मरिचोद्भवचूर्णसंयुतं घृतपाकेन करोति रोचनम्॥ ३१॥

विम्बफल शाक

बिम्बी फल (कुन्दुर) के फल को कर्त्तन (खण्ड) कर (दलित), हिंगु के साथ तल कर (तलित), सैंधव तथा मरिच चूर्ण डालकर-घृत के साथ पक्व शाक तैयार करते हैं। यह रुचिवर्धन होता है॥३१॥

बिम्बीफलं सकलमेव घृते निधाय
तप्ते ससैन्धवमिदं मुहुरुत्क्षिपेच्च।

सोपस्करं क्वथितमत्र निधाय तक्रं
वाग्घारयेदति च दीपनमेव वह्नेः॥ ३२॥

विम्बीफल शाक

सम्पूर्ण विम्बी फल (शाक बनाने हेतु) संतृप्त घृत में डाल देते है, फिर सैंधव मिलाकर चलाते हैं, तथा बाद में उपस्कार (मसाला रहित) युक्त तक्र डालकर, छौंक (वाग्घारयेदति–वघार) लगा देते हैं। यह शाक अग्निदीपन करता है॥३२॥

बिम्बीफलार्धकलितं हिङ्गुसैन्धवमिश्रितम्।
प्रलेहविधिना पाच्यं परिवृत्य छमत्कृतम्॥ ३३॥

विम्बी प्रलेह

विम्बी फलगर्ध (आधे-आधे टुकड़ों) को हिंगु-सैंधव मिलाकर, दर्वीचालन करते हुये (क्षमकृत-छौंककर), प्रलेह विधि के अनुसार पाक करते हैं॥३३॥

अङ्गारभर्जितं बिम्बीफलं संक्षोदितं करैः।
दधिहिङ्गुघृते न्यस्तं सक्षारं रुचिकारकम्॥ ३४॥

अङ्गारभर्जित विम्बी फलशाक

विम्बी फलों को अग्नि ज्वाल (अंगारों) पर अर्जित (भूनकर), हाथों से मसल देते है (संशोदित करे), फिर दधि-भृष्ट हिंगु-घृत-लवण शाक में मिश्रित कर देते हैं। यह विम्बी का भर्त्त (भरता/रूपीय शाक सक्षार तथा भोजन में रुचिकर होता है॥३४॥

तिर्यग्वा खण्डितं चार्धस्वित्रं बिम्बीफलं भृशम्।
दधिराजिकया युक्तं सैन्धवेनानुमिश्रितम्॥ ३५॥

विम्बी रायता

विम्बी फलों को तिर्यक खण्डित (तिरछा काटकर, अर्धस्वेदन (अर्धपक्व) करके, दधि, राजिका तथा सैंधव मिश्रित करते है। इस तरह रायता का निर्माण होता है॥३५॥

बिम्बीफलं स्वादु शीतं रक्तपित्तप्रणाशनम्।
स्तम्भनं लेखनं चातिविबन्धाध्मानकारकम्॥ ३६॥

विम्बी फल स्वादु, शीत, रक्तपित्त शामक, स्तम्भन, लेखन, निबन्ध तथा आध्मानकार होता है॥३६॥

अथ शिम्बी

नैष्पावकं सुदलितं नवबीजकोशं
तप्तेन हिङ्गुजकणेन ससैन्धवेन।
प्रभ्रष्टकल्पतिलतैलकृतप्रबोधं
मान्द्यं हरेच्च जठरान्तरवर्तिवह्नेः॥ ३७॥

बिम्बी फल गुण-कर्म (सामान्य)

१. स्वादु (मधुर)	२. शीत (शीतल)
३. रक्तपित्तशामक	४. स्तम्भक
५. लेखन	६. अति विबन्धकारी
७. आध्मानकर	

शिम्बी शीता गुरुर्बल्या श्लेष्मा वातपित्तजित्।
कोलशिम्बी समीरघ्नी गुर्व्युष्णा कफपित्तकृत्॥ ३८॥

क. **शाक विधि**–शिम्ब (भटवांस) के नवीनबीज कोश (डोडी) कटकर, हिंगु कण तथा सैंधव संतप्त तैल में प्रभृष्ट (भूनकर) शाक सा बीज निकालकर) का निर्माण करते है।

ख. **गुण-कर्म**–यह जठर (उदर) के अन्तरवर्ति (अन्दर रहने वाली) अग्नि मांद्य नाशक है।

कोलशिम्बी (सुअर सेम) वातनाशक, गुरु (गरिष्ठ), उष्ण तथा पित्तजनन होती है॥३८॥

अथ तोरी (तोरई)

निःशेषिताखिलसिरावलिकृत्तखण्डं
दण्डाहतं च मृदुपाकमवाप्यते हि।
हिङ्ग्वम्लतैललवणैः परिपाचितं च
कोशातकीफलमिदं मरिचेन रुच्यम्॥ ३९॥

कोशातकी (तोरई)

कोशातकीफल की सिराओं को निष्कासित करके, काटकर खण्ड बनायें तथा दण्डाहत (डंडे से कुचलें) करें। यह मृदुपाक हो जायेगा। तदनन्तर हिंगु, अम्ल पदार्थ, तैल, लवण के साथ पाक करते है, फिर मरिच चूर्ण मिला देते हैं। यह कोशातकी शाक रोचक (रुचिवर्धक) गुण करता है॥३९॥

राजकोशातकी शीता ज्वरघ्नी कफवातला।
महाकोशातकी तद्वत्सिद्धाऽनिलपित्तहा॥ ४०॥

राजकोशातकी

१. शीत	२. ज्वरघन
३. कफवातकारक	४. पूर्व (कोशतकी के प्रसंग) में वर्णित विधि से पक्व शाक अर्श, वातरोग तथा पित्तनाशक होता है।

अथ चवेडा (चचिण्डा)

ऊर्ध्वे विधिना कृत्तं बृहत्पाटोलकं फलम्।
हिङ्गुना पाचितं तप्ते घृते सुरुचिकारकम्॥ ४१॥

चचिण्ड-चिचिण्डशाक

चचिण्ड (चचेंड़ा) फल की सिरा निष्कासित कर (पूर्वोक्त विधि से) कर्त्तन करते हैं, फिर हिंगु से पाचित (छौंक) कर, संतृप्त घृत में शाक कर पाक कर लेते हैं। यह शाक सुरुचिकारक होता है।

चचेण्डं कर्तलाकारं कृत्तमाज्ये छमत्कृतम्।
प्रलेहाविधिना राद्धं रुच्यं लवणमिश्रितम्॥ ४२॥

चचिण्ड-शाक प्रलेह

चचेण्डफल कर्त्तन कर, घृत में भौंक कर (क्षमत्कृतम्) तथा लवण मिलाकर, प्रलेह निर्माण करते हैं। यह शाक रुचि प्रदायक होता है॥४२॥

श्वेतराजिकया शुभ्रं बृहत्पाटोलक फलम्।
पित्तघ्नं वातहृद्बल्यं रुच्यं पथ्यं हि देहिनाम्॥ ४३॥

चचिण्डफल-वृन्ताक

श्वेत राजिका मिश्रित कर, चिचिण्ड (बृहत्पटोलक) के शाक का (पूर्वोक्त विधि/ सेपाक करते हैं। इसके गुण-कर्म इस प्रकार है–१. पित्तनाशक, २. वात हत, ३. वल्य, ४. रुच्य या ५. पथ्यकारक (मनुष्यों के लिए हितकारक)॥४३॥

अललबोश्च फलं घृते पक्वं सजीरकम्।
दधिसैन्धवचूर्णेन संसिक्तं तनु खण्डितम्॥ ४४॥

तुम्बी (अलाबू)

क. फल शाक विधि

अलाबू (लौकी) के दीर्घ (बड़े) फल की कर्त्तन (छोटे टुकड़े करके), जीरक के साथ, घृत में पाक करते हैं, फिर दधि तथा सैंधव मिश्रित करके, शाक को पाक कर लेते है॥४४॥

मिष्टं तुम्बीफलं हृद्यं वृष्यं पित्तापहं गुरु।
शुभ्रं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्धनम्॥ ४५॥

ख. मिष्ट तुम्बीफल (मीठी लौकी)

हृद्य, शुक्रप्रद, पित्तनाशक तथा गुरु (गरिष्ठ)। श्वेत तुम्बी (सफेद लौकी) का फल- रुचिवर्धक, धातु-पुष्टिवर्धन होता है॥४५॥

निःशेषबीजावलिकृत्तखण्डंर सहिङ्गुके प्रोत्थितचण्डशब्दम्।
स्नेहे प्रतप्ते चलदर्विदण्डं रुचिप्रदं टिण्डिसकं सपिण्डम्॥ ४६॥

टिण्डिश (डिंडिश)

क. **विधि–** फल के नील समूह को निष्कासित कर खण्ड बनाते हैं; इसे संतृप्त सेह (घृत/तैल) में हिंगु का फल (प्रेत्यित) देकर, प्रचण्ड शब्द (चण्डशब्दम्) उठने तक पाक होने देते है, दर्वीचालन द्वारा पिण्डाकार रूप धारण करने देते हैं।

ख. **गुण–** रुचिप्रद यह शाक होता है॥४६॥

टिण्डिसं रोमशफलं हृद्यं पित्तकफापहम्।
सुशीतं वातलं रूक्ष मूत्रलाश्मरिभेदकम्॥ ४७॥

रोमश डिण्डिश फल का गुण

हृद्य, पित्त-कफ नाशक, शीतल, वातकारक, सूक्ष्म मूत्रल तथा अश्मरी भेदन॥४७॥

अथ बिल्वफलम्

बाह्लीकसौरभ्यभृतप्रकाशं बैल्वं फलं खण्डितमेव तैले।
विपाचितं वह्निजचूर्णकीर्णं रुचिं विधत्तेऽभ्यवहारकाले॥ ४८॥

कफानिलहरं स्निग्धं कषायं दीपनं लघु।
बाल तिक्तं फलं बैल्वं वृद्धं बिल्वं विबन्धकृत्॥ ४९॥

विल्वफल

क. **विधि–**विल्व (बेल) के कुंकुम-समान सुगन्ध तथा प्रकाशयुक्त वल्कल रहित- वे खण्ड करके तैल में पकाते हैं, फिर मरिच का चूर्ण को मिश्रि कर देते हैं।

ख. **गुण–**बालतिक्तफल का सिद्ध शाक (पदार्थ) कफ-वात नाशक, रुचिवर्धक, स्निग्ध, कषाय रस युक्त, अग्निदीपन, लघु (सुपच्य) होता है। वृद्ध विल्वफल (बद्र-परिपक्व वैल फल) विबन्ध कारक हुआ करता है॥४८-४९॥

अथ कूष्माण्डम्

घृते तप्ते विनिःक्षिप्य खण्डान् कूष्माण्डसंभवान्।
वार्ताकविधिना कुर्यात्प्रलेहं तलनं त्वथ॥ ५०॥
वेसवाराम्लतक्रेण घृते तलनपूर्वकम्।
कूष्माण्डखण्डकं सिद्धं विदुः सुस्वादुसन्दरम्॥ ५१॥

कूष्माण्ड

क. **विधि–** कूष्माण्ड (कोंहड़ा-कुम्हेड़ा) के खण्डों को घृत में डालकर तल कर (तलन पूर्वकम्), वेसवार (मसाला), अम्ल एवं तक्र, मिलाकर, पाक करते हैं। (सिद्ध)।

ख. **गुण–** यह शाक सुस्वादुसुन्दर होता है॥५०-५१॥

अथ गुलिका

घृतेन गुडयुक्तेन गौडकूष्माण्डखण्डकान्।
रन्धितान् जीरमरिचैरिमान् गुलितलान्विदुः॥ ५२॥

गुलिका

गौंड कूष्माण्ड को घृत में पाक (कूष्माण्ड खण्डों को) करने के साथ, गुड, जीरक तथा जीरक-चूर्ण को मिश्रित करते हैं।

अथ खण्डकूष्माण्डकम्

चतुरस्रायताः स्थूलाः स्विन्नाः क्षीरेण क्षोदिताः।
सुपाच्याः खण्डसर्पिर्भ्यां मरिचैलादिवासिताः॥ ५३॥

खण्डकूष्माण्डकम्

कूष्माण्ड के स्थूल एवं चतुरस्र (चौकोर) खण्ड (टुकड़ों) को दुग्ध में उबाल (स्वेदित) कर लेते है, फिर मसलकर घृत में भून (भर्जित कर लेते हैं तथा शर्करा का मिश्रण करते है। तदनन्तर, मरिच-एला-सुगन्धित चूर्णो से सुगन्धयुक्त सुवासित कर लेते है। इस पाक की 'खण्ड-कूष्माण्डक' नाम दिया गया है।।५३।।

अथ भर्जितसुन्दरी

कूष्माण्डं गुलिकाकारं खण्डितं घृतभर्जितम्।
हिङ्गुसैन्धवचूर्णेन संयुक्तं रुचिकारकम्॥ ५४॥

भर्जित सुन्दरी

कूष्माण्ड की गुलिकाकार खण्ड (टुकड़ा) बनाकर, घृत में भर्जित (भून) कर, भृष्ट हिंगु (भुनी हिंग) तथा सैन्धव चूर्ण का मिश्रण कर देते हैं। वह रुचिवर्धक होती है।।५४।।

अथाम्लकूष्माण्डम्

कूष्णाण्डखण्डानि ससैन्धवानि तनूनि संमर्दितपीडितानि।
जम्बीरनीराश्रितशृङ्गवेरैर्भवन्ति वह्नेरपि दीपनानि॥ ५५॥

अम्लकूष्माण्ड

क. **विधि–** कूष्माण्ड सूक्ष्म के खण्ड, स्विन्न (उबाले हुए) को सैन्धव लवण मिश्रित कर, जम्बीर निम्बूक के स्वरस तथा आर्द्रक को संमहित-पीड़ित (हाथ से मसलकर) 'भरता' जैसा तैयार कर लेते है। यह 'अम्लकूष्माण्डकम्' होता है।

ख. **गुण–** यह अग्नि का वर्धन करती है– दीपन है।।५५।।

अथ छेलिका

कूष्माण्डत्वग्भवाः खण्डाः सुस्विन्नाश्लक्ष्णकान्विताः।
वेसवारयुते तैले तलयेद्वा प्रलेहयेत्॥ ५६॥

कूष्माण्ड छेलिका

कूष्माण्ड (छिलके) को खण्डित करके (टुकड़े बनाकर) त्र्यणक (चने) के साथ सुस्विन्न करते (उबालते) है, फिर तैल तथा वेसवार (मसाला) सहित तल के हर (तलें)– इसे प्रलेह के समान निर्माण कर लेते हैं। यह 'कूष्मण्ड छेलिका' है।।५६।।

अथ राजिका-आसुरी

खण्डं कनिष्ठिकाकारं कौष्माण्डं स्वेदपिण्डितम्।
राजिकादधिसिन्धूत्थैर्मिश्रितं चासुरी स्मृता॥ ५७॥

कूष्माण्डराजिका

कूष्माण्ड का कनीष्ठिका अंगुलि के आकार का खण्ड बनाकर, स्विन्न करके पिण्डी करण (पिंठ जैसा) करते हैं। इसमें राजिका–दधि-सैंधव लवण मिश्रित करते है। यह 'कूष्माण्ड राजिका' है।।५७।।

एवं बहुविधः कार्यः कूष्माण्डो हि विचक्षणैः।
प्रलेहतलनस्वादुक्षारसंधानराजिकाः ॥ ५८॥

कूष्माण्ड कल्प

इस प्रकार विचक्षण (कल्प-पाक विशेषज्ञ) कूष्माण्ड के विविध प्रकार के पदार्थ (पाक), यथा प्रलेह तलना, स्वादु, क्षार, संधान एवं राजिका प्रभृति कई प्रकार के आहार-योग्य द्रव्यों का (निर्माण) किया जा सकता है (बहुविध)।।५८।।

कूष्णाण्डं बृंहणं शीतमसृक्पित्तहरं गुरु।
बालं नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु॥ ५९॥

कूष्माण्ड–गुण-कर्म

कूष्माण्ड से सिद्ध (पक्व) विभिन्न द्रव्यों (कल्पों) के तथा कूष्माण्ड फल की विभिन्न अवस्थाओं के सामान्य गुण-कर्म तथा मुख आमायिक उपयोग निम्नांकित है–

१. बंहण	(सामान्य-कूष्माण्ड)	८. कफजनन	म.कूष्माण्ड
२. वल्य		९. अल्पशीतल	पक्व कूष्माण्ड
३. शीत (शीतल)		१०. स्वादु (स्वदिष्ट)	
४. रक्तपित्तनाशक		११. क्षारीय	
५. गुरु (गरिष्ठ)		१२. अग्नि (जठराग्नि) दीपन	
६. पित्तनाशक	कालकूष्माण्ड	१३. लघु (सुपाच्य)	
७. शीत			

अथ टेण्टी

बालं टेण्टीफलमविकलं स्विन्नमीषच्च तोये
स्नेहे हिङ्गुप्रणयिनि ततो वेसवारेण सिद्धम्।
गव्यं तक्र क्रथितनिहितं साधितं रामठेन
स्वादन्स्वादन्निभृतममृतं निन्दितं भोक्तृभिश्च॥ ६०॥
टण्टिका पुष्टिका वष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः।
हन्ति पित्तकफार्शासि कृमिगुल्मविषामयान्॥ ६१॥

टेण्टी—करीरफल

क. **विधि—** अविकल (बिना काटे हुए) बाल टेण्टी (करीर-करीण) फलों को जल में स्विन्न करते (उबालते हैं, तथा सन्तप्त स्नेह (घृतं/तैल) में हिंगु तथा वेसवार (ममालों) के साथ पाक करते है (छौंककर); फिर गवागव्य-गाय के तक्र (मट्ठे) को हिंगु (रामठ)—सिद्ध जाल देते हैं।

ख. **गुण-कर्मः—** इस रीति से सिद्ध (पक्व) टेण्टीफल के पाक को स्वादपूर्वक (निश्चिन्तता) खाने वाले भोक्ता को, अमृत की भी निन्दनीय (अमृतं निन्दितं भोक्तृमिभ्रम्) प्रतीत होगा।

१. पुष्टिका	२. वृष्य	३. रुच्य
४. वह्निपदा	५. लघु	६. पित्तधा
७. कफहर	८. अर्शोघा	९. कृमिरोगहर
१०. गुल्मरोगनाशक	११. विषजनित विकृति (विषामय) निवृत्तिकर।	

अथ कण्टकारीफलम्

तोयाल्पस्विन्नबृहतीफलमल्पखण्डं
दण्डाहतं चिरविपाचितमाज्यमध्ये।
चूर्णेन सैन्धवभवेन विमिश्रतं च
वह्निं प्रबोधयति कासनिवारणं हि॥ ६२॥

कण्टकारी फल

क. **विधि—** अल्प (थोड़े) पानी में बृहतीफल (बड़ी कटेली) स्विन्न करके (उबाल कर) खण्ड कर लें; तथा तप्त घृत में (दण्डाहत) दर्वी या कड़ही से चलाकर पकाते हैं; फिर सैंधव का चूर्ण मिश्रित कर देते हैं।

ख. **गुण—** १. पाचकाग्नि प्रवोधक (अग्निदीपन)
२. कास निवारक (कास रोगहर)

कण्टकारीफलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघु।
रूक्षोष्णं श्वासकासघ्नं ज्वरानिलकफापहम्॥ ६३॥

कण्टकारी के सिद्ध (पक्व) फल के गुण-कर्म-आमयिक उपयोग—

१. तिक्त-कटु रस	२. पाचकाग्नि वर्धक (दीपन)
३. लघु (सुवाच्य)	४. रुक्ष
५. उष्ण	६. वातघ्न
७. कफहर	८. कास-श्वास-वृद्धि-ज्वर नाशक॥६३॥

अथामलकफलम्

अङ्गारपाकपचितानि फलानि धात्र्या
आज्येन जीरलवणेन विमिश्रितानि।
बाह्लीकधूपपरिधूपितसौरभाणि
संधुक्षयन्ति जठरानलमुद्धतानि॥ ६४॥

आमलक फल

क. **विधि—**आमलक (धागी-आँवले) के फलों को अंगार पर पाक करके (हाथों से) मसलकर (पिष्टी-पिट्ठी); घृत-हिंगु-लवण का चूर्ण से धूम देकर सुवासित (सुगन्धित) कर लेते हैं। यह पदार्थ (धात्री-फलों से निर्मित) जठरानल संधुक्षण (पाचकाणी दीपन) करता है॥६४॥

प्रोक्तं धात्रीफलं वृष्यं विशेषाद्रक्तपित्तजित्।
त्रिदोषशमनं पथ्यं ज्वरघ्नं च रसायन्॥ ६५॥

ख. **गुण-कर्म—**

१. वृष्य	२. रक्तपित्त शामक	३. त्रिदोषनाशक
४. पथ्य (हितकर)	५. ज्वरघ्न	६. रसायन॥६५॥

अथ कारवेल्लीफलम्

कारवेल्लीफलं भूयात्कवले कवले मम।
बहिर्मरकतश्याममन्तेविद्रुमसंनिभम् ॥ ६६॥

कारवेल्लीफल

कारवेल्ली (करेला) का फल बाह्य स्वरूप में मरकत मणि के समान श्यामवर्ण, आभ्यन्तर प्रवाल जैसा रक्तवर्ण फल, यह भोक्ता की कामना है, यह उसके प्रत्येक ग्रास में रहे।।६६।।

कारवेल्लीफल तक्रे स्वेदितं हिङ्गुमर्दितम्।
भर्जितं नवनीतेन सैन्धवेन समन्वितम्॥ ६७॥

अथ कर्कोटकफलम्

विदलितमुखमीषत्कारवेल्लं कठोरं
पुलकितमिव तैले साधितं रामठेन।
चरितमरिचचूर्णं सैन्धवेनातिपूर्णं
पुलकितरसनाग्रं लोलतामातनोति॥ ६८॥

१. **विधि–** कारवेल्लक फल को तक्र में स्वेदित (उबाल) कर, हिंगु मर्दित करके, नवनीत के साथ भर्जित कर (भून) लेते हैं, फिर सैंधव मिश्रित करते हैं– यह शाक निर्माण की रीति है।

२. कठोर प्रकार के कारवेल्लक का मुख काट (दलित) कर, हिंगु मिलाकर (भृष्ट) संतप्त तैल में सिद्ध (पाक) करके सैंधव एवं मरिच चूर्ण मिलाकर शाक-विधि को पूर्ण करते हैं। इस रीति से निर्मित शाक का आहार करने से जिह्वा का अग्रभाग-चंचल प्रकार का–ओर लोलुप हो जाता है (जिह्वा लौल्य के वशीभूत)।।६७-६८।।

कारवेल्लीफलं भेदि लघु तिक्तं च शीतलम्।
पित्तासृक्कामलापाण्डुकफमेदः कृमीञ्जयेत्॥ ६९॥

ख. **गुण-कर्म–**
१. भेदन (सारक-रेचक) २. लघु (सुपाच्य)
३. तिक्त ४. शीतल
५. रक्तपित्त-कामला-पाण्डु-मेदोरोग-कृमिरोग
६. कफजनित विकार

अथ कर्कोटकफलम्

ईषद्विभिन्नमरिचैः परिपूर्णगर्भ
तैलेन राद्धमथ सैन्धवजातयोगम्।

बाह्लीकयुक्तपयसा विहिताभिषेकं
कर्कोटकीफलमिदं रुचिकृन्नराणाम्॥ ७०॥

कर्कोटक फल

क. **विधि–** कर्कोटकी (कर्कोटक) फल के मुख का अल्प विदारण करके, उसके अन्दर मरिच चूर्ण-सैंधव का पूरण करें तथा तप्त तैल में–अल्प पाक (सिद्ध) करते हैं, तदनन्तर हिंगु युक्त जल मिलाकर पकाते हैं फिर अग्नि से हटा लें।।७०।।

फलं कार्कोटकं कुष्ठकिलासारुचिनाशनम्।
भेद्यं रुचिकरं वृष्यं कटु पाके च दीपनम्॥ ७१॥

ख. **गुण-कर्म–**
१. अरुचिहर २. भेदन
३. कृचिकर ४. वृष्य
५. दीपन ६. कटुविपाकी

अथ हरितचणकरन्धनम्

सुहरितहरिमन्थः क्षोदक्षुण्णो नखाग्रैः
प्रथममुदकसिक्तो वेसवारेण सिद्धः।
लवणमरिचसङ्गात्तैलहिङ्गुप्रसङ्गा-
च्छिखरयति हि भोक्तुर्जाठरं मन्दवह्निम्॥ ७२॥

हरितचणक-हरिमन्थ

क. **विधि–** हरिमन्य (हरा चना) को फलों को ऊँगली (नख) से अग्रभाग को विदीर्ण कर, बीजों का निष्क्रमण करें तथा कुचलें (क्षोदक्षुण्णों नखाग्रैः)। जल से प्रक्षालनोपरान्त तेल से हिंगु (भृष्टकर) पाक करते हैं, फिर लवण-मरिच का चूर्ण मिश्रित कर देते हैं।

ख. **गुण–** हरिमन्थ शाक खाने से पाचकाग्नि (जो मन्द हो गयी हो) को तीव्र हो जाती है।।७२।।

छोलाविधानकफलं परिगृह्य शुद्धं
तप्ते घृते सपचितं क्वथितोषणाभ्याम्।
संसाधितं सुरभितं शुचिरामठेन
जिह्वातले विशति नर्तति च प्रकामम्॥ ७३॥

हरितेन भृतं क्वापि निर्माणाच्छोलकं क्वचित्।
कथ्यते स्थौल्यकफकृत्किचिद्वातकरं सरम्॥ ७४॥

छोला विधानकफल

त्वक रहित (शुद्ध) चणक (चना)- जिसे आजकल 'छोला' आदि नामों से जानते हैं- को संतृप्त घृत में पाक करें; शुण्ठी तथा मरिच चूर्ण की- हिंगु से सुगन्धित कर मिला देते हैं।

यह विशिष्ट चणक (छोला) जिह्वा तल पर प्रवेश करते ही या चेष्ट नाचने लगता है (जिह्वातले विशति मर्तति)- जिह्वा को स्वाद से प्रिय बना देता है (कटु-तिक्त आदि रसों के चखने पर)।

पाकान्तर–यह छोला हरा या शुष्क चने (पानी में भिगोकर) का निर्माण किया जाता है।

मुखगुण–स्थूलता वृद्धिकर, कफवर्धन, अल्पवात कारक तथा सर॥७३-७४॥

अथ कार्पासफलम्

फलमथ दलशाकं स्वेदितं मुष्टिपिष्टं
क्वथिततिलजतैले हिङ्गुना लब्धवासम्।
वणफलवपत्र स्वादुतां संदधानं
भवति रुचिदमुच्चैरम्लचूर्णेन सार्धम्॥ ७५॥

कार्पासफल

क. **विधि–** कार्पास (कपास) के फलों तथा पत्रों को जल में स्वित्र (उबालकर) करके, मुष्टि (मुट्ठी) से पीस (मसल) लेते हैं; तदनन्तर तिल के तैल में पाक करके, हिंगु से सुगन्धित करते हैं; फिर आम्रचूर्ण (अमचूर) मिला देते हैं। यह कार्पास फल सिद्ध हो जाता है॥७५॥

कर्पासफलमत्युष्णं कषायं मधुरं गुरु।
वातश्लेष्महरं रुच्यं विशेषेणस्थिवर्जितम्॥ ७६॥

ख. **गुण–** शाक स्वादु होते हुए भी (भोजन) में रुचि को भलीप्रकार वृद्धि करता है। इसके गुण-कर्म रोगोपयोग निम्नांकित है-

१. उष्ण	२. कषाय	शाक में प्रायः सभी गुण विद्यमान हैं, जो अस्थि-वृहिष्कृत करके पाक करते हैं (विशेषेण्यस्थिविर्णितम्)।
३. मधुर रस	४. गुरु	
५. वात-कफ नाशक	६. रुचिकर	

अथ करीरफलम्

फलं करीरस्य हि बीजवर्जितं
संस्थापितं सोदकभाजने तु।
सुचिक्कणे चाष्टदिनं सुसंस्थितं
वृन्ताकरीत्या सुधिया विपाचितम्॥ ७७॥

करीरफल

क. **विधि–** करीर फल (बीज निष्क्रमित) को जल-परिपूर्ण स्निग्ध पात्र में अष्ट दिनावधि तक रखने के पश्चात्, वृन्ताक शाक वत पाक करना चाहिए- यह बुद्धिमान (सुधिया) व्यक्ति का कार्य है।

करीरं कटुकं ग्राहि फलमुष्णं रुचिप्रदम्।
कफपित्तदरं किंचित्कषायं वातहृद्वरम्॥ ७८॥

ख. **गुण–**

१. कटुरस-अल्प कषाय	२. ग्राही
३. उष्ण	४. रुचिकारक
५. कफपित्त वर्धन	६. वातरोग हर (परम्)

अथ कपिकच्छुं फलम्

कोमलं रोमरहितं स्विन्नमाज्ये विपाचितम्।
सोपस्करे सबाह्लीके सिन्धुजेन समन्वितम्॥ ७९॥

क. **विधि–** कोमल रहित फल (फली) को (जल में) स्वित्र करके, हिंगु तथा उपस्कर (मसाला) मिलाकर घृत में पाक करते हैं, तथा सैंधव चूर्ण का मिश्रण कर देते हैं- यह शाक का निर्माण हो गया है॥७९॥

कपिकच्छुफलं वृष्यं मधुरं बृंहणं गुरु।
स्निग्धं शीतानिलहरं दुष्टव्रणविनाशनम्॥ ८०॥

ख. **गुण–**

१. वृष्य	२. मधुर
३. वल्य	४. गुरु (गरिष्ठ)

५. स्निग्ध ६. शीत

७. वातरोग नाशक ८. दुष्ट व्रणहर॥८०॥

अथ विषौणीफलम्

द्विखण्डं खण्डितं बालं फलं विषाणसंज्ञकम्।
तप्ते हिङ्गुयुते स्वाज्ये भर्जितं सैन्धवान्वित्॥ ८१॥
विषाणं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकारकम्।
पाके लघुतरं प्रोक्तं विशेषाद्विषनाशनम्॥ ८२॥

विषाण (विषाणी) फल

क. **विधि–** बालविषाणी (सिंघाड़ा) का द्विखण्ड खण्डित (दो-टुकड़ों में) करके, हिंगु भृष्ट संतप्त घृत में, सैंधव मिलायें। इस रीति से शाक निर्माण हो गया है।

ख. **गुण–** १. शीतल २. वल्य
३. पित्तशामक ४. रुचिकारक
५. लघुपाकी (अत्यन्त) ६. विषनाशक (विशेषत:)

अथोदुम्बरफलम्

फलमौदुम्बरं बालमम्लतक्रेण स्वेदितम्।
वेसवारभृते स्वाज्ये पाचितं सैन्धवान्वितम्॥ ८३॥
शीतं कषायमधुरं रक्तपित्तप्रणाशनम्।
मूत्रकृच्छहरं सम्यग्विबन्धाध्मानकारकम्॥ ८४॥

उदुम्बर फल

क. **विधि–** उदुम्बर (गूलर) को अम्ल तक्र में स्वेदन (उबाल) कर, वेसवार (मसाला) के साथ, घृत में पाक करके, सैन्धव चूर्ण मिश्रित कर देते हैं। इस प्रकार उदुम्बर फल शाक का निर्माण हो जाता है।

ख. **गुण–**

१. शीत २. कषाय ३. मधुर रस
४. रक्तपित्त शामक ५. मूत्रकृच्छ निवारक (सम्यक् रूपेण)
६. विवन्ध ७. आध्मान — कारक

अथार्द्रकचंरम्

नापक्वं नातिपक्वं च खण्डितं त्वग्विवर्जितम्।
वेसवारघृतक्षारै: सिद्धं पित्ताग्निवर्धनम्॥ ८५॥

आर्द्रक कर्चर

क. **विधि–** अर्धपक्व (नापक्वं नातिएकवं) खण्डित, त्वक (विवर्जित-छिलका) निकालकर। वेसवार (मसाला), लवण, घृत के साथ पाक करके, सिद्ध कर लेते है।

ख. **गुण–** पित्त वर्धक तथा पाचकाग्नि संजनन (वर्धक)॥८५॥

अथ कर्कटीफलम्

त्वग्बीजरहिता प्रौढा गुलिकाकारखण्डिता।
तलिता सुघृते तप्ते कर्कटी वा प्रलेहिता॥ ८६॥
विपाण्डुखण्डं घृतदुग्धराद्धं विभावितं वल्लिजशर्कराभ्याम्।
कृतैलवासं च कटूष्णमेतत्प्रतिक्षणं रोचकमादधाति॥ ८७॥

कर्कटी फल

क. **विधि–**

i) कर्कटी (ककड़ी)– त्वक् (छिलका) बीज रहित, गुलिका के आकार का खण्ड (टुकड़ा) बनाते हैं; इसको घृत में पाक कर लेते हैं। यह कर्कटीं फलशाक सिद्ध हो गया है। इसे संतृप्त घृत में तलन द्वारा अथवा प्रलेह बनाते हैं।

ii) अपक्व कर्कटो खण्डों को दुग्ध में विभापित करके, घृत में संतप्त करते हैं, मरिच चूर्ण तथा शर्करा मिश्रित कर सुगन्धित बना लेते हैं। एला चूर्ण भी मिलते हैं। यह कटु स्रव उष्ण है। भोक्ता को प्रतिक्षण रोचक लगने लगती है॥८६-८७॥

कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरु:।
रुच्या पित्तहरा पक्वा पाकोष्णा पित्तकृत्सरा॥ ८८॥

ख. **गुण–** १. शीतल २. रूक्ष
३. ग्राही ४. मधुर
५. गुरु (मरिष्ठ) ६. सच्च
६. पित्तहरा ८. उष्णपाकी
९. पित्तसंजनन १०. सरा (रेचक)

अथ शमीफलम्

शमीफलं कोमलबीजसंयुतं तमोदकस्वेदितमेव केवलम्।
प्रलेहयोगे विधिना विपाचितं सराजिकं वा दधिसैन्धवान्वितम्॥ ८९॥

शमी फल

क. **विधि–** शमी (छेंकुर) के फलों को कोमल, बीजरहित को संतप्त जल में केवल स्वेदन (उबाल) करते हैं। इसकी प्रलेह विधि से पक्व (सिद्ध) कर, राजिका चूर्ण या दधि सैन्धव लवण का मिश्रण कर देते हैं।

शमीफलं लघुर स्वादु कुष्ठार्शःकफहृत्सरम्।
सुरुच्यं पित्तलं रूक्षं मेध्यं केशविनाशनम्॥ ९०॥

ख. **गुण–**

१. सुपाच्य
२. लघु
३. स्वादु
४. कुष्ठ-अर्शनाशक
५. कफजन्य विकार नाशक
६. सर
७. रुचिकर
८. पित्तवर्द्धक
९. रुक्ष
१०. मेध्य
११. केशविनाशनम्

अथ भैरण्डम्

भैरण्डं कोमलं ग्राह्यं फलं तक्रेण स्वेदितम्।
पाचितं कटुतैलेन हिङ्गसार्धं प्रतापितम्॥ ९१॥
कफानिलहरं वृष्यं रूक्षमुष्णं च पित्तलम्।
अग्निसंजननं रुच्यं गुरु पाकेऽतिपिच्छिलम्॥ ९२॥

भैरण्ड फल

क. **विधि–**कोमल (भैरण्ड) फलों को तक्र में स्वेदित करें, हिंगु से भृष्ट कर सर्षप तैल में पाक कर लेते हैं– इस रीति से भैरण्ड फल शाक सिद्ध हो जाता है।

ख. **गुण–**

१. कफ नाशक
२. वातज
३. वीर्यवर्धक
४. रुक्ष
५. उष्ण
६. पित्तसंजनन
७. पाचकाग्निवर्धन
८. सच्य
९. गुरु (दुष्पाच्य)
१०. अतिपिच्छिल

अथ कुटजफलम्

सलिलपरिचितं मुखेकृशानोरथ मथितेन विपाचितं सुतैले।
सुलवणसहितं सहिंगुवासं रुचिजनकं गिरिमल्लिकाफलं स्यात्॥ ९३॥
कौटजं सुलघु स्वादु मृदु ग्राहि च शीतलम्।
ज्वरहृद्रोगपित्तासृगुदावर्ताख्यशूलजित् ॥ ९४॥

कुटज फल

क. **विधि–** कुटज (कुड़ा-कोरैमा) को अग्नि तप्त जल में स्वेदित (उबालकर) संतप्त तैल में पाक करते हैं। फिर सैंधव मिश्रित कर, हिंगु धूम से पाचित-सुवासित कर लेते हैं। यह कुटजफल शाक सिद्ध हो गया–यह रुचिकारक होता है।

ख. **गुण–**

१. सुलपु
२. स्वादु
३. मृदु
४. ग्राहि
५. शीतल
६. ज्वर
७. हृद्रोग
८. क्षत
९. अर्श
१०. शूल (रोगनाशक ६-१०)

अथ कदलीफलम्

सहिङ्गुकाज्ये हि कृताधिवासं
मोचाफलं सैन्धवसारशालि।
एलामरीचप्रतिवर्धयोगा-
न्निहन्ति मान्द्यं जठरानलस्य॥ ९५॥
कादल्यं मधुरं शीतं फलं विष्टम्भि पित्तजित्।
स्निग्धं गुरुतरं दाहक्षतक्षयसमीरजित्॥ ९६॥

कदली फल

क. **विधि–**फल (मोचाफल) त्वक (छिलका) रहित, कर्त्तन (काट) कर, हिंगु (भृष्ट) आज्य (घृत) में पाक करते हैं, फिर सैंधव-एला-मरिच चूर्ण मिलाकर, शाक सिद्ध करते हैं। यह पाचनकाग्नि को तीव्र करता (निहन्तिमान्द्य जठरान लस्य)।

ख. **गुण–**

१. मधुर
२. शीत
३. विष्टम्भि
४. पित्तजित्

५. स्निग्ध ६. गुरुतर

७. दाह ८. क्षत

९. समीर (वातजन्य रोग नाशक (७-९)

अथ राजमाषादिफलम्

राजमाषमकुष्ठादिफलं बीजविवर्जितम्।
पक्वं घृतेऽथ पत्रं च सर्वोपस्करसंयुतम्॥ ९७॥
राजमाषं सुहृद्यं च कफपित्तहरं परम्।
आध्मानवातकृद्ग्राहि तत्पत्रं तद्गुणावहम्॥ ९८॥

राजमाष तथा अन्य फल

क. राजमाष लोहा तथा मकुष्ठ (मोठे-वनमुद्गोकि फल-बीज बहिष्कृत- समस्त उपस्कर (भसाले जैसे नमक हिंग सहित) डालकर, घृत में पाक करते हैं। यही विधि (इनके) का शाक में अनुसरण की जाती है (सर्वोपस्कार संयुक्तम्)।

ख. **गुण–**
१. हृद्य २. कफपित्त सुनिवारण
३. आध्मान ४. वातजरोगकर
५. ग्राही ६. पत्रशाक (समान गुण)

अथेरण्डजफलम्

तक्रे संस्वेदितं पूर्वं बालमैरण्डजं बालमैरण्डजं फलम्।
पाचितं तिलजे तैले सर्वोपस्करसंयुतम्॥ ९९॥
ऐरण्डं वातजिद्बल्यं कषायं वातनाशनम्।
आमवातहरं स्निग्धं रुच्यमुष्ण तु पाचकम्॥ १००॥

एरण्ड फल

क. **विधि–** बाल एरण्ड फलों का तक्र में स्वेदन (उबाल कर), जीरक के साथ, घृत में लवण एवं आर्द्रक युक्त वेसवार (मसाला) मिलाकर पाक करते हैं तिल के तैल का प्रयोग)।

ख. **गुण–**
१. वातघ्न २. बल्य
३. कषाय रस ४. वातजित
५. आमवातनाशक ६. स्निग्ध

७. रुचिकारक ८. उष्णवीर्य
९. पाचक

अथ कोहड

कोहडं क्षीरसंस्विन्नं घृते पक्वं सजीरके।
लवणार्द्रकसंयुक्तं वेसवारेण वेष्टितम्॥ १०१॥
पित्तघ्नं मधुरं शीतं रक्तपित्तविनाशनम्।
विष्टम्भजननं हृद्यं सुरुच्यं कफदं सरम्॥ १०२॥

कोहड़ फल

क. **विधि–** फलों को दुग्ध में स्विन्न करें (उबालें); फिर जीरक के साथ घृत में लवण-आर्द्रक युक्त वेसवार (मसाले) के साथ पाक करते हैं- इस रीति से शाक सिद्ध हो गया (कोहड़-मथुआ) फलों को निर्मित)।

ख. **गुण–**
१. पित्तधा २. मधुरविपाकी
३. शीतवीर्य ४. मलावरोधक विष्टभजनन
५. हृद्य ६. सच्च
७. कफ जनन ८. क्षर (मुखविरेचक)

फलशाकाधिकार समाप्त।

अथ पत्रशाकम्

अथ वास्तुकम्

कृतयवसविवेचम्लानवास्तूकशाकं
क्वथितमिलिततक्रं तैलहिङ्गुप्रसक्त्।
लवणमरिचयुक्तं स्पष्टराद्धं सफेनं
चपलयति रसज्ञां वीक्षणादेव पुंसाम्॥ १०३॥
वास्तूकं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्।
सरं प्लीहार्शः पित्तासृक्क्रमिदोषत्रयापहम्॥ १०४॥

क. **विधि–** क्लान (मुरझाये) वास्तुक (बथुआ) के क्षुपों (कृतपवस विवेचम्लान-घासों-वितो आदि में उत्पन्न होने से) या पत्रों को, तक्र में स्विन्न (उबालकर), तैल-हिंगु में प्रसक्त करके, लवण-मरिच-चूर्ण के साथ (फेन सहित) पाक करते

है। (भलीभाँति पकाकर)। यह वास्तुक शाक अवलोकन मात्र से पुरुषों की जिह्वा को चंचल वसाने की विशिष्ट प्रभाव युकत होता है (चपलपति रसज्ञां वीक्षणादेव पुसोम)।।१०३-१०४।।

ख. **गुण–**
१. पाचन २. रुच्य
३. लघु ४. शुक्रवर्धन
५. बल्य ६. क्षर
७. प्लीहावृद्धि ८. अर्श
९. रक्तपित्त १०. कृमिरोग
११. त्रिदोष हर (रोगनाशक–७-११)

अथ चौराई

आलोलितं नविनकोमलतण्डुलीय-
मुद्वाष्पितं सलिलकाञ्जिकमेलके च।
पिण्डीकृतं लवणतैलविपाच्यमेत-
न्मन्दाग्निमङ्कुरयति घृतहिङ्गुवासम्॥ १०५॥

तण्डुलीय

क. **विधि–** चौलाई (तण्डुलीयक) के कोमल शाकक्षुप्र (नवीन) को कर्त्तन कर, जल मिश्रित कांजिक में स्वेदन (वाष्पित) करके, जल निष्कासित कर लेते है– पिण्डो रूप में बना लेते हैं। इसे घृत तथा हिंगु–लवण के सुगन्धित रूप में पक्व कर लेते हैं।

ख. **गुण–** यह (तुण्डलीयक) शाक अभिमांद्य नाशक होता है।।१०५।।

कतिपयकरमदकैरुपेतं
नवदलकोमलतण्डुलीयशाकम्।
तिलरसपरिपाकहिङ्गुसङ्गं
लवणविपाचितमग्निमान्द्याथि॥ १०६॥

करमर्दकयुक्त तण्डुलीयक शाक

किंचित करमर्द (करौदा) सहित नवीन पत्र (नवदल कोमल) युक्त तण्डुलीय को स्वच्छ करके, हिंगु (भृष्ट) के साथ तैल के साथ पकाकर, सैंधव चूर्ण का (यथोचित) मिश्रण करते हैं यह शाक मन्दाग्नि नाशक होता है।।१०६।।

तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्त्रजित्।
सृष्टमूत्रमलो रुच्य दीपनो रक्तपित्तहा॥ १०७॥

तण्डुलीय शाक (मुफ्त) के गुण-कर्म इस प्रकार है—

१. शीतवीर्य २. रुक्ष ३. पित्तजन्य व्याधि
४. कफजनित रोग ५. रक्तजविकार (नाशक ३-४)
६. मलमूत्र सृष्टिकर ७. रुचिसंवर्धक ८. अग्निदीपन
९. रक्तपित्तशामक

अथ कसोंदी

पत्राधिका प्रथमकोमलकासमर्दी
दालीगलद्विमलतण्डुलपिष्टलिप्ता।
सिद्धा घृतेन मरिचैरवचूर्णिता च
जायेत साऽपि रुचिसंजननी जनानाम्॥ १०८॥
कासमर्दी लघुः स्वादुः कासदोषविनाशिनी।
ग्राहिणी रक्तपित्तार्शोविषदोषहरा स्मृता॥ १०९॥

क. **विधि–** कासमर्द (कसोंदी) के पत्राधिका क्षुप से प्रथम को मल कासमर्दी (पत्र द्रव्य) को चणक दाली भिष्टी तथा अमल एण्डुल (चावल) की पिष्ट (पिट्ठी) में लिप्त करके, मरिच चूर्ण मिश्रित कर, घृत में पाक करते हैं। इस रीति से पक्व शाक व्यक्तियों की आहारभक्षण में रुचि की वृद्धि करता है।

ख. **गुण–**
१. लघु (सुपाच्य) २. कासघ्न
३. ग्राही ४. रक्तपित्त
५. अर्श ६. विषजन्य दोष (नाशक ४-६)

अथ देवदालीशाकम्

देवदालीदलं तक्रे स्वेदितं खण्डितं भृशम्।
वेसवारयुते स्वाज्ये भर्जितं हिङ्गुना दृढम्॥ ११०॥
देवदाली सरा तिक्ता ह्यम्लपित्तविनाशिनी।
कुष्ठघ्नी कामलाशोथविषघ्नी च रसायनी॥ १११॥

देवदाली

क. **विधि–** फलो को तक्र में स्वेदित एवं खण्डित (उबालकर-काटें) करके, हिंगु से वेसवार (मसाले सहित) भर्जित कर लेते हैं।

ख. **गुण–** १. सरा (अल्प रेचक-सुखविरेचक) २. तिक्त रस
३. अम्लपित्त शामक ४. कुष्ठ
५. कामला ६. शोथ
७. विषजन्यरोग (नाशक ४-७) ८. रसायन

अथ पाठाशाकम्

पाठाशाकं गतचरदिने गव्यतक्रेण स्वेद्यं
प्रातःकाले जरणसहिते तप्ततैले विपाच्यम्।
चूर्णं क्षिप्तं लवणसहितं मारिचं तत्र नव्यं
सर्वेभ्यस्तद्भवति रुचिदं व्यञ्जनेभ्यः प्रभूतम्॥ ११२॥
पाठा काषायतिक्तोष्णा वातश्लेष्महरा लघुः।
हन्ति श्लेष्मज्वरच्छर्दिकुष्ठातीसारहृद्गदान्॥ ११३॥

पाठा

क. **विधि–** पत्रों को सायंकाल गव्य तक्र (गाय के मट्ठे) में स्वेदन करते हैं (उबाले); तथा प्रातःकाल हिंगु (भृष्ट) के साथ, संतप्त तैल में पक्व करके, सैंधव-मरिच का चूर्ण मिश्रित कर देते हैं।

यह नवीन शाक्र समस्त खाद्य वस्तुओं (व्यंजनो) से अधिक रुचि संवर्धक होता है।

ख. **गुण–** १. कषाय-तिक्त रस २. वात-कफ नाशक
२. लघु (सुपाच्य) ४. श्लेष्म ज्वर
५. छर्दि ६. कुष्ठ
७. अतिसार ८. हृद्रोग (नाशक–४-८)

अथ पोयिकोपहासः

अथ शाकत्रयपरस्परवक्रोक्तिकाः श्लोकाः
द्विधाऽहं षड्रसोपेता किमन्यैर्व्यञ्जनादिकैः।
तण्डुलैरालन? व्याजैर्हसत्येषा हि पोयिका॥ ११४॥

शाकत्रय के विशिष्ट गुण : वक्रोक्ति

पोथिका (स्योय-पोईशाक)

पोथिका तण्डुल ग्रहण व्याज से इस प्रकार हसते हुए कहती है कि मैं दो प्रकार (भेदों) की हूँ (द्विधाऽहम्) तथा छह रसों वाली हूँ (षड्रसोपेता)। मेरे रहते हुए- समक्ष अन्य शाक पदार्थो (व्यंजनों) की क्या आवश्यकता है (किमन्यैर्व्यञ्जन्यन्दिके)।

वटपत्रवद्दलपत्रिका परितप्तैल प्रतापिता।
नवहिङ्गुवाससवासिता परिभोक्तृचित्तविकाशिका॥ ११५॥

व्रट पत्र के समान पत्रों युक्त पोथिका (पोईशाक) को संतृप्त तैल में पाक करते है, तथा नवीहिंगु से सुवाछित कर ली जाती है। यह भोक्ता के मन को प्रसन्न करती है।

सुतप्ततैलतापिता सुवासहिङ्गुवासिता।
घनाम्लतक्रपाचिता सुपोयिकाऽऽज्यभर्जिता॥ ११६॥
पोयिका शीतला बल्या श्लेष्मा वातपित्तहा।
पथ्यदा दोषहा रुच्या निद्रापुष्टिकरी स्मृता॥ ११७॥

पोथिका का विधिवत् पाक

क. **विधि–** घन अम्ल तक्र में, हिंगु की सुवासयुक्त को सुसन्तप्त (भलीप्रकार) तैल में, पोथकना पाक करते हैं, यह शाक भोक्ता के पित्त को प्रसन्नित कर देती है।

ख. **गुण–** १. शीतल २. वल्य
३. कफप्रद ४. कफपित्तनाशक
५. पथ्य (हितकर) ६. दोषहारक
७. रोचनी ८. निद्राजन्य
९. पुष्टिदा

अथ शतपुष्पोपहासः

एकैवाहं बहुरसा स्ववासेनैव वासिता।
शतपुष्पा वदत्येतच्छत्रं दत्त्वा जिगीषया॥ ११८॥

शतपुष्पा-उपहास

शतपुष्प-विजय प्राप्त करने की अभिलाषा से अपने मस्तक पर छत्र (पुष्प विन्यास)

रखकर कहती है– कि मैं एकाकी हूँ, परन्तु बहुत रसों से परिपूर्ण हैं– तथा अपने ही सुगन्ध से समस्त व्यक्तियों को सुवासित (सुगन्धित) करती है॥११८॥

भर्जिता कटुतैलेन सिन्धुजेनावमर्दिता।
शतपुष्पा हसत्येषा परवासव्यपेक्षकम्॥११९॥
शतपुष्पा कटु:स्निग्धा तीक्ष्णोष्णा श्लेष्मवातहा।
रुच्या नेत्ररुजां हन्ति बस्तिकर्मणिर शस्यते॥१२०॥

क. **विधि–** शतपुष्पा को कटुतैल (सर्षप तैल) में भर्जित (भूनी हुई), सैन्धव मिश्रित तथा मर्दित-अन्य गंध की अपेक्षा करने पर हँसती है (हसत्येषा)।

ख. **गुण–**
१. कटुरस २. स्निग्ध
३. तीक्ष्ण ४. उष्ण
५. कफ-वातनाशक ६. रुचिसंवर्धन
७. नेत्ररोग नाशक ८. वस्तिकर्मार्थप्रशस्त

अथ मेथिकोपहास:

स्ववासवासिता चाहं शतपुष्पा यदीरितम्।
किं तया क्रियते भूत्या स्वेनैव स्वोपभोगिका॥१२१॥
मद्वासेनैव सकलं भोजनागारमङ्गणम्।
वासितं मेथिका चष्टे कि स्ववाससुवासिता॥१२२॥

मेथिका उपहास

शतपुष्पा के कहा कि मैं अपनी सुगन्ध से सुगन्धित होता है तब उस ऐश्वर्य का क्या लगा है जब वह अपने लिए ही उपयोगी में हो। इस प्रसंग मे पुन: मेथिका ने कहा क अपनी सुगन्ध से सुगन्धित होने से क्या मेरे सुगन्ध से सम्पूर्ण भोजनालय (महानसं भोजनागार) तथा आँगन (अङ्कणम्) सुगन्धित (वासितम्) हो जाता है (स्ववास-सुवासिता)– यह निभिका की विशेषता–गंध सम्बन्धी है॥१२१-१२२॥

मेथीशाकं पयसि विधृतं स्वेदितं पीडितं हि
प्राज्ये स्वाज्ये जरणसहिते मेलितं भर्जितं हि।
कासोच्छ्वासं प्रसृतमधिकं कर्षितो जाठराग्नि-
र्येन प्राणं सुबहुगुणितं भक्ष भूयोऽपि भूय:॥१२३॥

मेथी

क. **विधि–**

१. मेथी (क्षुप/पत्र) जल में डालकर, स्वेदन (उबाल) देते है, फिर पीड़ित (पिण्डाकार) निचोड़ कर, हिंगु (भृष्ट) से भर्जित करके, घृत में भूनते हैं।

२. जिस मनुष्य की पाचकाग्नि बलहीन (मन्द) हो गयी हो; तथा प्राणों को बहुगुणित कर दिया हो, (श्वास की मात्रा में वृद्धि), वह व्यक्ति कुसशाक को भक्षण निरन्तर (भक्ष भूयोऽपि भूय:) करना चाहिए।

मेथिका दीपनी हृद्या बद्धविट्कृमिशुक्रनुत्।
रूक्षोष्णं तत्फलं कासानिलश्लेष्मवमीञ्जयेत्॥१२४॥

ख. **गुण–**
१. दीपन २. हृद्य
३. बद्दविट ४. कृमिघ्न
५. शुक्र सम्बन्धी विकार हर
६. मेथिका फल-रूक्ष, उष्णवीर्य, कास, वातरोग, कफज नितरोग तथा वमन शान्तिकारक।

अथ काकमाचिका

काकमाचिजनितं मृदुशाकं वेसवारमिलितेन सुवासम्।
तप्ततैलतपनेन सुपाकं केन प्राप्य न कृतं सुखहासम्॥१२५॥

काकमाची

क. **विधि–**काकमाची (मकोय) का मृदु शाक, वेसवार (मसाला) सहित, तप्त तैल में पक्व एवं सुगन्धित शाक को करन ह। जिस व्यक्ति ने सुखहास (सुखपूर्वक हँसा नहीं, इस शाक को भक्षण करके सुख (आनन्द पूर्वक-मुक्त रूप) से हँस सकता है।

काकमाची बहुगुणा कटुतिक्ता रसायनी।
चक्षूरोगहरा हिक्कावमिहृद्रोगनाशिनी॥१२६॥

ख. **गुण–**
१. बहुगुणा २. कटु-तिक्त
३. रसायन ४. चक्षुरोगहर
५. हिक्का ६. वमन
७. हृद्रोग (रोग नाशक– ४-७)

अथ सेहुण्डः

सेहुण्डं दलितं पत्रं स्विन्नं हस्तेन पीडितम्।
जीराज्येनाधिकं पुष्टं माणिमन्थेन मर्दितम्॥ १२७॥
सेहुण्डो रोचनस्तीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः।
शूलमष्ठीलिकाध्मानगुल्मशोथोदरं जयेत्॥ १२८॥

सेहुण्ड (स्नुही)

क. **विधि–** इस पादप के दलित पत्रों को (जल में) स्विन्न (उबालकर), हाथों से मसल कर, जीरक से (भर्जित या छोंककर) घृत में भून लेते है, और मणिमन्थ (सैन्धव लवण) मिला देते हैं। इस रीति से शाक प्रस्तुत है।

ख. **गुण–**

१. रुचिकर	२. तीक्ष्ण
३. दीपन	४. कटु
५. गुरु	६. शल
७. अष्ठीलिका	८. आध्मान
९. गुल्म	१०. शोथ
११. उदर रोग (नाशक–६-११)	

द्विपत्रजातं प्रपुन्नाटशाकं
सुस्वेदितं पीडितगाढबाढम्।
ससैन्धवं राजिकया सुदध्ना
विमर्द्य सेव्यं क्वथितेऽथ पाच्यम्॥ १२९॥
प्रपुन्नाटो लघुःस्वादुः वातश्लेष्महरः परः।
तिक्तःकण्ड्वामयहरः कासकुष्ठकृमीञ्जयेत्॥ १३०॥

प्रपुन्नाट

क. **विधि–** द्विपत्रजात (दोपत्तेवाले) शाक को स्विन्न (उबाल) करके (हाथ से मसलकर), जीरक को भृष्ट (छौंक) देकर, घृत (घी) में भूनकर (भर्जित कर), सैन्धव चूर्ण मिलाकर रखे। यह शाक का निर्माण हो गया।

ख. **गुण–**

१. रुचिकर	२. स्वादु
३. अग्निदीपन	४. कटुरसतिक्त
५.	६. सुपाच्य

७. वात-कफनाशक	८. कण्डू
९. कास	१०. कुष्ठ
११. कृमिरोग नाशक (८-११)	

अथ लुणियाशाकम्

शाकं लौणिकसंज्ञकं सुदलितं तप्ते घृते तापितं
हिङ्ग्वार्द्रेण विमिश्रितं सलवणं तक्रेण संपाचितम्।
नो वा स्वेद्यमिदं सुहिङ्गुसहिते तैले सुवाग्धारितं
स्विन्नं तण्डुलसंयुतं सलवणं तक्रैर्विना पाचितम्॥ १३१॥

लौणिक

क. **विधि–** लौणिक (लोनी) को उबाल कर, हथों से निचोड़कर पीडित करके, सैंधव तथा राजिका (राई) के साथ मर्दन करना चाहिए। इसका क्वाथ भी बनाते हैं। यह शाक हींग (भृष्ट) तथा आर्द्रक के सहित तक्र के साथ लेते है। हिंगु (भृष्ट) के साथ तैल में छैता लगाना हो निदन नहीं करना चाहिए। स्वेदन किया लोगी का शाक तण्डुल सा लवण के साथ तक्र के बिना-पाक किया जाता है।

लोणिकं गुरु शीतोष्णं रूक्षं विष्टम्भकृत्सरम्।
दोषकृन्मधुरं पाके वातकृत्त्वम्लपित्तलम्॥ १३२॥

ख. **गुण–**

१. गुरु	२. शीत
३. उष्ण	४. रुक्ष
५. विष्टम्भकृत्	६. सर
७. दोषकृत्	८. मधुर
९. वातकारक	१०. अम्लपित्त जनन

चणक शाक

सुकृतं चाणकं शाकं तप्ततैले सुपाचितम्।
सुतण्डुलालनयुतं हिङ्ग्वार्द्रकविमिश्रितम्॥ १३३॥

क. **विधि–** चणक (चने) के शाक को सुकृत (भलीभाँति काटकर), तप्त तैल में पाक करते हैं, तथा तण्डुल (चावल) हिंगु तथा आर्द्रक मिलाकर बनाते हैं।

सशिखं चाणकं शाकमम्लतक्रेण स्वेदितम्।
सहिङ्गुलवणे तैले भर्जितं नागरान्वितम्॥ १३४॥

शिखा के साथ चणक शाक को अम्ल तक्र में स्वेदन करते (उबालते) हैं; फिर हिंगु तथा लवण के साथ, घृत में भर्जित कर शुण्ठी चूर्ण को मिश्रित कर देते हैं।

ख. **गुण–** १. दुर्जर (दुष्पाच्य) २. वातकारक
३. विशम्भकारक (पुष्परहित शाक) ४. हृद्य

क्षाराम्लभावसहजाश्चणकप्रवाला:
संमर्दितामरिचसैन्धवशृङ्गवेरैः।
संचूर्णिताः कटुकतैलयुतैः समस्तै-
र्भृष्टैः सुहिङ्गुजकणैः परिदत्तवासाः॥ १३५॥

क्षारीय शाक : चणक

प्राकृतिक (स्वाभविक) रूप से क्षारीय एवं अम्ल चणक के मृदु प्रबल (पत्रों) को सम्यक् मर्दन करके, मरिच-सैंधव-शुण्ठी चूर्ण सहित, कटुतैल (सरसों के तैल) में भर्जित (भून) कर लेते हैं; फिर हिंगु (भृष्ट) से सुगन्धित (परिवासक) करते हैं॥१३५॥

चाणकं शाकमुद्दिष्टं दुर्जरः कफवातकृत्।
विष्टम्भजननं हृद्यं विशेषात्पुष्पवर्जितम्॥ १३६॥

अथ चञ्चुशाकम्

चञ्चुशाकजमिदं मृदुपत्रं
स्वेदितं तुषजलेन नितान्तम्।
तैलहिङ्गुलवणैः सुपाचितं
कस्य नो दिशति चेतसोत्सवम्॥ १३७॥

चञ्चुः शीता सरा रूक्षा स्वादुर्दोषत्रयापहा।
धातुपुष्टिकरा बल्या मेध्या पिच्छिलिका हि सा॥ १३८॥

चञ्चुशाक

क. **विधि–** चञ्चु के मृद पत्रों (मुलयम पत्ते) को तुषोदक में स्विन्न करके (उबाल कर), तैल-हिंगु-लवण के साथ पाक करते है। इस रीति से सिद्ध शाक से किसी भोक्ता के मन में आनक उत्पन्न नहीं होगा– सभी भक्षण कर्त्वयों को प्रसननता दायक होता है।

ख. **गुण–** १. शीत २. सरा
३. रुक्ष ४. स्वादु
५. त्रिदोषहर ६. धातुपुष्टिकर
७. बल्य ८. मेध्य
९. पिच्छिल

अथ नाडी(ली) शाकम्

नालेन रहिता नाली सुस्विन्ना मुष्टिपीडिता।
घृते तप्ते परिक्षिप्ता चिञ्चिणीपत्रसंयुता॥ १३९॥
नाली सरा लघुः शीता पित्तनुत्कफवातला।
व्रणशोथहरा ज्ञेया लिप्ता शोथघ्निका मता॥ १४०॥

नाडी शाक

क. **विधि–** नाड़ी (नली) शाक-वाली रहित–को स्विन्न करते (उबालते) हैं, तथा युष्टि (मुट्ठी) से मर्दित कर-भर्जित कर– पिण्डी कर लेते हैं; तप्त घृत में चिंचा इमली केक पत्रों के साथ (अग्निपर) घृत में डाल देते हैं। इस रीति से नाड़ीशाक सिद्ध हो जाता है।

ख. **गुण–** १. सर २. सुवाच्य
३. शीतल ४. पित्तशामक
५. कफजनन ६. वाल कारक
७. व्रण ८. शोथ (नाशक-७-८)
९. नाड़ी का लेप शोथनाशक

अथ पालिक्यशाकम्

पालिक्यं दलितं शाकं तिलतैले विपाचितम्।
अम्लद्रव्यसमाकीर्णं हिङ्गुसैन्धवसंयुतम्॥ १४१॥
पालिक्या वातला शीता भेदिनी श्लेष्मला गुरुः।
विष्टम्भजननी चैव नेत्ररोकरी हि सा॥ १४२॥

पालकी शाक

क. **विधि–** पालकी को कर्त्तन करके, तिलतैल में अम्ल द्रव्य का चूर्ण, हिंगु तथा सैन्धव चूर्ण डालकर शाक को पक्व कर लेते हैं।

ख. **गुण–**

१. वातकारक	२. शीत
३. सार (मलभेदक)	४. कफकारक
५. गुरु (गरिष्ठ)	६. विष्टम्भ जनक
७. नेत्ररोगजनन	

अथ मारीचशाकम्

सुतप्तमाज्ये बहुजीरकान्विते
सुस्वेदितं मारिचसंज्ञशाकम्।
ससैन्धवं तक्रविलोड्य पाचितं
संप्रापितं प्राक्तनभाग्यकेन॥ १४३॥
रुच्यं वातहरं बल्यं कफहृद्रोगनाशनम्।
हृद्यं पित्तकरं किंचिच्छाकं मारिचसंज्ञकम्॥ १४४॥

मारीच

क. **विधि–** इसको सुस्वेदित (उबालकर), जीरक (अधिक मात्रा में) का तप्त घृत में छौंक कर, सैंधव युक्त तक में मिश्रित कर पाक करते हैं। इस रीति से मारीच शाक सिद्ध हो जाता है। इस मारीच शाक भक्षण का व्यक्ति को पूर्वजन्म के भाग्य से अवसर प्राप्त होता है।

ख. **गुण–**

१. रुचि जनन	२. वातहर
३. वल्य	४. कफनाशन
५. हृद्रोग नाशाक	६. हृद्य
७. किंचित् पित्तकारक	

अथ ववौतिशाकम्

सदण्डपत्रं मृदु खण्डशः कृतं
सरामठं तप्तघृते सुभर्जितम्।
ससैन्धवं तक्रयुतं विपाचितं
ववौतिकं देवशिवेन दापितम्॥ १४५॥
सुगन्धं पित्तहृद्बल्यं हृद्यंवातानुलोमनम्।
प्रोक्तं लघुतरं पाके नागवल्ल्यास्तलोद्भवम्॥ १४६॥

वचौतिक्तं

क. **विधि–** ववौति शाक के नाल तथा फल सहित मृदु भाग का कर्त्तम करके, हिंगु के साथ तप्त घृत में भर्जित करते (भूनते) हैं; फिर सैंधव तथा तक्र मिलाकर पाक करें। यह ववौति शाक भगवान शंकर (देवशिवेन) ने का प्रदान किया (दाषितम्) है– वह शाक विशेष की महत्ता का उल्लेख प्राप्त होता है (शाक वर्णन के साथ)।

ख. **गुण–**

१. सुगन्धित	२. पित्तशामक
३. वल्य	४. हृद्य
५. वातानुलोमन	६. लघुतर

विशिष्टोद्भव– वकौत शाक (क्षुप) की उत्पत्ति नागवल्ली (ताम्बूल वल्ली) के अधोभाग (तल) से होती है (नागवल्लास्तलोद्भवम्), जो कि गुणों में अत्यन्त लघु (सुपाच्य) होता है॥१४५-१४६॥

अथ वेल्लजं शाकम्

सुकृत्तं वेल्लजं शाकं क्षिप्तमाज्ये सहिङ्गुके।
उषिते क्वथितं तक्रे शुक्लवर्णं विपाचितम्॥ १४७॥
वेल्लजं कटुकं शाकं तिक्तं च लघु पाचकम्।
सुगन्धं सुरसं प्रोक्तं सुशीतं रुचिकारकम्॥ १४८॥

वेल्लज शाक

क. **विधि–** वेल्लज (मरिच) शाक का भलीभाँति कर्तन-स्वच्छता (सुकृत) करके, पर्युषित तक्र (उषिते कवथितं पाके) में क्वथित (उबाले) करते हैं, फिर हिंगु तथा तप्त घृत में डालकर, शुक्ल (शीत) वर्णीय शाक का पाक करते है (विपाचितम्)।

ख. **गुण–**

१. कटु-तिक्तरस	२. लघु
३. पाचक	४. सुगन्धित
५. सुरस	६. सुशीत
७. रुचिकारक	

अथ चूकाशाकम्

चुक्रकं सुतिलतैलपाचितं
सूपधूपमिलितं ससैन्धवम्।
वृन्तकेन सहितं सुसौख्यदं
भामिनीव मिलिता सुकामिनम्॥ १४९॥
चुक्रं चुक्रतरं स्वादु वातघ्नं पित्तकृत्परम्।
रुच्यं लघुतरं पाके सवृन्ताकं सुरोचकम्॥ १५०॥

चुक्का शाक (चुक्र)

क. **विधि–** चुक्र (चूका) के शाक (क्षुप) को शुद्ध तिलतैल में पकते हैं, फिर क्षुप्र धूप (हिंगु) से सुवासित करके, सैंधव लवण सहित मिलाकर सम्यक् रूपेण पाक करते हैं। इस क्षुपीय शाक को वृत्त सहित (वृन्तकेन सहितम्) पकाने का निर्देश है, जिससे असीम आनन्द की प्राप्ति होती है, जैसे कामाभिलाषी व्यक्ति को (संयोगवश) सुरुपा-क्षमेच्छुक स्त्री की प्राप्ति हो कर, काम सुख की प्राप्ति हो जाये (सुसौरव्यदं भामिनीय मिलिता सुकाभिनम्)।

ख. **गुण–**
१. चुक्रतर (अलम्ल) २. स्वादु
३. वातज ४. पित्तकारक (परम्)
५. रुच्य ६. लघुतर
७. वृन्ताक सहित चुक्रशाक सुरीचक रुचिकर तथा आहार में रुचि उत्पन्नकारी।

अथ पुनर्नवाशाकम्

पौनर्नवं शाकमतीव मिष्टं
संस्वेदितं मुष्टिभिरेव पिष्टम्।
संपाचितं मिष्टतमे सुतैले
संवासितं हिङ्गुकणेन रुच्यम्॥ १५१॥

पुनर्नवा

क. अति स्वादु-मीठा (पौनुर्भवं शाकमतीव मिष्टम्) पुनर्नवा के क्षुप (प्रसारी) को संस्वेदित (उबाल) कर, हाथों की मुट्ठी (कर-मुष्टिभिरेव पिष्टम्) से पीस-मसल कर, अत्यधिक मीठे तैल (भिष्टतमे सुतैले)– जैसे श्रेष्ठ कोटि के तिलतैल पर पाक करते है (संपाचितम्), तथा (तदनन्तर) हिंगुकणों द्वारा सुधूपित कर लेते हैं। इस रीति से पुनर्नवा का शाक सिद्ध हो जाता है॥१५१॥

पौनर्नवं हि चाक्षुष्यं तिक्तं रूक्षं कफापहम्।
शोथपाण्डुक्षयश्वासज्वरहृद्रोगनाशनम् ॥ १५२॥

ख. **गुण–**
१. चक्षुष्य २. तिक्त रस
३. रुक्ष ४. कफनाशक
५. शोथ ६. पाण्डु
७. क्षय ८. श्वास
९. ज्वर १०. हृद्रोग (नाशक ५-१०)

अथ चित्रावलीशाकम्

विचित्रं चित्रकं शाकं कासमर्दविमर्दितम्।
तप्ततैले सबाह्लीके पाचितं तक्रसंभृतम्॥ १५३॥
चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचको लघुः।
श्लेष्मानिलहरो ग्राही रुच्यो वृष्यतरो हि सः॥ १५४॥

चित्रावली (चित्रक)

क. **विधि–** कासमर्द (मसाले) के साथ, विचित्र चित्रक के शाक का मर्दून करते हैं, फिर हिंगु सहित तप्त तैल में तक्र मिश्रित करके पाक कर लेते हैं। इस रीति से चित्रावली शाक सिद्ध हो जाता है।

ख. **गुण–** १. कटुरस (विपाकी) २. अग्निदीपन (बह्निकृत्)
३. पाचक (पचने में सहायक) ४. लघु (सुपाच्य)
५. कफघ्न ६. वातघ्न
७. ग्राही (मल को बाँधने वाला) ८. रुच्य (रुचि संजजन)
९. वृष्यहर (अत्यन्त वीर्यवर्धन)

अथ कौसुम्भम्

कौसुम्भं कोमलं शाकं कासमर्दविमर्दितम्।
पाचितं तप्तके तैले ममिमन्थविमन्थितम्॥ १५५॥
कौसुम कासजिच्छाकं रूक्षमुष्णं च पित्तलम्।
सुस्वादु मधुरं पाके लघु रुच्यं सरं हि तत॥ १५६॥

कौसुम्भ (कुसुम्भ)

क. **विधि–** कुसुम्भ (बैर) का मृदु (कोमल) शाक को कासमर्द (वेसवार-मसाला से सुगन्धित करके तथा मर्दन पूर्वक) सैंधव मिलाकर, तप्त तैल में डालकर पाक करते हैं। इस रीति से कौसुम्भ शाक प्रस्तुत है।

ख. **गुण–**
१. कासजित २. रुक्ष
३. उष्णवीर्य ४. पित्तजनन
५. स्वादु ६. मधुरविपाकी
७. सुपाच्य (लघु) ८. रुच्य (रुचिवर्धन)
९. सर (सुखविरेचक)

अथ शिंखाली

श्रीबालकदलं ग्राह्यमारनालेन तापितम्।
पिण्डितालोडितं तैले कासमर्दसमन्विते॥ १५७॥
वातपित्तहराबल्या विवन्धाध्माननाशिनी।
कफकृन्मूत्रकृच्छ्रघ्नी भेदनी सा रसायिनी॥ १५८॥

शिवाली

क. **विधि–** शिवाली (श्रीबालक) के पत्रों (दल) को आरनाल के साथ उबालते (तापितम्) है, निचोड़कर पिण्डी की आवृत्ति में बनाते हैं। तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्य कासर्मद (मसाला) आदि समिलित करके, तैल में पाक करते हैं।

ख. **गुण–**
१. वातघ्न २. पित्तशामक
३. वल्य ४. विबन्ध हर
५. आध्मान नाशक ६. मूत्रकृच्छ्र नाशक
७. मलभेदन ८. रसायन

अथ जीवन्तीशार्कम्

जीवन्त्या कोमलं पत्रं स्विन्नं तक्रे सुपिण्डितम्।
हिङ्गुना भजितं तैले तक्रं क्षिप्त्वा प्रलेहितम्॥ १५९॥
जीवन्ती बृंहणी वृष्या गुर्वी रुच्या रसायनी।
चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी प्रोक्ता मधुरपाकिनी॥ १६०॥

इति पत्रशाकाधिकारः।

जीवन्ती

क. **विधि–** मृदु (कोमल) पत्रों को तक्र में स्विन्न (उबाल) करते हैं, निचोड़कर पिण्डी के आकार का बना लेते हैं; फिर हिंगु (भृष्ट) कर तक्र में डालकर, प्रलेह की भाँति पाक कर लेते हैं। इस रीति से जीवन्ती शाक (प्रलेह ८) का निर्माण हो जाता है।

ख. **गुण–**
१. बृंहण २. वृष्य
३. गुरु ४. रुच्य
५. रसायन ६. चक्षुष्य
७. सर्वदोपघ्न ८. मधुर विपाकी

पत्रशाक प्रमेद पूर्ण।

अथ पुष्पशाकम्

अथ करीरकुसुमम्

कारीरं कुसुमं सुधर्मनिहितं
सद्वारिणा संयुतं
सप्तहेन विपाचितं सलवणं
हिङ्ग्वाढ्यतैले भृशम्।
क्षिप्तं तक्रवरं सुकाञ्जिकमथो
सद्वेसनेनान्वितं
भोक्तार केन समर्चितः प्रतिदिनं
श्रीपार्वतीशः स्वयम्॥ १६१॥
कारीरं कुसुमं भेदि कटुकं कफनाशनम्।
पित्तहृद्रुचिरं भव्यं कषायं पथ्यपदं भृशम्॥ १६२॥

करीरपुष्प

क. **विधि–** करीर पुष्प सुघर्म निहित (धूप में सूखे हुए), जल मे स्विन्न (उबाले) हुए, लवण तथा हिंगु से युक्त तैल (अधिक) में भर्जित करते (भूनते) है। इसे एक सप्ताह तक पाक करते हैं, बेसन या तक्र मिलाकर।

इस रीति से पक्व (सिद्ध) शाक को कौन भक्षणकर्त्ता है, जो भगवान् शंकर की स्वयं प्रतिदिन पूजन करता है– इस शाक का भक्षण करनेवाला शिव (पार्वतीश) को प्राप्त जाता है।

ख. **गुण–** १. भेदन २. कटु-कषाय रस
३. कफ नाशक ४. पित्तघ्न
५. रुच्य ६. कषाय

अथ कटुजपुष्पम्

काञ्जिकेन मधुरेण मुहूर्तं
स्वेदितः कुटजपुष्पगुलुञ्छः।
पाचितः सलवणस्तिलतैले
याति हिङ्गुसुरभीरुचिरत्वम्॥ १६३॥
कौटजं कुसुमं ग्राही सुस्वादु मृदुशीतलम्।
लघु हृद्रोगपित्तासृगुदावर्तज्वरं जयेत्॥ १६४॥

कुटज पुष्प

क. **विधि–** कुटज के पुष्प गुच्छों का मधुर कांजिक में दो घटी (एक मुहूर्त) स्वेदन (उबालते) हैं तथा उसको मिचोड़ते हैं (कुटज पुष्प गुलुच्छ्र पीडितम्) तथा लवण के साथ, तिलतैल में हिंगु से सुरभित बनाकर, तैयार करते हैं। इस रीति से पवन 'कुटजपुष्प शाक' रुचिवर्धन होता है।

ख. **गुण–** १. ग्राही २. सुखादु
३. मृदु ४. शीतल
५. सुपाच्य ६. लघु
७. हृद्रोग-रक्तपित्त-उदावर्त-ज्वरनाशक

अथ शोभाञ्जनम्

शिग्रुमूलफलपुष्पमिश्रितं
तैलपक्वमुदकेऽथ साधितम्।
क्षिप्तसैन्धवरजः सहिङ्गुना
जायते सुरभि दीपनं वसोः॥ १६५॥

शिग्रुकः कटुतीक्ष्णोः स्नायुशोथसमीरजित्।
कृमिजित्कफदोषघ्नो विद्रधिप्लीगुल्महा॥ १६६॥

शोभांजन

क. **विधि–** शिग्रु (शोभांजन) के मूल-पुष्प युक्त फल (फली) को, तैल में हिंगु (भृष्ट करके) को लवण के साथ भर्जित करते हैं तथा जल मिलाकर पका लेते हैं। इस रीति से सिद्ध शाक सुगंधयुक्त (सुरभि) तथा दीपन (पाचकाग्नि को प्रक्षप्त करने वाला) होता है।

ख. **गुण–** १. कटु रस २. तीक्ष्ण
३. उष्ण ४. स्नायुशोथ
५. वातघ्न ६. कृमि
७. कफजदोष ८. विद्रधि
९. प्लीहावृद्धि १०. गुल्म (रोगनाशक ६-१०)

अथ कचनारः

काञ्चनारः कषायश्च उष्णः शीतहरो लघुः।
रूक्षः पित्तासृक्प्रदरग्रहणीक्षयकासनुत्॥ १६७॥

कांचनार

कांचनार (कचनार) के पुष्प (फूलों) का शाक निर्माण किया जाता है। इसके गुण-कर्म निम्नांकित है–

१. कषाय रस २. उष्ण ३. शीतहर
४. लघु (सुपाच्य) ५. रूक्ष
६. रक्तपित्त प्रदर–ग्रहणी दोष–क्षय रोग कास (नाशक)।

अथ शिरदुला

कलिका नैव दलिता स्विन्ना तक्रे घृताधिके।
वेसवारोषणापूर्णा हिङ्गुचूर्णे विपाचिता॥ १६८॥
नीलिनी रोचनी तिक्ता केश्या मोहभ्रमापहा।
उष्णा हन्त्युदरप्लीहवातपित्तकफामयान्॥ १६९॥

शिरदुला

क. **विधि–** शिरदुला (नलिनी) के कली (कलिका नैव दलिता) बिना कटी, तक्र में स्वेदन तथा पीड़ित करते हैं; इस द्रव्य की प्रभूत (अधिक) घृत में वेसवार (मसाला) डालकर, मरिच-शुण्ठी-हिंगु (भृष्ट) चूर्ण मिलाकर पाक करते है।

ख. **गुण–**

१. रुच्य २. तिक्तरस
३. केश्य ४. मोह
५. भ्रम ६. उष्ण
७. उदरोग ८. प्लीहवृद्धि
९. वात-पित्त-कफ जनित रोग (नाशक ४-५,७-९)

अथ अगस्तिकुसुमम्

आगस्त्यं कुसुमं तथा मृदुफलं केनाहृतं जन्तुना
धन्यं चाद्य दिनं यदद्य मिलितं कस्यास्यमालोकितम्।
स्विन्नं तक्रयुतं सुहिङ्गुलुलितं तप्ते घृते पाचितं
भोक्त्रा सत्वरभाषितं प्रियतमे नाद्यापि संपाचितम्॥ १७०॥
आगस्त्यं पित्तकफजिच्चातुर्थकहरं हिमम्।
तत्फलं पीनसश्लेष्मवातनक्तान्ध्यनाशनम्॥ १७१॥

अगस्त्य (अगस्ति)

अगस्त्य (अगस्ति) का पुष्प (फूल) तथा मृदु फल (मुलायम फल) किस मनुष्य के द्वारा लिया गया है (केनाहतं जन्तुनाम्), जिसकी आज (दिन) को प्राप्ति हो गयी (धन्यं चाद्य दियं मिलितं कस्थास्मावलोकितम्), आज का दिवास श्रेष्ठ है, किसका मुख प्रातःकाल ही अवलोकन किया। यह अगस्त्य पुष्प तथा फल की उपलब्धि की व्यंगात्मक/ वक्रोक्ति पूर्वक प्रशंस है आज का दिन धन्य है, जब अगस्त्य पुष्प की प्राप्ति हुई है।

क. **विधि–** अगस्त्य का पुष्प तथा मृदु फल तक्र में स्वेदित करके, हिंगु (भष्ट) देने के व्यह, घृत में पाक करते है– इस (सरल) रीति से अगस्त्य शाक सिद्ध हो जाता है।

इस शाक को भक्षण करने वाला कहता है, हे ! प्रियत में आज भी आगस्त्य के शाक का पाक किया है या नहीं अर्थात् भोक्त की यही शाक भक्षण की प्रबल अभिलाषा है।

ख. **गुण–** पुष्पशाक

१. वात-पित्तहारक
२. चतुःथिक ज्वर
३. शीतल
४. कफजनित रोग
५. पित्तघ्ननित रोग
६. (नाशक–२, ४-५)

फलशाक

१. पीनस
२. कफ-वातजन्य रोग
३. नक्तान्ध्य
(नाशक– १-३)

अथ अरणीपुष्पम्

अग्निमन्थभवबालबुण्डिका
सप्तरात्रमुदके सुसंधिता।
तक्रसिक्तघृतपाकपाचिता
हिङ्गुना जनितवासवासिता॥ १७२॥
अग्निमन्थोऽतिहृद्यश्च त्रिदोषशमनः सरः।
आध्मानच्छर्दिहा शोथचक्षुरोगविषापहः॥ १७३॥

अरणी पुष्प

क. **विधि–** अरणी (अग्निमन्थ बुण्डिका) को नवीन (बाल) कलिका को ग्रहण करके, एक सप्ताह (सप्त रात्रि) पर्यन्त जल में स्थापित कर देना चाहिए (फिर तक्र में स्वेदन (उबाल देते) करते हैं; सुगंधित कर घृत में पाक कर लेते है।

ख. **गुण–**

१. अत्यधिक वल्य २. त्रिदोषशामक
३. सारक ४. आध्मान
५. वमन ६. शोथ
७. नेत्ररोग ८. विषजन्य विकार
(नाशक– ४-८)

अथ शणपुष्पम्

सुस्विन्नं शाणकं पुष्पं तक्रे तैले विपाचितम्।
हिङ्गुना वासितं वेल्लसुचूर्णेनावचूर्णितम्॥ १७४॥
शणपुष्पं सरं बल्यमसृक्प्रदरनाशनम्।
मधुरं रुचिदं पाके किञ्चिद्विष्टम्भाकारकम्॥ १७५॥

शणपुष्पम्

क. **विधि–** शणपुष्प (सनई के फूल) को तक्र में स्वेदन (उबाल कर) करते है, इसे तप्त तैल में हिंगु से सुगन्धित कर, अम्ल पदार्थ का चूर्ण मिश्रित करके-पाक चूर्ण करते हैं।

ख. **गुण–**

१. सर	२. बल
३. असृक प्रदर	४. मधुर
५. रुचिद	६. मधुर विपाकी
७. रुचिवर्धन	८. अल्प विबन्धकारक (नाशक–४-८)

अथ मधूकपुष्पम्

सद्यश्च्युतं स्थूलमधूकपुष्पं
संशोधितं केसरधूलिवर्जितम्।
संपाचितं शुभ्रसिताघृताभ्यां
सजीरकं जीवनदं हि जीविनाम्॥ १७६॥
बृंहणीयं सुमधुरं मधूककुसुमं गुरु।
वातपित्तप्रशमनं हृद्यं रुच्यं मुखप्रियम्॥ १७७॥

इति पुष्पाधिकार:।

मधूक पुष्प

क. **विधि–** स्वयं-तुत्वारित (सद्यच्युत) पतित (गिरे हुए) मधूक के स्थूल (बड़े) पुष्प (फूलों) को लेकर, पुष्प केशर को निकाल देते हैं, तथा जल से प्रक्षलित (धोकर), शुद्ध कर लेते हैं। तदनन्तर, इस द्रव्य को घृत में भृष्ट जीरक (छोंक) देते हैं, फिर श्वेत शर्कर मिलाकर, पाक कर लेते हैं। यह प्राणियों (जीविनाम्) को जीवन (जीवनदंहि) प्रदान करता है।

ख. **गुण–**

१. वृंहणीय (मांस वर्धन)	२. सुगधुर
३. गुरु (गरिष्ठ)	४. वातपित्त शामक
५. हृद्य	६. रुच्य
७. मुख प्रियम् (मुँह को अच्छा बनाने वाला)	

पुष्पधिकार समाप्त:

अथ पल्लवा:।

अथ तोरई पत्र शाकम्

कोशातकीवल्लिभवागरपल्लवा:
सुपीडितास्तक्रयुता: सुसंभृता:।
संभर्जिता: सैन्धवहिङ्गुनाऽधिके
तैलेऽतिरुच्या तनुपुष्टिदायिका:॥ १७८॥

कोशातकी पल्लव

कोशातकी (तोरई) नामक वल्ली (लता) के अग्रभाग में उपलब्ध पल्लवों (कोमल पत्रों) को एकत्र करते हैं, जिनको तक्र (मट्ठा) में स्वेदिह (उबालकर) पीड़ित (कर), पिण्डाकार बनाकर, अधिक मात्रा में तैल में, हिंगु (भृष्ट) कर सैंधव लवण (छोंककर) भून लेते हैं (संभर्जित:)। इस रीति से सिद्ध शाक शरीर को दृढ़ता प्रदान करता है, अतिरुचिंदायक है (अतिसच्च तनु हरदायिका:)।

अथाम्रपल्लवा:

स्विन्ना निष्पीडिता: कामं कोकिलाहापल्लवा:।
घृतसिन्धूत्थसंसिद्धा रुच्या रामठवासिता:॥ १७९॥
सर्पिषा खण्डयुक्तेन तलयेदाम्रपल्लवम्।
लवङ्गार्द्रकसंयुक्तमरुचौ रुचिकारकम्॥ १८०॥

आम्रपल्लव

सर्वप्रथम कोकिलाहार (आम्र) के मृदु पत्रों या पल्लवों को एकत्र करते हैं; इनको घृत एवं खण्ड में तलते (तलयेदाम्रपल्लवम्) हिंगु (भृष्ट) सहित, इसी में लवंग (लौंग) एवं आर्द्रक (अदरक) की चूर्ण मिश्रित कर देते हैं। यह शाक अरुचि का निवारण कर, रुचिकारक होता है।

अथ निम्बपल्लवा:

निम्बस्य कोमलतराणिर दलानि भृष्ट्वा
स्वाज्ये क्षिपेत्तदनु सैन्धवयुक्ततक्रे।
शालेयतण्डुलकणै: सह रामठेन
वाधारितं ददति रोचनमेव लेह्यम्॥ १८१॥

निम्ब पल्लव

क. **विधि–** निम्ब (नीम) अति मृदु (मुलायम) पत्तों (कोमलतराणिर दलानि) को एकत्र कर, घृत में भूनकर (स्वाज्ये क्षिपेत्तदनु), सैंधव मिश्रित तक्र में डाल देते हैं तथा हिंगु (भृष्ट) से छौंकते है। इस सिद्ध (वाधारितम्)। इस रीति से सिद्ध ल हम रूपी पाक शाक रोचन होता है (रुधिवर्धक)।

निम्बः शीतो लगुर्ग्राही दाहजित्त्वग्निकारकः।
व्रणपित्तकफच्छर्दिकुष्ठहृल्लसमेहनुत् ॥१८२॥

इति पल्लवाधिकारः

ख. **गुणः–**

१. शीत	२. लघु	३. ग्राही
४. दाहवित्	५. अग्निकारक	६. व्रण रोपण
७. पित्तजन्य रोगशामक	६. कफजन्य रोगहर	८. वमन शामक
१०. कुष्ठनाशक	११. हल्लास निरोधक	१२. प्रमेहहर

पल्लवप्रभेद पूर्ण

अथ दण्डाधिकारः

दण्ड शाक

अथ कदलीदण्डशाकः

वृन्तच्छिन्नः सलिलविधृतः कृत्ततन्तुः प्रयत्नात्
कम्बुभ्रान्ता जलविरहितोक्षारजम्बीरभृष्टः।
मध्ये मध्ये तनुसकलितश्चार्द्रकेनातिपूर्णः
स्वादुस्तूर्णं भवति सुतरां गर्भदण्डः कदल्याः॥१८३॥
योनिदोषहरो दण्डः कादलोऽसृग्दरं जयेत्।
रक्तपित्तहरः शीतः सुरुच्यो बलवर्धनः॥१८४॥

कदलीदण्डशाक

क. **विधि–** कदली (केले) को वृत्त को गर्भदण्ड से पृथक करके, तन्तुओं को प्रवलपूर्वक निष्कास्ति कर देते हैं। इस शंख (कम्बुभात्या) जैसा जल का भी निष्क्रमण कर लेते है, फिर उसे (जल विरहित) क्षार तथा जम्बीर द्रव मे भृष्ट

करके (भून लेते) है। तथा बीच-बीच (मध्ये मध्ये) आर्द्रक खण्डों (छोटे) को मिलाते जाते है। इसरीति से कदली गर्भदण्ड वथा शीघ्र अत्यन्त स्वादु (स्वादुस्तूर्ण भवति सुतराम्) रूप में प्रस्तुत होता है।

ख. **गुण–**

१. योगिदोषहर	२. असृग्दर (प्रदर) नाशक
३. रक्तपित्त शानक	४. शीत
५. सुरुच्य	६. बलवर्धन

अथ ढेहिद्याकम्

संक्षुद्य तक्रेऽम्लतरे सुस्विन्नं
प्रतप्तमाज्ये नवढेहिशाकम्।
ससैन्धवं रामठदत्तवासं स्वाद-
न्नरो निन्दति व्यञ्जनानि॥१८५॥

ढेहिका वातला रूक्षा शीता गुर्वी विषापहा।
सुस्विन्ना रोचनी हृद्या अस्विन्न कण्ठकर्तरी॥१८६॥

ढेहिशाक

क. **विधि–** ढेहिशाक को संक्षुद्य (कुचल/आहत) कर, तक्र अम्ल में सुस्विन्नं (उबालकर) करने के बाद, तप्त आज्य (घृत) में भर्जित करते (भूनते) हैं। फिर, सैन्धव तथा रामठ (हिंगु) चूर्ण से सुवासित कर लेते हैं। इस रीति से सिद्ध शाक (ढेहि) का भोक्ता, अन्य समस्त व्यंजनो की निन्दा करेगा (नरो निन्दति व्यञ्जनानि) अर्थात् ढेहिशाक के भक्षणोपरान्त अन्य सभी भोज्य पदार्थों का त्याग करने (उसके समान स्वादु न होने के कारण) के योग्य समझता है।

ख. **गुण–**

१. वातकारक	२. रूक्ष
३. शीत	४. गुर्वी (दुष्पाच्य)
५. विपनाशक	

सुस्विन्न (सम्यक् रूप से उबाल हुआ) ढेहिशाक– १. रुचिकारक, २. हृद्य। अस्विन्न ढेहिशाक– कण्ठकर्तरी (गले को काटने बला होता है।

अथ सार्षपः शाक

सार्षपः कोमलो दण्डः स्विन्नस्तक्रेण पीडितः।
तप्ततैले सुहिङ्ग्वाढ्ये भर्जिताः सैन्धवान्वितः॥१८७॥

सर्षप शाक

क. **विधि–** सर्षप (सरसों) के मृदु (कोमल) पत्र एवं नाल सहित दण्ड को (प्रक्षालन करके) तक्र में सुस्विन्न करते (उबालते) हैं; इसे पीड़ित (निचोड़कर) पिण्डी बना लेते हैं, जिसे हिंगु (भृष्ट) को तप्त तैल में, लवण के साथ, भर्जित करते हैं।

सार्षपी कन्दली सूक्ष्मा खण्डिता स्निग्धभाजने।
स्थापिता मण्डसहिता त्वथवा तण्डुलोदकैः॥ १८८॥
सप्तरात्रात्परं चुक्रतुल्यं सम्यक्प्रजायते।
तत एव समाकृष्य तलयेद्वा प्रलेहयेत्॥ १८९॥
काप्यकेति समाख्याता सूदधर्मोपजीवकैः।
सार्षपं कटुतीक्ष्णोक्ष्णं वातश्लेष्मव्रणापहम्॥ १९०॥
कृमिकण्डूहरं दद्रुकुष्ठघ्नं रुचिकारकम्।

सर्षप कन्दली

सर्षप अंकुर (काप्य का सरसों के अंकुरों) का सूक्ष्म कर्त्तन करके– स्निग्ध पत्र में मण्ड या तण्डुलोदक के साथ– सात रात्रि पर्यन्त करना रहने देते हैंद्ध परिणामतः यह अम्लीय (आम्रचूर्ण या चुक्र) हो जाता है। इसको ग्रहण करके (निष्क्रमणतः) यूव रहित करके, तलन क्रिया (तलते) है अथवा प्रलेह बना लेते हैं। इसे सूदधर्मोपाचक (महानस कर्मोपजीवी) गण इस निर्माण को 'काप्यका' संज्ञा देते हैं।

ख. **गुण–**
१. कटु-तीक्ष्ण-उष्ण (सर्षपशाक)
२. वात श्लेष्महर ३. व्रणनाशक
४. कृमि-कण्डूहर ५. कुष्ठघ्न
६. रुचिकारक

अथ मूलकम् शाकम्

सपत्रः स्वेदितस्तक्रे दण्डे मूलस्य सूक्ष्मकः।
घृते पक्वः सुहिङ्ग्वाढ्ये लवणेन विमिश्रितः॥ १९१॥
सुरुच्यं मूलकं शाकं विष्टम्भि रुचिकारकम्।
वातपित्तहरं श्रेष्ठं तत्फलं तद्गुणावहम्॥ १९२॥

मूलक शाक

क. **विधि–** मूली (भूलक) के छोटे पत्तों सहित नाल को (काटकर-स्वच्छ करके), तक्र में स्विन्नकर (उबाल) लेते हैं, तथा हिंगु (भृष्ट) करके, तीव्र तप्त घृत में पाक करते हैं। इस रीति से मूलक का स्वादुपूर्ण शाक सिद्ध हो जाता है।

ख. **गुण–**
१. सुरुचिकारक २. विष्टम्भि
३. रुचिकारक ४. वातपित्तहर
५. पित्तशामक

मूलक फल का शाक मूलक नाल के समान गुण युक्त होता है।

अथ कन्दशाकम्

दण्ड शाक प्रभेद पूर्ण

कन्दशाकम्

कन्दः कदल्या दलितो नितान्तं
संस्वेदितो हिङ्गुघृतेन राद्धः।
उद्धूलितः सैन्धवरेणुनाऽयं
मरीचसंपर्कित एव रुच्यः॥ १९३॥
कदल्याः शीतलो बल्यः कन्दः केश्योऽम्लपित्तजित्।
वह्निकृद्दाहहारी च सुस्वादू रुचिकारकः॥ १९४॥

कदली कन्द

क. **विधि–**केला (कदली) के कन्द को (निकालकर स्वच्छ करके) काटकर (दलित), सम्यक् रूपेण स्विन्न (उबाल) लेते हैं; तथा हिगु को भृष्ट (भूनकर) तप्त घृत में पाक कर लेते हैं, फिर सैंधव-मरिच-चूर्ण को सम्मिलित करें (उद्धूलित)। इस रिति से सिद्ध कदलीकन्द शाक रुचिपूर्ण प्रस्तुत होता है।

ख. **गुण–**
१. शीतल २. वल्य
३. केशय ४. अम्लपित्तशामक
५. पाचकानिवर्धन ६. दाहशामक
७. सुस्वादु ८. रुच्य (रुचिकारक)

अथ सूरणशाकम्

अम्लीकापचूर्णेन मिश्रितेन जलेन वा।
काञ्जिकेनाऽथवा क्वाथ्यः सूरणो रौद्रतां त्यजेत्॥ १९५॥

दिग्धो बाह्लीकतोयै रजनिरसयुतैर्गोचरे सूर्यमेरोः
संक्षिप्योत्क्षिप्य पात्रे तिलरससहिते साधितः सैन्धवेन।
जातः स्निग्धः सुगन्धिर्मरिचपरिचितः पाकरागं दधानो
दुर्नामघ्नस्तु कन्दः सपदि मदयते प्राशितो जाठराग्निम्॥ १९६॥

सूरण शाक

क. **विधि–** १) चिंचा (अम्लीका) पत्रों (चूर्ण) के जल अथवा कांजिक में क्वथित (उबाला हुआ) सूरण अपना रौद्ररुप (भयंकरता) का परित्याग कर देता है।

२) सूरण ग्रह सुमुहूर्त्त में सम्पन्न करने का विधान है– उदयाचल मेरुपर्वत (सूर्यमेरोः) के उर्ध्व गोचर (रजनिरसयुतैर्गोचरे) होने पर सूरण कन्द उबाल (स्वेदन) करके (वल्कलसहित रहित अवस्था में काटकर) रजनिरस (हरिद्रा रस) तथा हिंगु जल (वाह्लीक तोय) के साथ, तिलतैल (तिल रस सहित) युक्त पात्र में– सैन्धव सहित-पाक कर लेते हैं, एवं फिर सुगन्धित पदार्थ तथा मरिचचूर्ण कर मिश्रण कर देते हैं।

ख. **गुण–** इस सूरण कन्द शाक का सेवन से दुर्नाम (अर्श) का नाश होता है तथा पाचकाग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

कन्दस्तूदरमृत्तिकाभिरहितः संवेष्टितोऽसौ मृदा
कारीषानलपाचितस्त्वगयुतः क्षोदीकृतो मिश्रितः।
शुद्धः सैन्धतैलजीरकजरज्जम्बीरनारार्द्रकै-
र्जाड्यं पाण्डुरता तथैव हरते वह्नेरयं पूरणः॥ १९७॥

सूरण कद शाक : अन्य प्रकार

अ. सूरण कन्द की प्राकृतिक चिपकी मृत्तिका (भूमिगत) को निष्कासित-स्वच्छ करके, मृदा (मिट्टी) का अविष्टन (लेप) करते हैं; इसको करीषानल (उपलों की आग) में पका लेते हैं। जब शीतल हो जाये, तब वल्कल (त्वक्) विहीन करके, क्षोदित (मसलकर) भर्त्ता बनाते हैं, जिसमें सैन्धव, तिल तैल, जीरक चूर्ण, परिपक्व जम्बीर रस एवं आर्द्रक का मिश्रण कर देते हैं।।१९७।।

इस प्रकार का सूरणकन्द (भर्त्ता रूप) शरीर जाड्य (जड़ता) एवं पाण्डु रोग नाशक हैं, एवं पाचकाग्नि बर्धन होता है।

सूरणं कटुतैलेन तलित्वाऽम्लरसैः सह।
शोषयेद्वेसवाराढ्यं यथा भोक्तुरभीप्सितम्॥ १९८॥

आ. स्विन्न सूरण कन्द (उबाले हुए) सूरणकन्द (त्वक् रहित) को काटकर, कटु तैल (सरसों के तैल) में तलन करते है (तलते है) इसमें अम्लरस के साथ वेसवार (मसाला) छोड़कर, शुष्क करते हैं अथवा भोक्ता की इच्छानुसार (रुचि) के अनुसार निर्माण करना चाहिए।

मृल्लिप्तं सौरणं कन्दं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत्।
अद्यात्सतैललवणं रामठेनानुवासितम्॥ १९९॥

इ) मृतिका आलेपित सूरण कन्द (मृल्लिप्तम्) को पुटपाक विधान के अनुसार अग्नि में पाक करते हैं, फिर हिंगु (भृष्ट) को तैल तथा सैन्धव में सुगन्धित बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

सूरणोऽग्निकरो रूक्षः कासार्शःकर्तनो लघुः।
सन्धानयोगसंप्राप्तदाऽस्तिगुणकारकः ॥ २००॥

ई) सूरण कन्द अग्नि (पाचकाग्नि) वर्धन तथा रूक्ष है, कासहर, अर्श (कर्हन) एवं सुपाच्य है (संधान योग सम्प्राप्तम्) संधान विधि से निर्माण करने पर, इसके गुणों में वृद्धि हो जाती है (अस्तिगुण कारक)।

अथ मृणालकन्दशाकम्

बिसाङ्कुरा भोक्तृशोङ्कुरोत्थिताः
समाहृताः कृषष्लादगाधतः।
संकृत्तखण्डास्तनुतारकप्रभाः
प्रलेहयोगैः सुधिया विपाचिताः॥ २०१॥

मृणालं दुर्जरं शीतं पित्तघ्नं कफवातकृत्।
कषायं मधुरं स्वादु बिष्टम्भाध्मानकारकम्॥ १०२॥

मृणालकन्द शाक

क. **विधि–** भोक्ता के यश को अंकुरित (वृद्धि) करनेवाले, मृणालकन्द-विसांकर

(भिंसौड़ा–भिस) को कष्यज (अगाधजल) से निष्कासित कर, दुर्बल तारा के प्रकाश (अनुतारकप्रभव:) में कन्द के छोटे-छोटे खण्ड टुकड़े (सकृत्त खण्डा:) बना लेते हैं; इसको प्रलेह-विधि से बुद्धिमान् (सुधिया) मनुष्या पाक करते हैं (विपाचिता:)।

ख. **गुण–**

१. दुर्जर (दुष्पाच्य)	२. शीत (शीतल)
३. पित्तनाशक	४. कफ जनन
५. वातजनन	६. कषाय रस
७. मधुर रस	८. स्वादु (स्वादिष्ट)
९. विष्टम्भ (मलावरोधक)	१०. आध्मान कर

संख्याऽनन्ता कति कति न ते शाकपाकप्रभेदा:
किं तैरुक्तैरहितविरसैरल्पसत्त्वप्रदुष्टै:।
मूलं पत्रं कुसुममथवा पल्लवंवा फलं वा
भक्त्या राद्धं भवति चतुरै: सर्वमेवातिरुच्यम्॥ २०३॥

शाक पाक : सामान्य ज्ञातव्य

अ. **शाक संख्या–** अनन्त संख्य युक्त शाक कया पाक भेद से नहीं हैं अर्थात् शाकों की संख्या अपरिगणनीय है, परन्तु उनका नामोल्लेख का वर्णन करने से कोई लाभ नहीं, जो अहितकर, विरस, अल्प सत्त्वं (बलहीन) तथा प्रदूषित होते हैं।

आ. **स्वभक्ति पाक–** मूल, पत्र, कुसुम (पुष्प), पल्लव (नवीन पत्र) तथा फल (कन्द-दण्ड-नाल सहित)– ये जो भी शाक (वर्गों में उल्लिखित) है ये सभी शाक चतुर (बुद्धिमान) सूदक (पाचक) पर निर्भय करता है, कि वह श्रद्धापूर्वक (भक्ति से) इनका पाक करे, तब ये शाक उत्पन्न रुचिकर (सर्वमेतातिरुच्यम्) सिद्ध होते हैं।

अतिजीर्णमकालोत्थं रूक्षसिद्धमभूमिजम्।
जरठं कोमलं चातिशीतव्यालादिदूषितम्॥ २०४॥
तत्सर्वं वर्जनीयं हि भिषजा हितकारिणा।
सुशुष्कं सकलं शाकं नाश्नीयान्मूलकैर्विना॥ २०५॥

इ. **वर्जित शाक**

इन शाकों या उनकी विशिष्ट अवस्थाओं को निषिद्ध शाकों की श्रेणी में रखा गया है, यथा–

१. अत्यन्त जीर्ण (जीर्ण-शीर्ण स्थिति)
२. अतिरूक्ष (बहुत शुष्क)
३. निकृष्टस्थानोत्पन्न (निंदनीय स्थल में उगा हुआ)
४. अतिपुराण (बहुत पुराना)
५. अतिकोमल (बहुत मुलायम)
६. हिम, सर्प आदि से दूषित (शीत व्यालादि दूषित)
७. अकालोत्थ (असमय-ऋतु के विपरीत उत्पन्न)

इन समस्त प्रकार के शाक-द्रव्यों को भिषक् (महानस से सम्बन्धित) को वर्जित कोटि में रखना चाहिए। समस्त प्रकार के शुष्क शाकों का भक्षण नही करे, (सशुष्कशाकम्), परन्तु मूलक शाक सेवनीय होता है।

सर्वं शाकमचक्षुष्यमजिघ्नेयमपौरुषम्।
विना पटोलवास्तूककाकमाचीपुनर्नवा:॥ २०६॥

हानिकारक शाक

१. पटोल (परवल)
२. वास्तुक (बथुआ)
३. काकमाची (मकोय)
४. पुनर्नवा (सोठी)

इन चार प्रकार के शाकों (१-४) को छोड़कर सर्वप्रकार के शाक नेत्र, नासा तथा पौरुष (पुरुमल) के लिए हानिकर होते है।

सर्वासां शाकजातीनां प्रकार: कथितो मया।
सन्धानवटकादीनामुच्यते तदनन्तरम्॥ २०७

इति श्रीनरवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्माविनिर्मिते क्षेमकुतूहले ग्रन्थे मत्स्यमांसप्रशंसनो नामष्टमोत्सव:॥८॥

उपसंहारात्मक रूपरेखा

मैंने समस्त प्रकार के शाको के प्रकारो भेदों-जातियों) का वर्णन किया है। इसके पश्चात् (आगामी उत्सवनवम में) सन्धान तथा वटक के विषय मे वर्णन करेगे।

इति हिन्दी व्याख्या सहित क्षेमकुतूहल का विविधशाक निर्माण वर्णन नामक आठवां उत्सव समाप्त॥

●

अथ नवमोत्सवः

(नौवा प्रकरण)

अथ सन्धानकम्

राजिकाजीरलवणनिशाढ्ये कटुतैलके।
फलं मूलं च पुष्पं च धर्मे स्थाप्यं दिनत्रयम्॥ १॥
ततश्चाम्लतरं जातं शीघ्रं सन्धानकं स्मृतम्।

संघान विधि

राजिका (राई) जीरक (जीरा), लवण (सैंधानमक) तथा निशा (हरिद्रा-हल्दी)- इन समस्त द्रव्यों को सम्मिलित करके, कटु तैल (सर्षप तैल-सरसों के तैल) में, फल (जड़), मूल (कन्द) जड़ा तथा पुष्प (फूलों) को डालकर, दिनत्रय (तीन दिनों) की अवधि तक धर्म (सूर्य की रोशनी-किरणों के प्रकाश) में स्थापित कर देते हैं। इस प्रकार, यह मिश्रण अम्लतर (अधिक अम्लयुक्त-अधिक खट्टा) ही जायेगा। इस मिश्रण को 'संधानक' या संघान कहा जाता है।।१ $^{१}/_{२}$।।

निम्ब्वाम्रबिम्बिवार्ताकमार्द्रकं त्रपुषीफलम्॥ २॥
कूष्माण्डबिल्वमरिचं पिप्पलीविश्‍तिन्दुकम्।
सूरणं कदलीकन्दो मूलकं बंसजाङ्कुरः॥ ३॥
इत्यादिबस्ततजातं हि सन्धेयं दृष्टकर्मणा।
वार्ताकं तेषु सुस्वेद्य सन्धेयं चान्यदामकम्॥ ४॥
एवं निम्ब्वादिकं सर्वं कटुतैले विनिक्षपेत्।
स्थापयेद्वर्षमात्रं तु तदूर्ध्वं नैव युज्यते॥ ५॥

विभिन्न द्रव्यों का संधानक

१. निम्ब (नीम)	२. आम्र (आम)	३. निम्बी (कन्दूरी)
४. वार्ताक (बैंगन)	५. आर्द्रक (अदरक)	६. त्रपुषीफल (खीरा)
७. कूष्माण्ड (कुोहड़ा)	८. बिल्व (बेल)	९. मरिच (काली मिरच)
१०. पिप्पली (छोटी पीपल)	११. विश्वा (सौंठ)	१२. तिन्दुक (तेंदू)

१३. सूरण (जिभीकन्द)	१४. कदली कन्द (केला)	१५. मूलक (मूली)
१६. वंशजाङ्कुर (बाँस अंकुर)		

इन द्रव्यों का संघान करने हुए, जिस व्यक्तियो ने इस विधि का प्रत्यक्षकर्म (दृष्टकर्मणाम्) का अभ्यास किया हो या अवलोकन (प्रत्यक्ष कर्माभ्यास) कर रखा हो, उसके द्वारा (या संघान कर्म ज्ञाता के निर्देशन) संधानक तैयार करना चाहिए।

इस संघान कर्म में वृन्ताक (बैंगन) की सुस्वेद्य (उबाल कर अल्प स्वेदन) करके प्रयोग करते हैं, जबकि अन्य द्रव्यों (१-१६) को आमरूप (कच्चा-अस्वेद-बिना उबाले हुए) प्रयोग किया जाता है।

इन समस्त द्रव्यों (उपरोक्त नामांकित-१-१६) को कटु तैल (सर्षप तैल-सरसो के तैल) में डालकर, एक वर्ष की अवधि पर्यन्त स्थापित कर देते है। (एक साल तक रखा रहे)। तदुपरान्त इस 'संघानक' की प्रक्रिया पूर्ण होने पर उपयोग में लाते हैं, परन्तु इस (संघानक को) एक वर्ष के उपरान्त (एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर) करने का निर्देश (अनुमति) नहीं है।।२-५।।

अथ लावासन्धानकम्

लावकान् मत्स्यखण्डान् वा स्वेदयेदिक्षुजे रसे।
कृत्वा फाणितमध्ये तु तैले वा सर्षपोद्भवे॥ ६॥
स्थापिताः सर्वकालं तु तिष्ठन्ति वै हि तादृशाः।

लावासंधानक

लावा (पक्षी) का मांस या मत्स्य (मछली) के खण्डो (टुकड़ो) को इक्षुरस (गन्ने के रस) में स्वेदन (उबाल) कर, फाजित (राव) के बीच (मध्य) में अथवा सर्षपोद्भूत (सरसों के) तैल में रखते हैं। इसको इस विधि से स्थापित करने से अपने स्वरूप मे ही सदैव रहते हैं (स्थापिताः सर्वकालं तु तिष्ठन्ति वै हि तादृशः)।।६ $^{१}/_{२}$।।

अथ तित्तिरिसन्धानम्

स्विन्ननिर्गालिते दध्नि तैले पक्त्वाऽथ तित्तिरिम्॥ ७॥
तदेव तैलसंयुक्त निम्बुकस्य रसे न्यसेत्।

तित्तिर संधानक

तित्तिर (तीतर) के मांस (के टुकड़ो) को दयि (दही) में उबाल करते है, तथा

छानकर तैल में पाक करते हैं तथा फिर निम्बूक स्वरस में मिलाकर रखा रहने देते हैं॥७½॥

अथ वाराहब्रघ्नसन्धानम्

वाराहाजिनमुद्धृत्य निशाराजिसैन्धवैः॥ ८॥
तीक्ष्णे घर्भेऽतिसंशुष्कं क्षालितं हिङ्गुसंयुतम्।
सनिम्बकरसं शुष्कं क्षिपेतैले सनिम्बुके॥ ९॥

वाराहब्रध्न संधानक

वाराह (सूअर) के मांस-त्वक (चमड़ा निष्कासित-आजित) रहित करके-प्रक्षालन कर, शुष्क कर लेते हैं; फिर हिंगु, हरिद्रा, राजिका तथा सैंधवलवण मिलाकर तीक्ष्ण धर्म (तीव्रधूप) में रखकर; शुष्क कर (सुखा) लेते हैं, तथा निम्बूक स्वरस को मिलाकर, फिर शुष्क कर लेते हैं। इसके बाद मांस को निम्बूक स्वरस सहित, तैल में डालकर रखते हैं॥८-९॥

अथ मत्स्यसन्धानकम्

खण्डा मत्स्यस्य तैलेन सुपक्वाः कोष्ठासंभवाः।
स्थापिताः सार्षपे तैले सदा तिष्ठान्ति तादृशाः॥ १०॥
सर्वं पित्तकरं प्रोक्तं सन्धानं रुचिकारकम्।
वातृहृद्वस्तुभेदाच्च संविचार्य गुणागणुम्॥ ११॥

मत्स्यसंधानक

क. **विधि–** मत्स्य (मछली) के कोष्ठांगों के खण्डों (टुकड़ों) को सर्षप तैल में भलीभाँति पक्व करके, इसी तैल में स्थापित कर देते है, जिससे वह एक समान ही रहेगा।

ख. **मत्स्यसंधानक–गुण-कर्म**

१. समस्त संधानीय द्रव्य पित्तकारक (सर्व पित्तकरम्), रुचिकारक, वातहृत्।

२. द्रव्यों के भेद-गुण तथा दुर्गुण (गुणागुणाम्) विचारणीय (संविचार्य)

अथ वटिकावटकप्रकारः

अथ पिष्टशुष्कवटी

तप्ततैले विनिक्षिप्ता वटिका माषपिष्टजा।

तलिता तक्रसिक्ता च शुष्कीकृत्य प्रचालिता॥ १२॥
अथवा क्वथिते तक्रे सर्वोपस्करसंयुते।
मांसप्रलेहवत्पाच्या वटी पिष्टसमुद्भवा॥ १३॥

वटिकावटक प्रकार

पिष्टशुष्कवटी– माष (उड़द) की पिष्ट (पिट्ठी) बनाकर तप्त तैल (सरसों के तैल) में डालकर तलन करें (तलते है)। इसकी तक्र (मट्ठा) में डाल देते हैं, अथवा शुष्क करके (सुखाकर) कर रखते हैं। इसमें सर्व उपस्कार (मसाल), लवण आदि- हिंगु, तैल आदि सहित) मिलाते हैं। इसको क्वथित (उबाले हुए) तक्र (मट्ठे) में मिश्रण करके, प्रलेह विधि के अनुसार पाक किया जाता है। इस निर्माण को 'पिष्टवटी' कहते हैं।

अथार्द्रपिष्टवटी

तैले पक्त्वा वटीं तप्ते रन्धयेद्वेसवारकैः।
सर्वद्रव्यसमायुक्तैर्वटीतुल्यं च रन्धयेत्॥ १४॥

आर्द्रपिष्ट वटी

माष (उड़द) की पिष्ट (पिट्ठी) तैयार करके, गर्म (तप्त) तैल में डालते हैं, इसमें वेसवार (मसाल, लवण तथा हिंगु सहित) पाक करते हैं, अथवा समस्त द्रव्यों का मिश्रण करके, वटी के समान पाक करना चाहिए।१४।

अथ धूमांसी वटिका

धूमांसीवटिकाऽप्येवं स्थूला तैलेन पाचिता।
मेलिता संस्कृते तक्रे क्वथिते च मनोरमे॥ १५॥
माषस्य वटिका हृद्या बल्या पुष्टिप्रदायिनी।
वातहृच्छुक्रला सा च तलिताऽथ प्रलेहिता॥ १६॥

धूमांसी वटिका

धूमांसी (पंचांग) को ग्रहण-स्वच्छ करके वटी तथा वटिका का निर्माण किया जाता है (इसके लिए पूर्ववत् विधि के अनुसरण करना चाहिए। इसको तप्त तैल मे पका लेते है, तथा राजिका, हिंगु, लवण आदि सहित, क्वथित (उबाला हुआ) मनोहरी तक्र (मट्ठे) में मिला देते है। यह पदार्थ तैयार हो गया है- भोज्य द्रव्य के रूप में उपयोगी है।

क. **माष वटिका (कर्म-गुण)–** माष (उड़द) की वटिका के विशिष्ट गुण निम्नांकित हैं

१. हृद्य २. बल्य ३. पुष्टिप्रदायिनी

४. वातहृत् ५. शुक्रत

ख. **विधि–** यह वटिका को तल कर (तलित) या प्रलेह बनाकर प्रयोग करते हैं। दोनों भेदों (प्रकारों) में माष वटिका तथा माष प्रलेह–के गुण-कर्म लगभग एक समान (जो उपरोक्त हैं) होते हैं।।१५-१६।।

अथ माषपिष्ठेण्डरी

माषस्येण्डरिकां कृत्वा खण्डशः सैन्धवान्विताम्।
रन्धयेद्वेसवारेण तैले पक्का वटीसमाम्॥ १७॥

माषपिण्डेश्वरी (माषेण्डरी)

सैंधव लवण युक्त मांस (उड़द) की इण्डरी (विशेष आकार के कारण नामकरण) को खण्ड (टुकड़ा-टुकड़ा) करके बनाते है– तैल में वटी के पाक करें- मसाला मिलाकर पकाते हैं। इसको 'भाषस्येण्डरिका' कहा जाता है।।१७।।

अण्डरी शुक्रदा वृष्या रूक्षा विष्टम्भकारिणी।
कफवातहरा प्रोक्ता माषपिष्टभवेण्डरी॥ १८॥
मुद्गपिष्टिकयाऽप्येवं विधाय वटिकां वटीम्।
तप्ततैले वेसवारसंयुक्ते रन्धेद्वटीम्॥ १९॥

माषपिण्टेश्वरी

क. माष की इण्डरी, शुक्रदा, तृष्णा, मेक्षा, विष्टकारिणी तथा कफवातहर होती है (उड़द की वटी/वटिका या बरी-बड़ी/ वाड़ा-बारा)।

ख. मुद्र (मूँग) की पिष्टी (पीठी-पिट्ठी) से वरी या वटिका बनाकर, (उपरोक्त रीति से), तप्ततैल में बेसरवार (लवण सहित) पाक करते है (रन्धयेद्वटीम्)।

अथ मुद्गेण्डरी

बाल्हीकजीरकनवार्द्रकपूर्णगर्भा
बाह्ये जातपचना नवमुद्गपिण्डा।
चूर्णीकृता सुरभिहिङ्गुकृताधिवासा
मन्दानलस्य रुचिदा न भवेत्तु कस्य॥ २०॥

मुद्गस्य बहुधा भक्ष्याः शीतला लघुपाचकाः।
त्रिदोषशमनाः प्रोक्ता रुच्याः संस्कारयोगतः॥ २१॥

मुद्गेण्डरी

क. **विधि–** नव मुद्र पिण्ड (मूँग से बने नये पिण्ड) में हिंगु, जीरक तथा नवार्द्रक को पूरण करके, बाह्यरूप से पाक कर लेते हैं। तथा इसको चूर्ण (उद्घूलन) द्वारा सुगंधित पदार्थो से सुवासित कर देते हैं।

आफ. यह (इस रीति से) निर्मित द्रव्य किसकी मन्दाग्नि की प्रदीपक नहीं होता– इसका तात्पर्य है कि यह समस्त व्यक्तियों की पाचकाग्नि की वृद्धि (दीपन) करने का कार्य करता है, विशेषरूप से जिन्हें मन्दाग्नि हो जाती है (मन्दानलस्य रुचिदा न महेत्तु कस्य)।

ख. **गुण-कर्म–** विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थो के पाचन में सहायक एवं लघु, (सुपाच्य), शीतल, लघु पाचक (पचने में हल्का या सुपाच्य), त्रिदोषशामक तथा रुचिवर्धक होता है, यह संस्कार योग की गुण रखता है अर्थात् अन्य द्रव्यों के संयोग से, उनके गुणों का ग्रहण करता है।।२०-२१।।

अयालीकमत्स्येण्डरीनिर्माणम्

नागवल्लीदलं ग्राह्यं वेसवारेण लेपितम्।
माषपिष्टकया लिप्तं संप्रसार्यं समावृतम्॥ २२॥
स्विन्नमाखण्डितं तैले भृष्टं हिङ्गुसमन्वित्।
रन्धयेद्वेसवाराम्लैरलीका मत्स्यका इमे॥ २३॥
अलीकमत्स्यका रुच्या बल्या वृष्यातिपुष्टिदाः।
वातहृच्छुक्रलाः प्रोक्ताः किञ्चित्पित्तप्रकोपकाः॥ २४॥

अलीकमत्स्येण्डरी

क. पान-ताम्बूल (नामवल्लीदल) के पत्र पर वेसवार (मसाले) का आलेपन करते हैं, फिर माप-पिष्टी (उड़द की पिट्ठी) का मोटा लेप (फैलाकर-लपेटकर) लगाते हैं, (लिप्तं प्रसार्य समावृतम्), तदनन्तर, इस (पान के पत्ते) को स्विन्न (उबालकर) करके खण्डित (टुकड़ा-टुकड़ा) कर लेते हैं। तत्पश्चात् उसको तप्त तैल में, हिंगु का लेप लगाकर (भृष्ट) भूनते हैं, फिर इसमे वेसवार तथा चिंचा चूर्ण मिश्रित कर पकाते हैं।

ख. **गुण-कर्म (अलीकमत्स्येण्डरी)**

१. रुच्य (रुचिवर्धक) २. वल्य (बलकारक)

३. वृष्य (वाजीकरण) ४. पुष्टिदा (अति)

५. वातहृत् (वातनाशक) ६. शुक्रजनन (वीर्य उत्पादक)

अथ वेसनस्य वटकनिर्माणम्

आलोड्य वेसनं तोये क्राथयेद्धिङ्गुना युते।
पाके घनत्वं विज्ञाय तदुत्तार्य समे क्षिपेत्॥ २५॥
पीठे हस्ततलाघातैरिदं च पुटयेत्ततः।
अलीककन्दखण्डाख्यं खण्डितं दीर्घसूक्ष्मकम्॥ २६॥
टिण्टीबिम्बीफलाकारं कारयेद्बहुधा त्विदम्।
तप्ततैले ततः पाच्यं रन्धयेद्वेसवारितम्।
शुष्कं प्रलेहितं वाऽपि वटिकेव प्रपाचयेत्॥ २७॥

वेसन वटक-प्रलेह

वेसन (वेसन) को जल में (आलीड्य वेसनं तोये) द्रवित (घोल) कर तथा हिंगु मिश्रित करके उपग्नि पर पाक करते है, जब यह पदार्थो (पाकाधीन–क्वाथ हेतु) घनत्व या गाढ़े होने की अवस्था (पाकै घनत्वं विज्ञाय) आ जाने पर, किसी समतल पात्र में निकाल लेते हैं। फिर पीठ पर, हस्ततल से (मर्दन) द्वारा संपुटित (लम्ब-स्थूलकन्दाकार) किया जाता है। इस खण्ड (टुकड़े) से विविध प्रकार की फलों की आकृतियाँ, जैसे टिंटी/करीरफल, बिम्बी कन्दूरी) बना कर, तप्त तैल में वेसवार मिलाकर पका लेते हैं (रंघयेत्)।

इस वाटिका की शुष्क (सूखा) अथवा प्रलेह-दोनों रूपों में पाचन (निर्माण) किया जा सकता है।।२५-२७।।

अथ पक्ववटीनिर्माणम्

तोयेन वेसनं लोड्यं मथितं हिङ्गुना सह।
तत्पतैले प्रदातव्या वट्यामलकमात्रया॥ २८॥
वेसवारयुते तक्रे क्वथिते वेसनान्विते।
तत्र सा वटिकाक्षिप्ता नाम्ना पक्कवटी स्मृता॥ २९॥

आह्लादिका मृगदृशा मृदुना स्वरेण
स्पष्टस्वैरपि विलोलितसर्वगात्र।
स्नेहाधिका सुमधुराऽरुणसर्वदेहा
नीराहराऽतिरुचिरा च वटी च चेटी॥ ३०॥

पक्व वटी

क. **विधि–** जल में हिंगु सहित वेसन घोलते हैं (लोड्य-मथित) तथा मथते (फेंट लेते) हैं। इस पदार्थ की आमलक के आकार की वटी बनाकर, तप्त तैल में डालकर पकाते है (छान लेते)। फिर वेसवार (मसाला) तथा वक्र के साथ वेसन वटिका (बड़ी) को डाल देते हैं (सिप्त्वा)– इस निर्माण को 'पकव वटी' नाम दिया गया है (नाम्ना पकव वटी स्मृता)।

ख. **गुण-कर्म-प्रभावस्वरूप आदि**

१. आह्लादिक (मन को प्रसन्न करने वाली)

२. मृगदृशा (मृग के समान नेत्र)

३. स्पष्ट स्वरैरपि विलोलित सर्वगात्रा (स्पष्ट स्वर से सम्पूर्ण शरीर में संवेदना-गति उत्पन्न करने वाली)

४. स्नेहाधिका सुमधुरारुण सर्वदेहा (अश्रु प्रतिरोधक-वेटी के समान मृग नेत्र सत् कोमल मन को प्रसन्नतादायक)।

५. नीराहराऽतिरुचिरा च वटी च वेटी) (परिपाक के समय स्पष्ट स्वरों के साथ सम्पूर्ण अंगों में कम्पन+उत्पादक)।

६. अधिक तैलादि स्नेह, युक्त, मधुर तथा अरुण वर्णयुक्त, रस से भरी हुई वटी या चेटी अति रुचिवर्धन होती है।

अथ संस्कृतचणकस्य गुणाः

चणकः कृतसंस्कारः कफघ्नो लघुदीपनः।
शीतलो रुक्षविष्टम्भी वातकृत्पुंस्त्वनाशनः॥ ३१॥

संस्कृत चणक

गुण-कर्म– विविध प्रकार से संस्कृत चणक (चना) तथा उससे निर्मित पदार्थों के गुण इस प्रकार हैं–

१. कफघ्न (कफनाशक)

२. लघु (सुपाच्य)

३. दीपन (जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला)

४. शीतल (शीत कारक)

५. रुक्ष (रुक्षता कारक)

६. विष्टम्भी (दुर्जर-विवन्धकारक)

७. वातकृत् (वात उत्पन्नकर्त्ता)

८. पुंसखनाशन (पौरुष हेतु हानिकर)

अथ वटकप्रकारनिरूपणम्

माषपिष्टिकया कृत्वा बृंहणाः वटकास्ततः।
अनल्पतैलसंपक्वा मेलिता घोलके रसे॥ ३२॥

कार वटक

माषपिष्टी (उड़द की पिट्ठी) के बड़े वटक बनाकर, अल्प तैल में पकाकर, घोल– दधि से निर्मित– में डाल देते है (मेलिताघोलके रसे)॥३२॥

मरिचार्द्रकजीरकसैन्धव
त्वचबाह्लीकनितान्तमिश्रिताः।
तलितास्तिलतैलमध्यगाः
प्रश्रृताः कोरवटा रुचिप्रदाः॥ ३३॥

मरिच, आर्द्रक, जीरक, सैंधव, त्वक् (दालचीनी) तथा बाह्लीक (हिंगु) मिश्रित कर, तैल में तलित (तला हुआ) तथा घोलक (दधि निर्मित) में डाला हुआ, माषपिष्टी से निर्मित वटक-कोरवटक (बड़े) तैयार हो जाते हैं।

इनका सेवन करने से भोजन में रुचि वर्धन होता है॥३३॥

अथ भीमवटकनिर्माणम्

हिङ्गुजीराम्रचूर्णैस्त्वचमरिचयुतैरार्द्रकैः पूर्णगर्भः
स्निग्धस्तब्धस्वरूपः परिमलबहुलः कोमलः कुङ्कुमाभः।
भग्नो दन्तान्तराले मुरुमुरुलरवोल्लापको व्यक्तशब्दः
सो धन्यानां मुखेषु प्रविशति वटको भीमयोगेनसिद्धः॥ ३४॥

बल्यो वातहरः कोरो वटो विष्टम्भपित्तकृत्।
आह्लादजननः प्रोक्तो दाहकारी तृषाकरः॥ ३५॥

भीम वटक

क. **विधि–** हिंगु, जीरक, आम्रचूर्ण (शुष्क आम का चूर्ण), त्वक (दारुसिता), मरिच, आर्द्रक– इन द्रव्यों से पूरित (पूर्णगर्भ), स्निग्ध-एवं स्तब्ध रूप युक्त, अधिक सुगन्धित, मृदु (कोमल) तथा कुंकुम सदृश (केशर के रंग वाला), दन्तान्तराले भग्न होकर मुरु-मुरु शब्द करनेवाला (मुरुमुरुलरवोल्लापको व्यक्तशब्दः) भीम (कर्पूर) योग से निर्मित वटक (बड़ा) मुख में प्रवेश करता है (सीधन्यानां मुखेषु प्रविशति)– उनके जो भाग्यशाली भोक्ता (खाने वाले) हैं।

ख. **गुण-कर्म–**कोरोवटक भीम वटक के गुण इस प्रकार हैं–

१. वल्य (बलदायक) २. वातहर (वातनाशक)

३. विष्टम्भि (दुर्जर मलावरोधक) ४. पित्तकृत् (पित्तजनक)

५. आह्लाद जनन (प्रसन्नतादायक) ६. दाहकारी (जलन उत्पन्न करनेवाला)

७. तृपाकर (प्यास की वृद्धिकारक)

अथ घोलवटकनिर्माणम्

आभैरवं प्रचुरसैन्धवश्रृङ्गवेर-
बाह्लीकजीररिचैर्मिलितोऽल्पभागैः।
संस्थापितः सुरभिणो मथितस्य मध्ये
कस्येति घोलवटको रुचिसंप्रदोऽस्तम्॥ ३६॥

घोलवटक

सैन्धव (अधिक/प्रचुर), अर्द्रक (अल्पमात्रा), हिंगु, जीरक तथा मरिच– समस्त द्रव्यों का चूर्ण मिश्रित आदि सुगन्धित दधि (मथित जलरहित) के बीच (मथितस् मध्ये) रखें (संस्थापित) यह 'घोलवटक' होता है। इस प्रकार का 'घोलवटक' किसकी रुचि की वृद्धि नहीं करेगा (कस्येति रुचि संप्रदोऽस्तम्) अर्थात् घोलवटक भोक्ता समस्त व्यक्तियों की रुचिवर्द्धन करता है॥३६॥

माषस्य वटको हृद्यो बल्यः शुक्रकरो गुरुः।
विष्टम्भी घोलसंयुक्तोऽविदाही पवनापहः॥ ३७॥

भापवटक (उड़द का वटक-बड़ा) इन गुणों का सम्पादन करता है-

१. हृद्य (हृदय की बलकारक) २. बल्य (शरीर का बलवर्धक)
३. शुक्रकर (वीर्य संजनन) ४. गुरु (भारी दुष्पाच्य)
५. विष्टम्भी () ६. उपविदाहो (घोल से युक्त वटक)
७. पवनापह (वातनाशक)

अथ क्वथितवटकनिर्माणम्

सधान्यं वेसनं तक्रं वस्त्रे निर्गाल्य क्वाथयेत्।
ततः शुण्ठीं जीरकं च हिङ्गु निःक्षिप्य साधितम्।
क्वथिताख्यमिदं प्रोक्तं वटाः स्युस्तेन संयुताः॥ ३८॥

क्वथित वटक

धान्यक चूर्ण युक्त वेसन को तक्र में घोल बनाकर तथा कपड़े से छानकर (वस्त्रे निर्गाल्य क्वाथयेत) पाक करते है। इस घोल में शुण्ठी, जीरक का हिंगु का मिश्रित चूर्ण डालकर पकावे के बाद वटक डाल देते है। इस प्रकार घोल वटक का निर्माण हो जाता है॥३८॥

अजाजी बाह्लीकार्द्रकमरिचसिन्धूत्थमरितः
स्वपाकात्स्वादीयान्दधिमथितदालीविरचितः।
कृतैलासंवासः क्वथितव्युषिते स्वैरमुषितो
विहन्ताऽयं साक्षादरुचिग्रहणीमम्लवटकः॥ ३९॥

अम्ल वटक (क्वथित वटक)

दधि-घोल में माष दालि की पिष्टी (उड़द दाल की पिट्ठी), जिसमें अजाजी (जीरका, वाह्लीक (हिंगु), आर्द्रक, मरिच, सिन्धूत्थ (सैंधव लवण) मिला हो, दो निर्मित स्वयंपाक हो जाने से, स्वाद, एला-सुगन्ध से सुवासित, क्वाथ में (पर्युपित या) वासी तैयार कर, वटक डालना चाहिए॥३९॥

क्वथितायां परिक्षिप्तो वटको रुचिकारकः।
विष्टम्भजननो दृष्टिनाशनो रक्तपित्तकृत्॥ ४०॥

इस प्रकार (उपरोक्त रीति से निर्मित) क्वथित घोल में वटक छोड़कर बनाया हुआ भोज्य पदार्थ, विविध रूप से गुणवान् होता है (क्वथितायां परिक्षितो वटको)-

१. रुचि कारक (भोजन में रुचि बढ़ाने वाला)
२. विष्टम्भ जननी
३. दृष्टिनाशन (नेत्र ज्योति के लिए हानिकर)
४. रक्तपित्त कृत् (रक्तपित्त उत्पन्न करने वाला)
५. विष्टम्भजनन (दुष्पाच्य मलावरोधक)

यह अम्लवटक-क्वथित घोल वटक को गुणों से युक्त वर्णित है, जो विशेष रूप से भोक्ता (खाने वाले) की भोजन में रुचि (तथा स्वयं सन्मार्गगत वटक प्रयोग) रुचि उत्पन्न करना है।

अथ काञ्जिकवटकनिर्माणम्

नूतना मन्थिनी यत्नात्कटुतैलेन मार्जिता।
रामठेन ततो धूमं दद्यातक्रं ततः क्षिपेत्॥ ४१॥
पल्वलेनाम्बुनाऽऽपूर्य क्षिपेत्तस्या सुचूर्णकम्।
राजिकाजीरलवणहिङ्गुशुण्ठी समन्वितम्॥ ४२॥
काकिण्यां पिण्डिकां चैव ततस्तां वासरद्वयम्।
आतपे स्थापयेततपश्चाद्वटिकां तत्र निःक्षिपेत्॥ ४३॥
ततो दिनत्रयादूर्ध्वं स्फूरदम्लवटा इति।
राजकावटिका कैश्चित्कथ्येन्तेऽथ तुषाम्बुकाः॥ ४४॥

काञ्जिकवटक

नूतन मन्थिनी (नयी मथने वाली (दधि मन्थनार्थ) हेतु-प्रयुक्त, ने। स्नेह से प्रयासपूर्वक उपलेपित (यलात्कटुतैलेन मार्जिता) सर्वप्रथम करते हैं। फिर हिंगु-धूपन (रामठ धूप) करें, तथा उसमें तक्र जल देते हैं, तथा उसको तालाब-जल (पल्वलेनाम्बु) के पूरण करते (भरते) हैं, और राजिका-जीरक-लवण-हिंगु-शुण्ठी का चूर्ण मिश्रित कर देते हैं। तत्पश्चात् पिण्डिका-कुड़ी (काविण्यां पिण्डिकाम्) मे भर देते है तथा इसको दो दिनों तक धर्म (सूर्य की धूप) में रखते है, और (तदनन्तर) इसमें वाटिका को डाल देते है। इस तरह तीन दिनों के बाद (ततो दिनत्रयादूर्ध्वं स्फूरदम्लवटा इति) खिले हुए वटक (बड़े) द्रव की सतह पर (ऊपर) तैरने लगते हैं।

इसको राजिका का वटक अथवा तुषाम्बुक वटक (व्यक्तियो द्वारा अलग-अलग नामो से ज्ञात) नाम दिए जाते हैं। जिसकी निर्माण विधि उपरोक्त प्रकार से (समान) होती है।

बाह्लीकधूमाकूलपात्रमध्ये
सराजिके वारि किरेदणीयः।
तत्रारनालोदरपूर्णवर्ती
सराजिकोऽयं वटकः पटीयान्॥ ४५॥

सराजिक वटक

साजिका जल (सुगन्धित हिंगु धूम से सुवासित) से परिपूर्ण पात्र के बीच में वटक बड़े (आकृति में छोटे) डाल देते हैं। इस तरह से आरनाल (कांजिक) से परिपूर्ण 'सराजिक वटक' का निर्माण हो जाता है।।४५।।

तुषाम्बुवटको हृद्यो वातजिद्रुचिकारकः।
रक्तपित्त करश्चोष्णस्त्वहितो नेत्ररोगिणाम्॥ ४६॥

तुषाम्बु वटक

तुषाम्बु वटक के प्रयोग करने से गुण-कर्म इस प्रकार हैं—

१. हृद्य (हृदय के लिए बलदायक)
२. वातजित् (वातनाशक)
३. रुचिकारक (रोचन-रुचिवर्द्धन)
४. रक्तपित्तकर (रक्तपित्तकारक)
५. उष्ण (उष्णवीर्य)
६. अहितकर-नेत्ररोग (अचक्षुष्य)

अथाश्चर्यवटक निर्भाणं गुणाश्च

कणान् गोधूमानामपगततुषाभां सुरभिते
जले वद्ध्वा वस्त्रे परिलघु निदध्याद्दिनयुगम्।
ततस्तोये तस्मिल्लवणमुखकुक्षिम्भरिरयं
स्थितः पक्षं यावद्भवति रुचिदाश्चर्यवटकः॥ ४७॥

आश्चर्यवटकस्तृप्तिकारको रुचिकारकः।
वातहृद्यावकः सद्यः पित्तकृच्छोफकारकः॥ ४८॥

आश्चर्यवटक

क. **विधि–** तुष विहीन गोधूम कण (भूसी निकले हुए गेहूँ के दानों) को (कणान् गोधूमनामपगततुषाभां सुरभिते) पतले कपड़े में बाँधकर सुरभितया सुगन्धयुक्त जल में (जले बद्ध्वा वस्त्रे पीरलघु) दो दिवस (निदध्याद्दिनयुगम्) तक रखा रहने देते हैं, इसमें लवण के समान मुखकुक्षिम्भारियम्)। इसको एक पक्ष पर्यन्त स्थित रहने देते है (द्रव क्षिप्त वटक); अन्ततः 'आश्चर्य वटक' का निर्माण, सम्पन्न हो जाता है। जोकि रुचिद (स्वयं तथा भोजन में रुचिवर्द्धक) प्रमुख गुण-युक्त होता है।

ख. **गुण-कर्म**

१. तृप्तिकारक (भोजन में आ वटक खाने से तृप्ति देनेवाला)
२. रुचिकारक (रुचिवर्धक)
३. वातहृत् (वातनाशक)
४. सद्य पित्तकारक ⎤ (दृष्टव्य सं. ६)
५. शोथ कारक ⎦
६. यावक (यव/जौ से निर्मित वटक सद्य पित्तकारक तथा शोथकारक)

अथ चिञ्चावटकनिर्माणं गुणाश्च

शैलपचेलिमचिञ्चा
जलगुडगुलितो मरीचसंपृक्तः।
प्रविशति चिञ्चावटकः
सुकृतिनमेवाननं रुचिकः॥ ४९॥
चिञ्चेयवटकस्त्वम्लो पित्तकृद्रुचिकारकः।
मधुरो बातहृद्बल्यः पित्तकृच्छोफकृत्सरः॥ ५०॥

चिञ्चा वटक

क. **विधि–** चिंचा रस- जो पर्वतीय क्षेत्रों में उत्पन्न होने इमली के वृक्षों से संग्रहीत फलों को रस (शैलेय चेलिमचिञ्चा) में गुड़ तथा मरिच चूर्ण मिलाकर, वटक को प्रक्षिप्त कर देते हैं- यह 'चिंचा वटक' को तैयार करने की प्रक्रिया सम्पन्न (सरलता से) हो जाती है।

ख. **गुण-कर्म-वैशिष्टय–** यह 'चिंचा वटक' सुकृतियों शुभकार्य करते वालो के मुख में प्रवेश करता है। (प्रविशति चिञ्चावटकः सुकृतिन मेवाननम्) अर्थात् भाग्यशाली व्यक्तियों का चिंचा वटक सेवन का अवसर मिलता है। इस वटक (माष या मुद्ग से निर्मित तथा तैल में तलित) को चिंचारस में प्रक्षेषण करके

छोड़ देते हैं– इस प्रकार गुणवान् चिंचा वटक प्रस्तुत हो जाता है।

इसके गुण-कर्म प्रमुखतया होते हैं–

१. पित्तकारक (पित्तजनन) २. रुचिकारक (रुचिवर्धन-रोचन)
३. मधुर रसयुक्त (मधुरसवाला) ४. वातहृत् (वातनाशक)
५. बल्य (शरीर को बलदायक) ६. पित्तकृत् (पित्तजनक)
७. शोफहरकर (शोथ कारक) ८. सर (सुखविरेचक-मलावधरोध निरोधक)

अथ ध्वंसीवटीनिर्माणम्

माषस्य क्षालिता दालिः सुशुष्का यन्त्रपेषिता।
तस्याः स्थूलवटी तैलपक्वाऽऽमलकामात्रया॥५१॥
हिङ्गुना धूपिते तक्रे नव्यपात्रे सुसंस्थिते।
तत्र ता वटिकाः क्षिप्ताःसतक्रं परिवेषिताः।
नाम्ना ध्वंसवटी ख्याताकैश्चित्पुष्पवटी स्मृता॥५२॥

ध्वांसी वटी

क. **विधि–** माष (उड़द) की दाल प्रक्षालित-पिसी हुई लेकर, आमलकी के आकार (स्थूल) की वटी बनाकर, पका लेते हैं (तैल में पक्व)। हिंगु-सुरभित नवीन पात्र में– तक्र से परिपूर्ण– रस वाटिका को डालकर चलाते हैं। (क्षिप्ता:सतक्रं परिवेषिता:)।

इस वटी को 'ध्वांसावटी' कहा जाता है, तथा कुछ व्यक्ति इसी को 'पुष्पवटी' नाम से पुकारते हैं। (तत्र ता वटिकाः नाम्ना ध्वंसवटी ख्याता- कैश्चित्पुष्पवटी स्मृता)।

बाह्लीकार्द्रकजीरकोषणगणैः प्रत्येकसाक्षाकृतै-
र्गच्छन्ती शतपत्रपुषप्लघुतां ध्वांसी वटी पूरिता।
तक्रे हिङ्गकधूमधूपकलुषे सम्यक्प्लुता पाण्डुरा
मुक्तीच्छोरपि सौरभेण नवते जिह्वालतां लोलताम्॥५३॥

(ख) ध्वांसी वटी वैशिष्ट्य–

बाह्वी (हिंगु) आर्द्रक, जीरक, उष्ण (मरिच)– इन द्रव्यों से युक्त (संयोग के कारण) ध्वांसी वटी की सुगन्ध, कमल के पुष्प (शतपत्रपुष्प) की तुलना में श्रेष्ठ होती है। हिंगु धूपन से सुरभित तक्र में सम्यक् रूपेण प्लुत पाण्डुर वर्ण की 'ध्वांसी वटी' की सुगन्ध से युक्ति के अभिलाषी, महात्मा/ विद्वानों की जिह्वा को भी चंचल बनाने का

क्षमता परिणाम प्रगट होता है (मुक्तीच्छोरपि सौरभेण नवते जिह्वालतां लोलताम्) अर्थात् जिह्वा- को लोलुप बनाने की सामर्थ्य रखती है।

धूमांसां वटिका हृद्या रुच्या मृद्वी बलप्रदा।
वातहा पुष्टि लघ्वी शीघ्रशुक्रप्रदायिनी॥५४॥

(ग) गुण-कर्म

१. हृद्य २. रुच्य (रुचिवर्धक)
३. मृदु (मुलायम-मृद्वी) ४. बलप्रदा (शरीर को बल प्रदायक)
५. वातहा (वातनाशक) ६. पुष्टिदा (देह को पुष्टि दायक)
७. लघु (सुपाच्य) ८. शीघ्रशुक्रप्रदायिनी (सद्य शुक्रजनन)

माषमुद्गादिपिष्टत्स्युर्वटिकावटकादयः ।
स्वनिमित्तगुणाः सर्वे ज्ञातव्याः कथिता बुधैः॥५५॥

विभिन्न प्रकार के वटकों के गुण-कर्म

माष (उड़द), मुद्ग (मूँग) इत्यादि द्रव्यों के पिष्ट (चूर्ण या पिट्ठी) से वटिका, वटी, वटक आदि का निर्माण किया जाता है– विद्वानों (पाकशास्त्रियों) का कथन है कि इनका गुण-कर्म पूर्वोक्त वटक आदि के समान होता है।।५५।।

सन्धानवटकादीनां निर्माणं कथितं मया।
अथ पक्वान्नजातीनां वक्ष्येऽहं विस्तराद्विधिम्॥५६॥

इति श्रीनरवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्माविनिर्मिते क्षेमकुतूहले ग्रन्थे मत्स्यमांसप्रशंसनो नाम नवमोत्सवः।।९।।

विषय उपसंहार–आगामी रूपरेखा

संधान तथा वटक इत्यादि के निर्माण की विधियाँ (गुण-कर्म सहित) इस समापन आधीन अध्याय में, मैंने (लेखक) ने वर्णन किया है। इसके अनन्तर पक्वान्न (भोजन/आहार सम्बन्धी) भेदों/प्रकारों) का सविस्तार मेरे द्वारा प्रस्तुत किया जायेगा (पक्वान्न जातीनां वक्ष्येऽहं विस्ताराद्विधिम्)।

इति हिन्दी व्याख्या सहित क्षेमकुतूहल का पिष्टान्न वर्णन नामक नवाँ उत्सव समाप्त।।

●

अथ दशमोत्सवः

(दशम प्रकरण)

अथ फेनिकानिर्माणं गुणाश्च

घृतेन मोदयित्वाऽथ दधि दत्त्वा विमर्दयेत्।
कणिका वर्तिताः कुर्याद्वह्वयस्ताः पिष्टिकावधि॥ १॥
नवनीतयुतैः पिष्टैस्तण्डुलानां च लेपयेत्।
पश्चात्ताः पटवद्व्येष्ट्या स्वयं वृन्तेन छदयेत्॥ २॥
द्विधा एकैकखण्डेन संप्रसार्यातिनैपुणात्।
सा च सर्पिषि संपक्वा मृद्वी पुटवती स्मृता॥ ३॥
वहिः खण्डप्रलिप्ता च फेणिकेयमिति स्मृता।
माषाजां फेणिकां केचित्केचित्क्षीरसमुद्भवाम्॥ ४॥
श्रृङ्गाटशालुकादीनामाहुर्युक्तां कणीकजाम्।
सरसैः पटलैरेता पुराणस्येव सन्धयः॥ ५॥
हसन्तीव सितत्वेन फेणिका मेनकापतिम्।
फेणिका पुष्टिनी शुभ्रा विस्तीर्णा वर्तुला लघुः॥ ६॥
निर्माणं युक्तिभिस्तासां जानन्ति कुशलः स्त्रियः।

फेनिका (फेणिका प्रकार)

(क) **विधि**

अ. गोधूम फणिका (मैदा) में घृत तथा दधि मिश्रित कर, पिण्ड की वर्तिकाकार (प्रसारण अधिकाधिक संमा०) बनाते हैं; फिर तण्डुल चूर्ण तथा नवनीत (मक्खन), जल मिश्रित कर लेप बनाकर, उस पर लगा देते हैं। इसे वस्त्र समान लपेटकर, आगे के भाग को काटते हैं (प्रत्येक खण्ड के दो भाग कर लेते है, फिर उसे फैलाकर, घृत में छान लेते हैं, जिससे यह मृदु पुटवाली हो जाये जिसपर वाह्य द्रेपेण खण्ड से प्रलिप्त करते हैं (चाशनी से)। इस पदार्थ को फेणिका (फेनी) कहा जाता है।

आ. कतिपय व्यक्तियों द्वारा माषणा माष पिष्ट (उड़द की पिट्ठी) तथा कुछ व्यक्ति

खोया याम माना (केचितकेचितक्षीरसमुद्भवाम्) से फेमिका का निर्माण करने का मन्तव्य प्रगट करते हैं। साथ ही, शृंगाटक (सिंघाड़ा), शालूक (कमलकन्द) की पिष्टी (पीठी) से फेनिका को बनाने का परामर्श देते हैं।

(ख) **वैशिष्ट्य**

यह फेनिका अपने सरस पटलों से पुराण की सन्धियो के सभाव है; तथा यह (फेनिका) अपने श्वेत वर्ण के कारण मेनका पति हिमालय को भी हास्य पूर्ण प्रतीत होती है। केतिका का निर्माण कुशल (पाकविद्या में निपुण) स्त्रियों को भलीभाँति ज्ञात है, जिससे पुष्टि, शुभ्रा (सफेद), विस्तीर्णा (लम्बी-चौड़ी) वर्तुला (गोल), लघु (छोटी) तथा अन्य आकृतियों में की फेनिका बन सकती है, इसको युक्तिपूर्वक फेनिका निर्माण में दक्ष स्त्रियाँ विभिन्न आकार-प्रकार की प्रस्तुति (फेनिका हेतु) प्रदान करती हैं।

वातपित्तहरा बल्या किञ्चित्कफकरा सरा॥ ७॥
सुस्निग्धा मधुरा शीता रुच्या गुर्वी मनोहरा।

(ग) **गुण-कर्म**

१. वातपित्तहरा (वात-पित्तनाशक) २. बल्या (बलवर्धक)
३. किंचित्कफकरा (कुछ कफवर्धक) ४. सरा (वातानुलोमक-सुखविरेचक)
५. सुस्निग्धा (अति स्निग्ध/ स्नेहयुक्त) ६. मधुरा (मधुर-स्वादु)
७. शीता (शीतल) ८. रुच्या (रुचिवर्धक)
९. गुर्वी (गुरु/दुष्पाच्य गरिष्ठ) १०. मनोहरा (मन को आकर्षित करने वाली)

यह फेनिका उपरोक्त गुण-कर्म द्वारा शरीर पर प्रभाव करती है, तथा एक स्वादुपूर्ण खाद्य (मधुर रस युक्त व्यंजन) के रूप में अपना स्थान रखती है।

अथ नवनीतफेणिकानिर्माणं गुणाश्च

दुग्धाम्बुना स्विन्नमुद्गद्विदलं तन्दुलैः सह॥ ८॥
नवनीतेन दध्ना च मिश्रं पिष्ट्वा पचेद्वटान्।
घृते तप्ते बहिः खण्डचूर्णेनोद्धूलयेदिमान॥ ९॥
नवनीतयुता मृदी फेणिका दुग्धसंयुता।
वातपित्तहरा बल्या स्निग्धा शीताऽतिपुष्टिदा॥ १०॥

नवनीत फेणिका

क. **विधि–** दुग्ध (दूध) में स्विन्न (उबाले हुए) मुद्ग (मूँग) दात्वि, को तण्डुल के साथ भिष्टी (पिट्ठी) बनाकर, नवनीत (मक्खन) तथा दधि (दही) मिश्रित कर वटक बना लेते हैं, फिर इनको तप्त घृत में पका कर रखते हैं। इन वटकों को बाहर से खण्ड चूर्ण (पिसी शर्करा) से उद्धूलन किया जाता है।

ख. **गुण-कर्मादि–** नवनीत तथा दुग्ध से युक्त मृदु फेनिका के गुण इस प्रकार हैं-

१. वातपित्त हरा (वातपित्त नाशक) २. बल्या (शरीर बलवर्धक)

३. स्निग्ध (मोहयुक्त चिकनी) ४. शीत (शीतल)

५. अति पुष्टिदा (अत्यन्त पुष्टिदायक)

अथ माषफेणिकानिर्माणं गुणाश्च

निस्तुषां माषविदलां सूक्ष्मा द्विस्त्रिस्तु पेषयेत्।
शिलायां पिष्टितामित्थं नवनीतेव संयुताम्॥ ११॥
छागचर्ममयोपेते छिद्रिते पूरितां दृढम्।
घृतपूर्णभाजनस्य तप्तस्योपरि भ्रामयेत्॥ १२॥
पूरिता तेन छिद्रेण सा षिष्टी धारया घृते।
पतिता पच्यते स्वच्छा ह्रस्वा पक्वा प्रपूरिणी॥ १३॥
वर्तुला चसुरस्त्रा वा दीर्घा वा फेनिका ततः।
प्रलेपयेद्वहिश्चित्रं पक्वखण्ड धारया॥ १४॥
माषमिष्टभवा फेणी गुर्वी स्निग्धाऽतिवातहा।
उष्णा संतर्पणा बल्या शुक्रस्थूलत्वकृत्सरा॥ १५॥

माष फेणिका

क. **विधि–** माष (उड़द) की दाल (मिस्तुषां माष विदलाम्)– जिसमें भूसी नहीं हो तथा महीन (सूक्ष्मा) दो-तीन बार पाषाण पर पिसी हुई (द्विस्त्रितु पेषयेत् शिलायां पिष्टितामित्यं) लेते हैं; इस दाल की पिट्ठी में नवनीत (मक्खन) मिश्रित करते हैं, जिसको छागचर्म की थैली (द्वारा चर्ममयोपेते छिद्रिते) में पूर्ण करके तथा दृढ़ता पूर्वक पीड़ित करते (पूरितां दृढम्) हुए, तप्तघृत से परिपूर्ण भाजन (घृतपूर्ण भाजनस्य तप्तस्त्रीपरि) पर घास रूप में धुमाते हैं (भ्रामयेत्)। इस रीति से पिष्ट (थैली से निकल कर– घी की कहाड़ी (कटाह या उपयुक्त–पात्र अग्नि पर स्थापित) में गिरकर पकरने पर स्वच्छ तथा खिता जाती है (पतिता पच्यते स्वच्छा ह्रस्वा पक्वा प्रपूरिणी); वह वर्तुल, चौकोर या लम्बी-विभिन्न आकारो में फेनिका बन जाती है; तदनन्तर इसको बाह्य रूप से पक्व खण्ड (चाशनी) का प्रलेपित किया जाता है। इस प्रकार 'माषफेनिका' का निर्माण हो जाता है, (जिसका लोक परम्परा में 'इमरती'– इमिरिती भी कहा जा सकता है) वह माषपिष्टभवा फेणी' का मिष्ट व्यंजनों (मिठाइयों को समिलित है।

ख. **गुण–**

१. गुरु (भारी-दुर्जर) २. स्निग्ध (चिकनी/ अन्तः स्निग्धता कारक)

३. अतिवातहा (अत्यन्त वातनाशक)

४. उष्णा (गर्भ) ५. संतर्पणा (तर्पणकारी)

६. बल्या (शरीर को बलप्रदायक)

७. शुक्रस्थूल कृत् (शुक्र-वीर्य में सान्द्रताकर)

८. सरा (सुखविरिचक)

अथ लड्डूकप्रकारः

प्रथमं दधिलड्डूकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

वस्त्रान्निर्गाल्य षिष्टं तु शालेस्तरयुतेन तु।
दध्ना सेवा घृते पक्त्वा मेलयेद्दलितां सिताम्॥ १६॥
दधिशालिभवं मेध्यं लड्डुकं पित्तनाशनम्।
बल्यं वातहरं हृद्यं विशेषाद्दाहनाशनम्॥ १७॥

लड्डू प्रभेद

दधि लड्डूक

क. **विधि–** शालि (चावल) की पिष्टी-दधि मिश्रित-को वस्त्र से छानकर, सेव की आकृति में बनाते हैं तथा घृत में (डालकर) पका लेते है तथा इसमे सिता (शक्कर-बूरा) को मिलदिते हैं। इस प्रकार 'दधि लड्डू' का निर्माण करते हैं।

ख. **गुण–**

१. मेध्य (मस्तिष्क बल/ कार्य शान्तिवर्धक) २. पित्तनाशन (पित्तशमक)

३. बल्य (शरीरबल दायक) ४. वताहर (वायुनाशक)

५. हृद्य (हृदयबलदायक)

६. दाहनाशन विशेषतः (जलन को शान्त करने वाला, विशिष्ट प्रभाव)

अथ कणिकान्नलड्डूकनिर्माणविधिः

कणिका सर्पिषा मिश्रा तोयपिण्डितमर्दिता।
तस्या मौक्तिकसदृशास्तुल्यास्तन्त्वादिनाऽथवा॥ १८॥
वर्तिवत्सेविकाः स्थूलास्त्वथवाऽभीष्टमात्रया।
सुपक्वा सर्पिषि मिते खण्डपाकविमिश्रिताः॥ १९॥
वर्तुलाः मोदकाः कार्यास्तुल्या वा मुष्टकेन तु।

कणिकान्न लड्डू

निर्माण विधि

गोधूम कणिका (गेहूँ का मैदा) में जल मिलाकर पिण्डाकार भलीभाँति मर्दन (मसल) कर– भौक्तिक (मोती) के समान, तन्तु समान, वर्ती जैसे या बड़े छोटे (अभीष्ट) जैसे चाहें, सेव बनाते हैं; फिर इनको घृत में पका लेते हैं, तथा अनुमि खण्ड पाक (शक्कर की) चाशनी मिलाकर) करते हैं, इस द्रव्य के मोदक–मुट्टी जैसे या वर्तुल-गोल आदि आकृति के निर्माण कर लेते हैं।।१७-१९$^1/_2$।।

अथ गोधूमचूर्णलड्डुकनिर्माणविधिः

ईषद्धृतेन संमिश्रा कणिका भर्जिता मनाक्॥ २०॥
खण्डपाके विनिक्षिप्य मर्दयेद्दृढपाणिना।
ततस्तया विनिर्मायं यावदिष्टप्रमाणकम्॥ २१॥

गोधूमचूर्ण लड्डूक

गोधूम चूर्ण (आटा या मेदा-कषिका) को घृत में भर्जित (भून) कर, खण्डपाक (शक्कर की चाशनी) करते हैं– इस द्रव्य को हाथ से बलपूर्वक मसलते हैं (मर्दयेद्दृढ-पाणिना), तत्पश्चात् स्वेच्छानुसार (इष्ट प्रमाणकम्)– उपयुक्त (अभिलाषित) आकृति प्रमाण में लड्डू का निर्माण करते हैं।।२०-२१।।

अथ दीर्घलड्डुकनिर्माणविधिः

मोदकाः खण्डपाकेन यदि तेनापि वेष्टयेत्।
श्लक्ष्णयेच्छ्लक्ष्णहस्तेन ततस्तान् सौरभोत्कटान्॥ २२॥

दीर्घलड्डूक

गोधूम चूर्ण को खण्डपाक करके-सुगन्धित बनाकर, स्निग्धपाणि (चिकने हाथो से)- हाथों से लम्बे (दीर्घ) मोदकों का निर्माण करते हैं।।२२।।

अथ चित्तमोदकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

उत्कृष्टशर्करापाके घृतभृष्टः सुवर्तिभिः।
बद्धः कर्पूरसुरभिर्मोदजश्चित्तमोदकः॥ २३॥
एवं बहुविधाः कार्या गोधूमान्नस्य लड्डुकाः।
स्थूला वा सूक्ष्मकाश्चापि पक्वखण्डविमिश्रिताः॥ २४॥
मोदका मरिचैलाभिर्वासिता नृपवल्लभाः।
सेववर्तिकया ये स्युर्नाम्ना ते तन्तुलड्डुकाः ॥ २५॥
स्थूलसेवभवाः स्थूलाः सूक्ष्मजाः सूक्ष्मसंज्ञकाः।
सेवमौक्तिजसदृशास्ते स्युर्मौक्तिकलड्डुकाः॥ २६॥
इत्येते सेवजा ख्याताः विशेषप्राप्तसंज्ञकाः।
लड्डुका जगति ख्याताः कणिकाप्रभृतेरपि॥ २७॥

चित्तमोदक

क. विधि

उत्कृष्ट शर्करा (खण्ड) पक्व, घृत भर्जित, सम्यक् रूप से वर्ति समान बद्ध, सुगन्धित (कर्पूर आदि सुरभि द्रव्यों से सुवासित) तथा चित्त (मन) को प्रसन्न (आह्लाद) देने वाला मोदक 'चित्तमोदक' कहलाता है। इसी भाँति गोधूम चूर्ण से विभिन्न प्रकार के मोदक (लड्डू) बनाये जा सकते हैं।

ख. वैशिष्ट्य

इस रीति से निर्मित मोदक (लड्डू) स्थूल (बड़े) या छोटे (सूक्ष्म), खण्डपाक युक्त, एला चूर्ण से सुगन्धित मोदक राजाओं (नृपवल्लभाः) के लिए प्रिय होते हैं।

सेवों (वर्तिकाओं) से निर्मित मोदक 'तन्तुमोदक' का नाम ग्रहण करते हैं- ये स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के होते हैं। मौक्तिक (मोती) समान सेवों से बने मोदक 'मौक्तिक लड्डू' कहे जाते हैं। इस तरह विभिन्न (अनेक) प्रकार के सेवों से बने मोदक उसी विशेष नामों की संज्ञा प्राप्त करते है।

विश्व में गोधूम चूर्ण तथा अन्य सम्बन्धित द्रव्यों से अनेक प्रकार के मोदक विख्यात है।।२३-२७।।

बल्यो गुरुतरः शीतो मधुरो वातपित्तहा।
कफशुक्रप्रदः स्निग्धो गोधूमान्नस्य लड्डुकः॥ २८॥

गुण

१. बल्य (देह बलवर्धक) २. गुरुतर (भारी/दुर्जर)

३. मधुर (मीठा, स्वादु) ४. वातपित्तहा (वात पित्तनाशक)

५. कफ प्रद (कफ वृद्धिकर) ६. शुक्रजनन (वीर्यवर्धक)

अथं माषलड्डुकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

माषपिष्टभवाः सेवा सेवा वा मुद्गपिष्टजाः।
सुदर्व्या छिद्रमार्गेण विश्राव्य घृतपाचिताः॥ २९॥
खण्डपाकस्य योगेन यान्ति मोदकहेतुताम्।
माषस्य च गुरुः स्निग्धो मोदको बलशुक्रदः॥ ३०॥
उष्णः संतर्पणो वृष्यः स्वादुपाकोऽनिलापहः।

माष लड्डूक

क. विधि

माष (उड़द) या मुद्ग (मूँग) की पिष्टी करे, सुदर्वी (उपयुक्त तथा अच्छी प्रकार की करछुल) के छिद्रों से पातन (गिराकर) सेव निकालकर, घृत में पाक कर लेते है, तथा खण्डपाक (चाशनी) मिश्रित कर, मोदक का निर्माण उपयुक्त रीति से किया जाता है।

ख. गुण

१. गुरु (गरिष्ठ) २. स्निग्ध (चिकनाहट पैदा करने वाला)

३. बलदायक (शरीरबलवर्धन) ४. शुक्रदायक (शुक्रजनन)

५. उष्ण (गर्म) ६. सन्तर्पण (तृप्तिदायक)

७. वृष्य (वाजीकरण) ८. स्वादुपाक (मधुरपाक)

९. अनिलापह (वातनाशक)

अथ माषमुद्गकोद्रवतन्दुलानां पर्पटलड्डुकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

पर्पटैर्घृतसंभृष्टैश्चूर्णितैः खण्डमिश्रितैः।
कणिकालड्डुकाकारं कर्तव्यं च यथेप्सितम्॥ ३१॥
त एव पक्वखण्डेन लेपिता मोदका बहिः।
पर्पटस्य समुद्भूतो लड्डुको रुचिकारकः॥ ३२॥
विशेषोऽत्रान्नजो ग्राह्यो विपाके मधुरो हि सः।

पर्पट लड्डूक

क. **विधि–** माष (उड़द), मुद्ग (मूँग) तथा कोद्रव (कोंदो) धण्डुल (चावल) के चूर्ण में खण्ड (शर्करा) मिश्रित करके– जल मिलाकर (उचित मात्रा में) के साथ पिण्ड बनाकर, पर्पट (पपड़ी) के आकार का बना लेते हैं, ऊपर से खण्डपाक (चाशनी) से आलेपित कर देते हैं। इस पर्पट-स्वरूप द्रव्य से मोदक (लड्डू) का निर्माण किया जाता हैं।– यही 'पर्पटक लड्डूक' होता है।

ख. **गुण–**

१. रुचिकारक (रोचन-रुचिवर्धन)

२. अन्नजमोदक (अन्न से निर्मित मोदक ग्रहणीय विशेषरूपेण)

३. मधुरविपाको (मोदक सं.-२ पर प्रदर्शित)

अथ मत्स्यलड्डुकनिर्माणविधिगुणाश्च

गतत्वङ्मत्स्यखण्डानि तक्रेणोत्स्वेदयेन्मनाक्।
ततो निष्कण्टकं कृत्वा तक्रेणातिविमर्दयेत्॥ ३३॥
अथ वस्त्रेण निर्गाल्य स्विन्नशालूकमिश्रितम्।
शिलायां पेषयेत्तौ च पिष्टिकां कारयेत्ततः॥ ३४॥
वर्तयित्वा तथा सेवान् पचेत्तप्तघृते भृशम्।
तैले विषमगन्धस्य निवृत्त्यर्थं पचेदथ॥ ३५॥
सेवा ये मौक्तिकनिभाः पक्वखण्डेन वेष्टिताः।
अथ वै मुद्गपिष्टेन पक्के सेवस्य बन्धनम्॥ ३६॥
कृत्वैवं तत्तु खण्डेन इति केचिद्ब्रुवन्ति च।
आमगन्धनिवृत्त्यर्थं पुनस्तैलेन पाचयेत्॥ ३७॥
मत्स्यजा लड्डुका बल्या गुरवः कफकारकाः।
वृष्यानिलहराः प्रोक्ताः किञ्चित्पित्तप्रकोपकाः॥ ३८॥

मत्स्य लड्डूक

क. **विधि–** मत्स्य (मछली)– चर्मविहीन– को तक्र में स्विन्न करके– निष्कण्टक (काँटा निकालना) कर, तक्र के साथ मर्दन (मसले) फिर, इस पदार्थ शालूक (कमलकन्द) का मिश्रण करते है– इस मिश्रण को पिष्ट करके, इससे सेव (या बूँदी) बनाकर, तप्त घृत में पका लेते हैं। इसको तैल में पकाने से विषमगंध या दुर्गन्ध का निराकरण हो जाता है। इस द्रव्य (सेव) को खण्डपाक में सम्यक् रूप से मिश्रित कर देते है तथा लड्डुक (मोदक) बनाते हैं। यदि आमगंध (दुर्गन्ध) है, तब पुनः तैल में पाक करना चाहिए।

ख. **गुण–**

१. बल्य (शरीर बल वर्धक)
२. गुरु (भारी, गरिष्ठ, दुर्जर)
३. देह-शक्तिदा बल्य (देह अंग-प्रत्यंग शक्तिवर्धन)
४. कफकारक (श्लेष्महर)
५. वृष्य (वाजीकरण)
६. अनिलहर (वातनाशक)
७. किंचित् पित्त प्रकोपक (कुछ पित्त का कोप करने वाला)

अथ मांसलड्डुकनिर्माणविधिर्गुणाच

इत्थमेव विधातव्या मांसस्यापि हिलड्डुकाः।
अप्सु संस्विन्नमन्नेन मिश्रितेन कणीकया॥ ३९॥
मत्स्यमांसस्य रीत्या तु कर्तव्या मांसलड्डुकाः।
गुणा मांसानुसारेण ज्ञातव्या लड्डुकेषु च॥ ४०॥

मांस लड्डूक

क. **विधि–** मत्स्य मोदक की विधि (पूर्वोक्त) के समान मांस के लड्डूओं का निर्माण किया जाता है। मांस को जल में स्विन्न करके, अन्नचूर्ण का मिश्रण करके, मांस के छोटे या अभीष्ट आकृति (एवं प्रमाण) के लड्डू बनाते हैं (मत्स्यमांसस्य रीत्या तु कर्त्तव्या मांस लड्डूकोः) जिसमें मत्स्य लड्डू की रीति का अनुसरण करने का निर्देश है।

ख. **गुण–** मांस लड्डूक के गुण, प्रयुक्त मांस के समान (प्राणः) होते है (गुण मांसानुसारेण ज्ञातव्या लड्डूकषुच)।

अथ शालूकलड्डुकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

शालूकं स्वेदितं निस्त्वक् पिष्टिकां कारयेत्ततः।
वर्तयित्वा तथा सेवा घृते तप्ते पचेत्ततः॥ ४१॥
सेवानां लड्डुकं कार्यं पक्वखण्डेन वेष्टितम्।
तदीयमौक्तिकैः कार्य श्रेष्ठं मौक्तिकलड्डुकम्॥ ४२॥
तथैव चूर्णितया वा पक्वखण्डविमिश्रितम्।
मांसलड्डुकवद्रीत्या सर्वं कुर्याद्विचक्षणः॥ ४३॥
दुर्जरः कफपित्तघ्नो विष्टम्भाध्मानकारकः।
कषायो वातकृद्रूक्षः शालूकलड्डुकः स्मृतः॥ ४४॥
शृङ्गाटपद्मिनीबीजसंबन्धिलड्डुकादिकम् ।
ज्ञातव्यं प्रागिव कृत्स्नं स्वबुद्ध्या कारयेद्बुधः॥ ४५॥

शालूक लड्डूक

क. **विधि–**

अ. शालूक (कमलकन्द) की स्वेदित-त्वक् रहित करके, पिष्टिका बनाते हैं, जिससे सेव (या बूँदी) को तप्त घृत में पाक करते हैं, फिर इस पर पक्व खण्ड (चाशनी) का मिश्रण (सम्यक् रूप से) करते हैं– अन्ततः इस द्रव्य से लड्डू का निर्माण कर लेते हैं, जो मोती के समान बूँदो के बने होने के कारण 'मौक्तिक लड्डूक' (मोतीचूर के लड्डू) संज्ञा भी प्राप्त करते है।

आ. इस तरह शालूक चूर्ण में शक्कर (शर्करा खण्ड पाक) की चाशनी मिलाकर उपयुक्त रीति से सम्मिश्रित करके, मांस लड्डूक के समान सभी पदार्थों का निर्माण हो जाता है, जो विचक्षण (विद्वानों) का कार्य है।

ख. **गुण–**

१. दुर्जर
२. कफपित्तघ्न
३. विष्टम्भकर
४. आध्मान कारक
५. कषाय
६. वातकृत्
७. रुक्ष

इ. शृंगष्टक (सिंघाड़ा) तथा कमलिनी (पद्मिनी) के बीजों का तथा अन्य द्रव्यों लड्डूक–पाकशास्त्र के ज्ञाताओं को स्वबुद्धि के अनुसार, सम्पूर्ण निर्माण करना चाहिए।

अथ सूरणमोदकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

पूर्ववत्स्वेदिताः खण्डाः सौरणा घृतपाचिताः।
खण्डपाकविमिश्राश्च यान्ति मोदकहेतुताम्॥ ४६॥
बल्यो वर्ण्योऽग्निकृत्सद्यः सौरणो मोदकः स्मृतः।
अत्यर्थं सर्वदा सेव्यश्चर्मकीलयुतैर्नरैः॥ ४७॥

सूरण मोदक

क. **विधि–** स्वेदित (उबाले हुए) सूरण कन्द (जिभीकन्द) के खण्डों से छिलका निकालकर (निस्त्वक्), तप्त घृत में पाक करते है, इसके पूर्व कन्द की पिट्ठी (पिट्ठी) सेव बना लेते हैं। इस सामग्री को खण्डपाक (शक्कर की चाशनी) में भलीप्रकार मिलाकर, मोदक (लड्डू) निर्माण करना चाहिए।

ख. **गुण–**

१. बल्य (शरीर का बलवर्धक)
२. वर्ण्य (देह का वर्ण प्रसारण)
३. अग्निकृत् (पाचकाग्नि जनन)
४. चर्मकील (अर्श) नाशक

(अर्श के रोगियों का अधिक सेवन इस मोदक विशेष का करना हितकर है।

अथार्द्रमोदकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

अम्लीकापत्रसंमिश्रं क्वाथयेदार्द्रक जले।
ततः क्षीरे विनिक्काथ्य सुखण्डांस्तस्य कारयेत्॥ ४८॥
ते च तन्दुलपिष्टेन वेष्टिता घृतपाचिताः।
पक्वखण्डे समालोड्य कर्तव्या त्वेलयाऽन्विताः॥ ४९॥
आर्द्रकस्यैव संभूतो मोदको रुचिबोधकः।
कण्ठ्योऽग्निजनकः प्रोक्तो विशेषाच्छ्वासकासहा॥ ५०॥

आर्द्रक मोदक

क. **विधि–** आर्द्रक (अदरक) को चिंचा पत्र मिले जल में क्वाथ बनाते समय डाल देते हैं। फिर निकाल कर दुग्ध में पाक करके सुखण्ड (सुन्दर, छोटे टुकड़े) बनाते हैं, जिनको तण्डल पिष्ट (चावल की पिट्ठी) आलेपित कर, तप्त घृत मे

पाक करके पक्व खण्ड (चाशनी) में डुबोते है, और एला-चूर्ण से सुगन्धित कर लेते हैं– इस द्रव्य के मोदक बनाते हैं।

ख. **गुण–**

१. रुचिबोधक (रुचिकर)
२. कण्ठय (कण्ठ-गले को हितकर)
३. अग्निजनक (पाचकाग्निवर्धक)
४. श्वासवृद्धि ⎤ श्वास एवं कास नाशक
५. कास ⎦ विशेषरूपेण

अथ कूष्माण्डमोदकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

कूष्माण्डस्य च कर्तव्यः सर्व आर्द्रकवद्विधिः।
स्वेदनं कर्तनं स्वाज्ये भर्जनं खण्डवेष्टनम्॥ ५१॥
कूष्माण्डजनितश्चायं लड्डूकः पित्तनाशनः।
बलकृद्वातहृत्सद्योरुचिकृत्फकृद्धिमः ॥ ५२॥

कूष्माण्ड मोदक

क. **विधि–**कूष्माण्ड (कोंहड़ा-कुम्हेड़ा) का मोदक-निर्माणार्थ आर्द्रक विधि का अनुसरण करना चाहिए। इस हेतु स्वेदन, कर्त्तन, आज्य, भर्जन तथा खण्ड-वेष्टन प्रभृति कर्त्तव्य पूर्ववत् किए जायेंगे। इस रीति से कूष्माण्ड-मोदक तैयार हो जाता है। (चिंचा पत्र उक्त जल मे उबालना, छोटे टुकड़े करना घी में भूनना तथा चाशनी। शक्कर मिलाना आदि क्रियायें आर्द्रक मोदक के समान कूष्माण्ड जनित लड्डूक बनाने के लिए)।

ख. **गुण–**

१. पित्तनाशक	२. बलकृत्	३. वातहृत्
४. सद्यरुचिकृत्	५. कफकृत्	६. शीत

अथ कूष्माण्डादिबीजमोदकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

कूष्माण्डबीजैर्निस्त्वग्भिश्चिर्भिट्यादिप्रियालजैः ।
खण्डपाकविमिश्रैश्च कुर्यात्तेषां हि मोदकान्॥ ५३॥
नालिकेरभवा मज्जा खण्डिता दुग्धपाचिता।
भर्जिता घृतमण्डेन खण्डपाकेन लेपिता॥ ५४॥

सर्वे मज्जाभवाः प्रोक्ता मोदका मोदकारकः।
धातुपुष्टिकरा बल्याः स्वनिमित्तगुणावहाः॥५५॥

कूष्माण्ड मज्जा मोदक

क. **विधि–** कूष्माण्ड फल-बीज त्वक् निष्कासित की मज्जा (गूदा) को स्वित्र कर लेते हैं, तथा पिष्टी बनाकर घृत में भर्जित करते (भूनते) हैं फिर खण्डपाक (चाशनी) मिलाकर, मोदक बनाते हैं।

नारिकेल मज्जा मोदक– नारिकेल (नारियल) की मज्जा को खण्डित (छोटे-छोटे टुकड़े कर), दुग्ध पाक तथा घृत में भजित करते है, खण्डपाक का सम्मिलन किया जाता है–इस रीति से मोदक बना लेते हैं।

अन्य मज्जा मोदक– इसी विधि से अन्य बीजों तथा मज्जा से मोदक का निर्माण किया जाना चाहिए।

ख. **गुण–** सामान्यत, समस्त प्रकार के मोदक मन (चित्त) को मुदित (प्रसन्न) करने वाले होते हैं अतः मोदक नामकरण है–

१. मोदकादक २. धातुपुष्टिकारक
३. बल्य ४. स्वनिमित्त गुणावह (स्रोत-द्रव्य मज्जा के अनुसार मोदक गुण युक्त)।

अथ दुग्धप्रकार

अथ दुग्धस्य निस्नेहसक्तुनिर्माणविधिः

दुग्धं विनष्टं निर्गाल्यं भृष्ट्वा भृष्ट्वाऽन्तरान्तरम्।
सखण्डं गालयेद्वस्त्रान्निःस्नेहं सक्तुवद्भवेत्॥५६॥
पाकपिण्डीकृतं दुग्धं नवमृन्मयभाजने।
मर्दितं गालितं चापि वस्त्रे स्यात्सक्तुसन्निभम्॥५७॥

दुग्ध प्रकार

दुग्ध स्नेह रहित सक्तु

दुग्ध (विनष्ट) को पाक करके बनाया हुआ खोया (मावा), वस्त्र निर्गाल्य (निचोड़ कर) तथा दुग्ध की भृष्ट करके (भृष्ट्वा भृष्ट्वाऽन्तरान्तरम्), सखण्डित (छोटे-छोटे टुकड़े कर) वस्त्रगालन (गालपेद्वस्त्रान्निस्नेहम्) या छानकर स्नेहविहीन कर लेते हैं- जो सक्तु (सत्तू) के समान प्रतीत होता है (सक्तुवद्भवेत्)। इसमें सत्तू के समान दुग्ध हो जमा करता है।।५६-५७।।

अथ क्षीरवटक-वटीनिर्माणविधिः

मरीचिगर्भिता नष्टदुग्धजा वटका वटी।
पक्त्वा घृते क्षिपेत्क्षीरे खण्डपाकेऽथवा क्षिपेत्॥५८॥

क्षीर-वटक

दुग्ध (मरीचिगर्भिता नष्ट दुग्धजा) का छैना निष्कासित कर बनी वटक (या वटी) को घृत में भर्जित (पक्त्वा घृते) कर दुग्ध में डालते हैं (क्षिपेत्क्षीरम्) अथवा खण्डपाक (चाशनी) में डालकर रख देते हैं (क्षिपेत्)। यह क्षीर वटक या क्षीर वटी का निर्माण हो जाता है।।५८।।

अथ क्षीरलड्डुकनिर्माणविधिः

नष्टं दुग्धं शिलापिष्टं युक्तं तण्डुलपिष्टकैः।
घृते पक्त्वाऽथ संचूर्ण्य खण्डपाकेऽथ मिश्रितम्॥५९॥
मोदकादिप्रकाराणां हेतुतामुपगच्छति।

क्षीर लड्डूक

दुग्ध के खोया (नष्ट दुग्ध) की पिष्टि (शिलापिष्टम्), में शर्करा (स्वच्छ) तथा तण्डुल पिष्ट (चावल की पिट्ठी) मिलाकर, घृत में पाक करके, खण्डपाक (चाशनी) का सम्मिश्रण कर देते हैं। इसरीति से यह द्रव्य मोदक आदि निर्माण के लिए उपयुक्त हो जायेगा (मोदकादिप्रकाराणां हेतुतामुपगच्छति)।।५९$^1/_2$।।

अथ स्वादुलड्डुकनिर्माणविधिः

शालिपिष्टयुतं क्षीरं घृतं तेन तु कारिता।
वटिका घृतसंपक्वा पिण्डदुग्धे सशर्करे॥६०॥
मेलिता विविधास्वादुलड्डुकानां च हेतवः।

स्वादु लड्डूक

शालि (जड़हन चावल) की पिष्टी (पीठी) को दुग्ध में पाक करके, घृत मिश्रित कर तथा पका कर, शर्करायुक्त निर्माण करते है। जो अनेक प्रकार के स्वाद युक्त होते हैं (मेलिता विविधस्वादुलड्डुकानां च हेतवः)।६०$^1/_2$।।

अथ रोचकदुग्धगोलकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

आगलितं वाससि सप्तवार-
न्विपाचितं गैरिकरागगौरम्।
दृढीकृतं मृन्मयनव्यपात्रे
प्ररोचकं गोलकदुग्धमेतत्॥ ६१॥
लड्डुकं दुग्धसंभूतं रोचकं पित्तनाशनम्।
शुक्रकृन्मधुरं बल्यं किंचित्कफकरं सरम्॥ ६२॥

रोचक दुग्धगोलक

क. **विधि–** दुग्ध के मेरुआरंग (गैरिकारागगौरम) मिश्रित सफेद वर्ण (रंग) स्रोत बाद पाकोपरान्त, वस्त्र से छानते है (आयलितं वासासि)।

इस पदार्थ को मृन्मय पात्र (मिट्टी) के नवीन पात्र/भजन) में रखकर दृढ़ी कृत् (सान्द्र या गाढ़ा) कर लेते हैं। तदनन्तर इसके मोलक का निर्माण कर लेते हैं– इनको 'दुग्धगोलक' नाम दिया जाता है।

ख. **गुण–** दुग्ध सम्भूत लड्डूक के गुण इस प्रकार हैं–

१. प्ररोचक-रोचक (प्रमुख गुण रुचिकर)
२. पित्तनाशन (पित्तशामक)
३. शुक्रवृत् (वींयजनन)
४. मधुर (मीठा/स्वाद)
५. बल्य (शरीरबलवर्धन)
६. किंचित् कफकर (कुछ कफकारक)

एवं विभिन्नद्रव्याणां मोदकनिर्माणनिरूपणम्

दधिशाल्यं तथा दुग्धं कणिका माषपर्पटाः।
सूरणार्द्रककूष्माण्डशालूकामिषमत्स्यजाः ॥ ६३॥
नालिकेरप्रियालस्य मज्जा कूष्माण्डकादयः।
एतेषां लड्डुकाः प्रोक्ताः संभवन्त्यन्यतोऽपि च॥ ६४॥

विभिन्न मोदक

दधि (दही), शालि-तण्डुल (जड़हन धान का चावल), दुग्ध कणिका (गेहूँ का

आटा-मैदा), माष पर्पट (उड़द की पपड़ी), सूरण (जिमीकन्द), आर्द्रक (अदरक), कूष्माण्ड (कुमहेड़ा), शालूक (कमलकन्द), मांस (प्रमान-प्रागणि मांस) = आमिष) मत्स्य (मछली), प्रियाल (चिरौंजी), कूष्माण्ड मज्जा (कोंहड़े का गूदा) आदि द्रव्यों के लड्डूक/मोदक निर्माण का वर्णन किया गया है (एतेषां लड्डुका प्रोक्ताः), तथा इसीप्रकार अन्य द्रव्यों के लड्डुकों (संभवन्त्यन्यतोऽपि) की भी कल्पना करके निर्माणउनको प्रस्तुत किया जा सकता है। (स्वविधि के अनुसरण द्वारा)॥६३-६४॥

अथ क्षीरकासारनिर्माणविधिः

दुग्धं विनष्टं निर्माथ्यं शुभ्रखण्डविमिश्रितम्।
मर्दनात्पङ्क्तां यातं मन्दवह्नौ च दापितम्॥ ६५॥
संमर्द्य प्रपचेत्तावद्यावद्धूलीसमं भवेत्।

क्षीरकासार

दुग्ध के खोया-भावा (जिसको शास्त्रीय भाषा में 'विनष्टदुध' कहा जाता है) मे शुभ्रखण्ड (सफेदशक्कर) मिश्रित कर, मर्दन करें, तथा मन्द वह्नि पर रखकर पाक करते हैं, जिससे यह पीत वणीय खोया धूलि के समान हो जायेगा (धूली समं भवेत्) संमर्द्य प्रपचेत्तावद्)। इस रीति से 'क्षीद्रकासार' प्रस्तुत होता है।॥६५½॥

अथ क्षीरतिलावननिर्माणविधिः

लाजाचूर्णं क्षिपेत्पिण्डदुग्धे द्राक्षां सशर्कराम्।
मज्जां नवप्रियालानां ततः कुर्यात्तिलावनम्॥ ६६॥

क्षीरतिलावन

विनष्ट दुग्ध (खोया) में लाजा चूर्ण (धान की खली), द्राक्षा (मुनक्का), शर्करा तथा नवीन प्रियाल मज्जा (चिरोंजी) की सम्मिलित कर पाक करते है, फिर 'तिलमन' बनाते हैं।॥६६॥

अथ कृशरागर्भकनिर्माणविधिः

घृतपक्वकणीकायाश्चूर्णं गर्भितपिण्डकम्।
पिष्टक्षीरकृतं सर्पिः पक्वं कृशरगर्भकम्॥ ६७॥

कृशरागर्भक

घृत पक्व कणिका (गेहूँ की मैदा) के चूर्ण से गर्मित पिण्ड (छेदवाला पिण्ड)

बनाकर, दुग्ध की पिष्टी से पूरित कर, घृत में पाक कर लेते हैं। इस रीति से 'कृशराग गर्भक' पदाथ प्रस्तुत होता है॥६७॥

अथ क्षीरदलनिर्माणविधि:

घनं दुग्धं घृतभृष्टं क्षीरे पिहितरन्धितम्।
कटाहे तु बहिः खण्डप्रलिप्तं क्षीरजं दलम्॥ ६८॥

क्षीरदल

धन के दुग्ध (खोया) को घृत भृष्ट (घी में भून) कर दुग्ध में डालकर पाक करते हैं। फिर कटाह (कढ़ाई) से बाहर निकालकर (वहि:) स्थापित कर, खण्ड प्रलिप्त (चाशनी का लेप) करते हैं। यह 'क्षीरजदल' प्रस्तुत होता है॥६८॥

अथ क्षीरशाकनिर्माणविधि:

विनष्टदुग्धं खण्डं च तलयेत्तसर्पिषि।
तन्निर्द्रवं खण्डसमं क्षीरशाकमिदं स्मृतम्॥ ६९॥

क्षीरशाक

विनष्ट दुग्ध (छेना) के खण्ड (छोटे टुकड़े) कर, तप्त घृत में तलते हैं, फिर द्रव रहित खण्डों को शाक रूप में तैयार करते हैं– इसे 'क्षीरशाक' संज्ञा दी जाती है (आवश्यकतानुसार इसमें वेसवार, लवण तथा अन्य आहार द्रव्यों में प्रयुक्त मसालों का प्रयोग किया जा सकता है– क्षीरशाक विशेष हेतु॥६९॥

अथ तुपयोग्यक्षीरशाकनिर्माणविधि:

क्षीरं प्रक्षीणनीरं क्वथितमतितरां रागवत्तामुपेतं
ब्रह्मक्षोणीजवल्कलश्रृतजलमिव छायममृतानुकारकम्।
पिण्डं क्षीरप्रभूतं प्रदलितमरिचक्षोदसौरभ्यगन्धि
कोष्णंसंजातपाकं नरवरभवने गीयते क्षीरसारम्॥ ७०॥

राजा (नृप) योग्य क्षीरपाक

क्षीर (दुग्ध) को भलीभाँति पकाकर, रामयुक्त, घन पिण्ड के समान बना लेते हैं कि इसमें मरिच चूर्ण तथा सुगन्धित द्रव्यों का चूर्ण सम्मिलित कर (पुन:) पाक करते है। यह 'क्षीर अन्य शाक'। राजाओं, गरवर या नृप (राजाओं) के लिए योग्य (अनुकूल स्वाद एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से तथा उत्कृष्ट आहार)॥७०॥

सर्वविधक्षीरभवभक्ष्यस्य गुणा:

सर्वे क्षीरभवा भक्ष्याः पुष्टिशुक्रप्रदा हिमाः।
गुरवः कफकृत्स्निग्धा बृंहणानिलपित्तहाः॥ ७१॥
गव्यमाहिषजाताजास्त्रिविधाः क्षीरसंभवाः।
स्वनिदानगुणा ज्ञेया विशेषो वस्तुभेदतः॥ ७२॥

सर्वप्रकार क्षीर निर्मित भोज्य पदार्थ

विविध (अनेक) प्रकार के दुग्ध निर्मित भोज्य व्यंजनों के सामान्य गुण इस प्रकार हैं– (सर्वे क्षीरभवा भक्ष्या:)–

१. पुष्टिदा (पुष्टिदायक-शरीर पोषक)
२. शुक्रप्रदा (वीर्यवर्धक)
३. हिमा (शीतल)
४. गुरुव (गुरु/भारी/ दुष्पच्य)
५. कफकृत् (कफजनन)
६. स्निग्धा (चिकने/ स्नेहन शरीरगत करने वाले)
७. बृंहण (शरीर धातुओं की वृद्धि, मांस आदि)
८. अनिलहा (वातकशक)
९. पित्तहा (पित्तशामक)

प्राणि (पशु) त्रय दुग्ध निर्मित भोज्य भक्षण योग्य व्यंजन

१. गव्य (गाय) २. माहिष (भैंस) ३. अजा (बकरी)

इन तीन पशुओं से प्राप्त दुग्ध से भक्ष्य वस्तुएँ बनायी जाती हैं। इन पदार्थों के सामान्य गुण-कर्म उन प्राणियों (पशुओं) के समान होते हैं, जिनका दुग्ध इन व्यंजनों के निर्माण में किया जाता है। इनके विशेष गुण निर्माण-योग्य वस्तुओं (पदार्थों) के अनुसार विद्यमान होते हैं। (स्वनिदानगुणा ज्ञेया विशेषो वस्तुभेदत:)॥७१-७२॥

अथ मण्डकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

विकसितजलकल्पः शुद्धगोधूमपुञ्जः
प्रबलदृषदि कामं खण्डितः सैन्धवेन।
आपगततुषभावोऽसौ नवीनाशुकश्रीः
समुपहरणयोग्यो मण्डकः स्विन्नवृत्तः॥ ७३॥

मण्डक

शुद्ध गोधूम पुंज (गेहूँ के समूह या ढेर) को, जिसकी आभा विकसित (प्रफुल्लित जल) के समान हो, शिला पर सैन्धव के साथ कुट्टन (प्रबलदृषादि काम खण्डित:) करके निस्तुष कर लेते है। भूसी निकलने से, यह सुन्दर वस्त्र के समान हो जाता है (अपगततुषभावोऽसौ नवीनांशुकश्री)। इस द्रव्य को स्विन्न कर लेते हैं (उबाल लेते हैं अथवा भून (भृष्ट) कर भोज्य पदार्थ बन जाता है। इस पदार्थ को माण्डक कहा जाता है। जो आहार योग्य होता है (समुपहरणयोग्यी मण्डक:)॥७३॥

कुकूलकर्परे सिद्धाः काष्ठाङ्गारविपाचिताः।
मण्डकाद्या भयापूर्वं गुरवो बृहंणा मताः॥ ७४॥
अत्युष्णो मण्डकः पथ्यः शीतः स गुरुरुच्यते।
अङ्गारमण्डको ग्राही लघुर्दोषत्यापहः॥ ७५॥

क. **विधि–** कुकूल (भूसी की अग्नि) तथा कर्पर (कटाह/ कणाई या मिट्टी-घड़े आदि की टूटी हुई) कों अग्नि-सिद्ध करके मण्डक, यथापूर्व गुरु (गरिष्ठ) तथा बृंहण (धातुवर्धक) होते है गुण युक्त हुआ करते हैं। इसके अनुसार अंगार, खर्पर तथा कुकूल में पक्व (भूने हुए) मण्डक क्रमशः अधिक गुणवान् होते हैं।

ख. **गुण–** **अंगार पक्व मण्डक**

१. अत्यधिक उष्ण (बहुत गर्भ)
२. पथ्य (हितकर)
३. शीत (शीतल)
४. गुरु (भारी/ गरिष्ठ)
५. ग्राही (मल बाँधने वाष्प)
६. लघु (हल्का सुपाच्य)
७. त्रिदोषनाशक (तीनों दोषों का शामक)

अथाम्रफलमण्डकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

द्विधाऽऽम्रखण्डं पयसि प्रसंश्रृतं
सुलेहितं वह्निजशकैरलकैः।
नवाज्ययुक्तं तनुमण्डकान्वितं
सोऽश्नाति यः स्नातिचरः शिवालयम्॥ ७६॥
हृद्यं रुचिकरं बल्यमाम्रमम्लं समीरजित्।
कषायानुरसं स्वादु वर्णदं मधुरं गुरु॥ ७७॥

आम्रफल मण्डक

क. **विधि–** आम्रफल खण्ड द्वय (आम्र के फल को दो टुकड़ों में विभाजित कर) जल में स्विन्न (उबाल) कर लेते हैं। इसमें मरिच चूर्ण, शर्करा तथा एलाचूर्ण मिश्रित करके, नवीनघृत (नवाज्ययुतम्) तथा पतले मण्डक (तनुमण्डकाचितम्) को अवलेह की भाँति बना लेते हैं।

ख. **वैशिष्ट्य–** इस मण्डक का भक्षण वहीं करता है, जो स्नान के पश्चात् तत्कालय भगवान शंकर के दर्शन (पूजा-अर्चना हेतु) शिवालय जाता है (सोऽश्नति यः स्नातिचरः शिवालयम्)।– यह व्यंजन भगवान शिव केक भक्त के भाग्य में उपलब्ध होता है।

ग. **गुण–**
१. हृद्य (हृदय बलदायक)
२. रुचिकर (रोचन)
३. बल्य (बलवर्धक)
४. समीरजित (वातहर)
५. कषायानुरस (कषाय रस का अनुबन्ध)
६. स्वादु (स्वादपूर्ण)
७. वर्णदा (देहवर्ण प्रसादन)
८. मधुर (मीठा)
९. गुरु (भारी/ दुर्जर)

अथ पोलिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

मण्डकः प्रसृतः सूक्ष्मः खर्परादिषु पाचितः।
स एव किमपि स्थूलः सुबुधैः पोलिका मता॥ ७८॥
पोलिका वातहा बल्या कफकृत्पित्तहा हिमा।
स्निग्धोष्णा मधुरा गुर्वी सरा सन्धानकारिणी॥ ७९॥

पोलिका

क. **विधि–** निस्तुष गोधूम (छिलकारहित गेहूँ) को सूक्ष्म (महीन) कूट कर, खर्पर आदि में पाचन (भूनकर) करके बनाते हैं। जोकि 'मण्डक' कहलाता है।

यदि इस मुख घटक द्रव्य (गोधूम) को स्थूल (मोटा) कूटते-भूनते है, फिर इसी 'पोलिका' नाम पाकविद्या (सुबुधैः) के ज्ञाताओ (बुद्धिमानो) ने दिया है।

ख. **गुण–**
१. वातहा (वातनाशक)
२. बल्या (देहबलवर्धक)
३. कफकृत् (कफजनक)
४. पित्तहा (पित्तशामक)
५. शीत (शीतल)
६. स्निग्ध (चिकनी/स्नेह शरीरगत उत्पादक)

७. उष्ण (गरम) ८. मधुर (मीठा स्वाद)
९. गुर्वी (गुरु/ दुर्जर) १०. सरा (सुखरेचक-वातानुलोमक)
११. सन्धानकारिणी

अथाङ्गारकर्करीनिर्माणविधिर्गुणाश्च

कणिका सैन्धवोपेता पाणिना मर्दिता दृढम्।
निर्धूमाङ्गारपचिता विज्ञेयाऽङ्गारकर्करी॥ ८०॥
अङ्गारकर्करी बल्या बृंहणी शुक्रला लघुः।
दीपपी कफहृद्रोगपीनसश्वासकासहा॥ ८१॥

अङ्गरकर्कटी

क. **विधि–** कणिका (गेहूँ का चूर्ण) में सैन्धव लवण मिश्रित कर जल के साथ हाथों से मर्दन (पाणिना मर्दिता) करते हैं, निर्धूम अंगार में पाक करते हैं– इसको अङ्गारकर्करी नाम दिया गया है।

ख. **गुण–** १. बल्य (शरीर शक्तिदायक) ६. कफरोग
२. बृंहणी (धातु पोषक-वृद्धिकर) ७. कफरोग
३. शुक्ला (वीर्य जनन) ८. वीनस
४. लघु (हल्का-सुपाच्य) ९. श्वास
५. दीपनी (पाचकाग्नि वर्धन) १०. कास
(रोगनाशक ६-१०)

अथ वेढि(टि)कानिर्माणविधिर्गुणाश्च

चणकस्य भवा पिष्टी वा माषसंभवा।
यवानीहिङ्गुलवणैः संयुक्ता गर्भसंस्थिता॥ ८२॥
कणिकायाः पोलिकेव कर्तव्या वेटिकाः बुधैः।
वेटिका वातहा मृद्वी स्निग्धोष्णा गुरुपाचिका॥ ८३॥
कफघ्नी चणकोन्मिश्रा वातहा माषपिष्टजा।

वेष्टिका

क. **विधि–** चेणक (चना) या माष (उड़द) की पिष्टी (पिट्ठी) में यावनी, हिंगु तथा लवण सम्मिलित कर, गोधूम चूर्ण (गेहूँ के आटे) की पिण्ड (लोई) में अन्दर (गर्भसंस्थिता) पेन भरते हैं। इसे पोलिक के समान अंगार पर पका लेते हैं।

ख. **गुण–** १. वातहा (वातनाशक)– विशेषत: मापपिष्टी पूर्ण वेटिका

२. मृद्वी (मृदु/कोमल)
३. स्निग्ध (चिकनाहट उसत्वकारी)
४. उष्णा (गर्भ)
५. गुरु (भारी/ दुष्पाच्य)
६. पाचन (अग्निवर्धक/ पाचन सहायक)
७. कफनाशक (चना पिष्टी युक्त पेटिका (पोलिका)

यह चना की पिट्ठी भरी हुई वेटिका (पोलिका) के गुण-कर्म होते है।

अथ शुद्धलप्सिकानिर्माणविधि:

घृते तप्ते विनिक्षिप्य कणिकां पाचयेत्समे।
ततोऽल्पमल्पं निक्षिप्य क्षीरं सर्वसमं पचेत्॥ ८४॥
ततः खण्डांशकं क्षिप्त्वा पचेदाघृतदर्शनात्।
लवङ्गाढ्या समरिचा लप्सिकेति प्रकीर्तिता॥ ८५॥

शुद्ध लप्सिका

कणिका (गेहूँ का चूर्ण/ महीन या मोटा आटा) को तप्त घृत (दर्वी) भूनते (पाचन) हैं। फिर अल्पमात्रा में दुग्ध (क्षीर) डालकर– इस मिश्रण का पाक करते है (सर्वसमं पचेत्)। और खण्डांशकम् (चौथाई भाग– शक्कर/ शर्करा) डालकर, घृत क दिखाई पड़ने तक (पचेदाघृत दर्शनात्) पकाते (भूनते/ दर्वी चालन सहित) पकाते रहते हैं; इसी में लवंग, मरिच चूर्ण आदि (अन्य सूखेमेवे/ सुगन्धित द्रव्य आदि) मिला देते हैं– इस पदार्थ को 'लप्सिका' नाम दिया जाता है।।८४-८५।।

अथ भैमीनिर्माणविधि:

श्रेष्ठं गोधूमचूर्णं प्रचुरघृतयुतं नालिकेरेण सार्धं
द्राक्षाखर्जूरशुण्ठीत्वचमरिचयुतं शर्करापूर्णगर्भम्।
पक्वं ताम्रे कटाहे रलविटलरवैः पावके मन्ददीप्तौ
धन्यैर्हेमन्तकाले सुजनपरिवृतैर्भुज्यते विप्रशेषम्॥ ८६॥

भैमी

श्रेष्ठ गोधूम चूर्ण (उत्तम कोटि के गेहूँ के आटे) की तप्त घृत मे मर्दन कर (जल सहित), उसकी पोलिका (लोई) में नारिकेल मज्जा खण्ड तनु (नारियल गिरि के पतले

टुकड़े), द्राक्षा, शुण्ठी, त्वक् (दारुसिता), मरिच के साथ शर्करा से परिपूर्ण करके, ताम्र कटाह (ताँबे की कढ़ाई) में भेर घृत में डालकर– रत्नविटल (अव्यक्त शब्द) के साथ मन्द अग्नि पर पाक करते हैं– इस 'दार्थ को' भैमी पोलिका नाम दिया जाता है।

इस व्यंजन को धनवान् व्यक्ति अपने सुजनों परिवार जन-परिजन) के साहचर्य में हेमन्त ऋतु में सेवन करने का आनन्द प्राप्त करते हैं।।८६।।

अथ चन्द्राहासानिर्माणविधि:

दीर्घं गोधूमचूर्णं शशधरकिरणप्रोज्वलं तप्तमाज्ये
दुग्धे क्षिप्तं सखण्डं मृदुपटनिसृते योजितं तत्कटाहे।
स्तोकं स्तोकं च दत्तं बहुघृतपचितं दर्विलग्नं न यावत्
सिद्धे वातमद्राक्षामरिचहिमयुता गीयते चन्द्रहासा॥ ८७॥

चन्द्रहासा

गोधूम चूर्ण–चन्द्रमा की किरण के समान– की घृत में पाक करके, खण्ड (शर्करा) का मिश्रण दुग्ध के साथ डाल देते हैं– इसको मृदु पर (मुलायम कपड़े) से विसरण (छानकर), कटाह (कढाई) में मन्द अग्नि पर– स्तोक-स्तोक (थोड़ा-थोड़ा) घृत छोड़ते हुए, पकाते रहते हैं (बहघृतपाचितम्) जब तक दर्विलग्नल (करछुल से चिपकना) का त्याग न कर दें (अर्थात् पाकाघीन पदार्थ दर्वी से संश्लिष्ट होना बन्द कर दे (अर्थात् पाकाधीन पदार्थ दर्वी से संश्लिष्ट होना बन्द करे)। उसका पाक पूर्ण होने पर, वाताद (बादाम), द्राक्षा (मनुक्का), मरिच तथा कर्पूर, सिद्ध व्यंजन में मिला देते हैं– इस पदार्थ को 'चन्द्रहासा' नाम दिया जाता है।।८७।।

अथ ललितानिर्माणविधि:

समितां भर्जयेत्तप्ते घृते श्वेतां ततो न्यसेत्।
चारमज्जादिसंमुक्तां पयसा बलहीकृताम्॥ ८८॥
मरिचैलयुता तज्ज्ञैर्लप्सिका ललिता मता।
लप्सिका बृंहणी वृष्या वातपित्तहरा गुरुः॥ ८९॥
कफमेदःकरा स्निग्धा सुरुच्याऽऽह्लादकारिणी।

ललिता (लाप्सिका)

क. **विधि–** समिता (गोधूम चूर्ण–मैदा-कजिका) को तप्त घृत में भर्जन करते (भूनते) है तथा श्वेता (शर्करा) का मिश्रण कर देते है। फिर, इसमें चार मज्जा (चिरौंजी) बादाम, द्राक्षा, आदि दुग घ्रोल (पयसाबहलीकृताम्) डालकर पका लेते हैं, तदनन्तर मरिच एवं एला (इलायची) चूर्ण भी मिला देते है। व्यंजन को 'ललिता लप्सिका' नाम दिया गया है विद्वान पाकशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त संज्ञा।

ख. **गुण–**
१. बृंहणी (शरीरगत धातु– मांसादि वर्धक)
२. वृष्या (त्वाजीकरण– शुक्रवर्धक)
३. वातपित्तहरा (वात तथा पित्त शामक)
४. गुरु (भारी-दुष्पाच्य-गरिष्ठ)
५. कफमेदकदा (कफवर्धक– मेदकर)
६. स्निग्धा (चिकनी/ चिकनाहट करने वाली)
७. सुरुच्या (रुचिवर्धक रोचक)
८. आह्लादकारिणी (मानसिक प्रसन्नता प्रदान करने वाली)

अथ शुद्धघेवरनिर्माणविधि:

क्षीरेण मर्दितं चूर्णं गोधूमानां सुगालितम्।
विस्तार्यं सर्पिषा पाच्यं कटाहेऽथ सितान्वितम्॥ ९०॥
घृतपूरोऽयमुद्दिष्टः कर्पूरमरिचान्वितः।

शुद्धघेवर-घृतपूर

गोधूम चूर्ण (अच्छे आटे-छाने हुए– सुगन्धतम्) को दुग्ध के साथ मर्दित करते हैं तथा शर्करा (सितान्वितम्) मिश्रित करके कटाह में विस्तार्य (फैलाकर), घृत में पाक करते हैं; फिर कर्पूर तथा मरिच चूर्ण का समिश्रण कर देते हैं। इस पदार्थ को घृतपूर (घेवर) कहा जाता है।।९०१/२।।

अथ नालिकेरजघेवरनिर्माणविधि:

समिता मर्दिता क्षीरे नालिकेरसतार्द्रकैः।
अवगाह्य घृते पाच्या घृतपूरोऽपरः स्मृतः।।९१।।

नालिकेरजघेवर–घृतपूर

गोधूम-चूर्ण (समिता) को नारिकेल (नारियल) मज्जा (महीन पीसकर) से संयुक्त करके, सिता (चीनी/शर्करा) तथा आर्द्रक (अदरक) के कल्क दो दुग्ध मिलकर मर्दन

करते है, तथा घृत में डुबोकर (अवगाह्य) पकाते (घृते पाच्या) है। यह अन्य प्रकार (घृतपूरोऽपर:) का घेवर (घृतपूर) कहा जाता है॥९१॥

अथ दुग्धजघेवरनिर्माणविधि:

पाकपिण्डीकृतं क्षीरं शर्कराचूर्णमिश्रितम्।
घृतपूरविनिर्माणं कारयेत्स्वल्पसर्पिषि॥ ९२॥

दुग्धजघेवर (घृतपूर)

दुग्ध का खोया (विनष्टक्षीर) पाक पिण्डीकृत सीरम्), शर्करा चूर्ण मिश्रित- को मर्दन करके, अल्प घी (स्वल्पसर्पिषि) में पाक कर लेते हैं- इसरीति घृतपूर या घेवर का निर्माण कर लेते हैं॥९२॥

अथ शालिपिष्टभवघेवरनिर्माणविधि:

सुशालिपिष्ट दुग्धे तु क्वथितं वस्त्रगालितम्।
खण्डयुक्तं घृते पक्वं घृतपूरो भवेदयम्॥ ९३॥

शालिपिष्टभव घेवर (घृतपूर)

सुशालिपिष्ट (उत्तम कोटि के चावलों की पिट्ठी) का दुग्ध में क्वथित करके (उबालकर), वस्त्रमालिक (कपड़े से छानकर) करने के बाद खण्डयुक्त (शर्करा मिश्रण) करें- इस द्रव्य को घृत में पाक (पक्व) कर लेते हैं- इस पदार्थ को 'शालिघृतपूर' मान दिया गया है॥९३॥

अथ कसेरुजघेवरनिर्माणविधि:

कसेरुचूर्णं निक्षिप्य पाकपिण्डीकृतं पय:।
निर्माणं घृतपूराणां शर्करासहितं भवेत्॥ ९४॥

कसेरुक घेवर (घृतपूर)

कसेरुक कन्द चूर्ण को दुग्ध में निक्षेप करके पाक द्वारा पिण्डीकृत प्रक्रिया पूर्ण करें, फिर शर्करा का सम्मिश्रण करके, घृत में पाक करते हैं- यह कसेरुक घृतपूर (घेवर) की निर्माण विधि है॥९४॥

अथाम्रसभवघेवरनिर्माणविधि:

पक्वाम्रस्य घृते तप्ते रसस्तलनपिण्डित:।
शुद्धशर्करया योज्यो घृतपूरो यदृच्छया॥ ९५॥

क्षीरमात्मानुरूपं हि खण्डचूर्णं तत: स्मृतम्।
योजितो यो विशेषोऽत्र तदाख्यापूर्णसंज्ञित:॥ ९६॥

आम्ररसघृतपूर

आम्र रस को तप्त घृत में पाक करके (तलन), पिण्डीकृत हो जाने पर, शुद्धशर्करा मिलाकर तथा घृतमें पक्व (पकाकर) घृतपूर का निर्माण करते है।

विनष्ट दुग्ध (खोया) में दुग्ध के (क्षीरमात्मानुरूपम्) प्रमाणानुसार शर्करा (खण्डचूर्ण) का सामिलन उपयुक्त है। इस प्रसंग में जो विशेष भोजनानुसार पदार्थ (योग) निर्मित होता है, उसे उसी नाम (तदाख्यापूर्ण संज्ञित:) की संज्ञा दी जाती है॥९५-९६॥

अथ विविधघृतपूरस्य गुणा:

घृतपूरो गुरुर्वृष्यो हृद्य: पित्तानिलापह:।
सद्य: प्राणप्रदो बल्य: सुरुच्योऽग्निप्रदीपन:॥ ९७॥

विविधघृतपूर व्यंजन

सामान्य गुण-कर्म

१. गुरु	२. वृष्य	३. हृद्य
४. पित्तावह	५. अनिलापह	६. सद्य:प्राणप्रद
७. बल्य	८. सुरुच्य	९. आग्निप्रदीपन

शृङ्गाटकमखाणानामप्येवं घृतपूरका:।
विचार्य वस्तुसंयोगं तद्गुणानपि चावदेत्॥ ९८॥

विभिन्नप्रकार के घृतपूर

१. शृंगारक (सिंघाड़ा) २. सरवाण (मखान्न/ मरवाना)

इन पदार्थों घृतपूर का उपयुक्त विचारपूर्वक संयोग करके (विचार्य वस्तुसंयोनम्) निर्माण किया जा सकता है, तथा इनके गुण-कर्मों का निर्देशन भी करना चाहिए (तद्गुणानपि चावदेत)॥९८॥

अथ गुह्या-संयावकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

समितां सर्पिषा भृष्टां सिताद्राक्षादिसंभृताम्।
एलालवङ्गकर्पूरमरीचै: परिवासिताम्॥ ९९॥

क्षिप्त्वाऽन्यसमितालम्बपुटे वेष्ट्या घृतेपचेत्।
ततः खण्डे न्यसेत्पक्वे गुह्यकोऽयमुदाहृतः॥ १००॥
गुह्यको बृंहणो वृष्यो हृद्यः पित्तानिलापहः।
मधुरोतिगुरुः पाके किञ्चित्सन्धानकृत्सरः।।१०१।।

गुह्या-संयावक

क. **विधि–** समिता (मैदा) को घृत में सुमृष्ट करके, सिता, द्राक्षा, प्रियाल आदि सम्मिलित करें, तथा सुगन्धि द्रव्यों-एला, लवंग, कर्पूर, मरिच आदि से परिवासित (सुगंधमय) करते हैं। इसके बाद मैदा (समिता) के अन्य आलम्बन पुट (छोटी-रोटी के टुकड़े) की मध्य वेष्टित (भर)कर, घृत में पकायें (पूर का मुख बन्द करके) तथा इसे खण्डपाक (चाशनी), में अन्ततः डुबो देते हैं (न्यसेत्पक्वे)। इस पदार्थ को, गुह्या-गुह्यक कहा जाता है। सामान्य मन भाषा (हिन्द आदि) में गुझिया-मुथिया संयाव कहने का प्रचलन है (जिसका लोक समाजिक परम्परा के पर्वो के विशिष्ट व्यंजन के मिष्ट पदार्थों में, होलिका होली पर सकी निर्माण उपयोग सर्वविदित है)।

ख. **गुण–**

१. बृंहण	२. वृष्य
३. हृद्य	४. पित्तावह
५. अनिलपह	६. मधुर
७. अतिगुरु	८. मधुरविपाकी
९. अल्पसंधानकारिकी	१०. सर

अथामृतसंयावकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

समितां मधुदुग्धेन मर्दयित्वा सुशोभनाम्।
पचेद्धृतोत्तमे तप्ते न्यसेत्पक्वनवे घटे॥ १०२॥
ततो मरिचचूर्णैलाखण्डचूर्णावचूर्णितम्।
कुर्यात्कर्पूरसंयुक्तं संयावममृतं स्मृतम्॥ १०३॥
संयावममृतं स्वादु पित्तघ्नं मधुरं स्मृतम्।
वृष्य वातहरं हृद्य विपाके गुरु भाषितम्॥ १०४॥

अमृत संयाव

क. **विधि–** समिता (मैदा) को मधु एवं दुग्ध में मर्दन-सुशोधन (भलीभाँति मसल कर), तश उत्तम घृत में पाक करें तथा नवीनघट में स्थापित करके, मरिच, बला, खण्ड चूर्ण का सम्मिलन करें। तत्पश्चात् कर्पूर मिलाकर, यह आवृत्त करते है। इस पदार्थ को 'अमृतसंयम' (अमृत गुजिया) नाम दिया गया है।

ख. **गुण–**

१. मधुर (स्वादु)	२. पित्तशामक
३. वृष्य	४. वातहर
५. हृद्य	६. गुरुविपाकी

अथ मधुशीर्षा–प्राज्यानिर्माणविधिः

मर्दयित्वा सुसमितामायुषोत्सवकः स्मृतः।
पक्वो घृते सितापङ्कैर्मण्डितो मधुशीर्षकः॥ १०५॥

मधुशीर्षा (प्राज्या)

सुसमिता (उत्तम कोटिकी गेहूँ के आटे की बनी मैदा) को घृत में पाक करके, खण्डपाक (शक्कर की चाशनी) में क्षेपण (सिलपङ्कमण्डितौ) करते हैं। इस पदार्थ को 'मधुशीर्षा' नाम दिया जाता है॥१०५॥

अथ मातुलुङ्गार्द्रकयुतमधुशीर्षकानां निर्माणविधिर्गुणाश्च

घृतेन मर्दिता तोये समितां मधुसंयुताम्।
मातुलुङ्गत्वचाखण्डसंयुक्तार्द्रकपूरिताम् ॥ १०६॥
विधायापूपकं तस्या गन्धाढ्यं शर्करान्वितम्।
पक्वं सर्पिषि तं सम्यङ्नाम्नाऽयं मधुशीर्षकः॥ १०७॥
मधुशीर्षः सुमधुरो भव्यः पित्तानिलापहः।
सुष्टुवस्तुसुयोगेन हृद्यो रुच्योऽग्निकारकः॥ १०८॥

विशिष्ट मधुशीर्षक

क. **विधि–** समिता (मैदा) मधु मिश्रित को घृत मे मर्दन करके, जल के साथ भलीभाँति मर्दित (मलकर) में निम्बू स्वरस मातुल्यङ्गत्वचा तथा आर्द्रक खण्ड सम्मिलित करें; फिर खण्ड (शर्करा) तथा सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित करते हैं। इसके अपूप (पुआ) बना सकते हैं, तथा घृत मे पकाते हैं (पक्वं सर्पिषि)- इस पदार्थ को 'मधुशीर्षक' (सम्यङ्नाम्नाऽयं मधुशीर्षकः) संज्ञां दी जाती है।

ख. **गुण–** १. सुमधुर २. भव्य (श्रेष्ठ)

३. वातनाशक ४. पित्तशामक
५. सुष्टुवस्तु(युक्त)योगवान् ६. हृद्य
७. सच्य ८. अभिकारक

अथ आपूपनिर्माणविधिर्गुणाश्च

समितां खण्डिताख्येन मेलयित्वा सुमर्दिताम्।
घृते विस्तार्य विपचेत्सुवृत्तो मृद्वपूपकः॥ १०९॥
अपूपः पुष्टिदो बल्यो हृद्यो गुरुतरः स्मृतः।
पित्तानिलहरो वृष्यः सुपक्को रुचिकारकः॥ ११०॥

आपूप निर्माण

क. **विधि**—समिता (मैदा) को खण्ड (शर्करा) में मिश्रित करके, जल में घोलकर (सुमर्दित), तप्त घृत में निक्षेप करते है; जिनको विस्तीरण करके, सुवृत्त (गोलाकार) किया जाता है- इस रीति से मृदु (मुलायम) आपूप (पुआ) बन जाता है।

ख. **गुण**—
१. पुष्टिदा २. वृष्य
३. हृदय ४. गुरुतर
५. गुरुतर ६. पित्तशामक
७. वातनाशक ८. बल्य
९. सुपक्व रुचिकारक

अथ दधिवटिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

शालिपिष्टं युतं दध्ना मर्दयित्वा घृते पचेत्।
वेष्टयेत्पक्कखण्डेन सुवृत्तं दध्यपूपकम्॥ १११॥
दध्यपूपो गुरुर्वृष्यो बृंहणोऽनिलपित्तहा।
हृद्योऽग्निजनकश्चैव विशेषाद्रुचिकारकः॥ ११२॥

दध्यपूप

क. शालिपिष्ट (जड़हन धान के चावलों को पीसकर तैयार पीठी-पिष्टी) को मर्दित कर, गोलाकार घृत में पाक करते हं, तथा पक्व खण्ड (शक्कर की चाशनी) में प्रद्विपण करते हैं। (वेष्टयेत् पक्व खण्डेन)। इससे सुवृत्त (गोलाकार) पूप (पुआ) का निर्माण सम्पन्न हो जाता है।

ख. **गुण**—
१. गुरु २. वृष्य
३. वातनाशक ४. पित्तशामक
५. हृद्य ६. अग्निजनक
७. विशेषरूपेण रुचिकारक

अथ तरद्वटिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

घृतेन मर्दिता दध्ना कणिकां फेणयेत्ततः।
विधाय वटिकास्तस्या घृते मन्दाग्निना पचेत्॥ ११३॥
प्रलिप्ताः खण्डपाकेन कर्पूरेण विमिश्रयेत्।
ततः एताः समरिचास्तरद्वट्य इति स्मृताः॥ ११४॥
बल्याः पुष्टिकरा हृद्या वृष्याः पित्तानिलापहाः।
सुस्निग्धाः कफदाः शीघ्रं किञ्चित्सन्धानकृद्धिमाः॥ ११५॥

तरद्विका—तरुद्वटी

क. **विधि**— कणिका (मैदा) को घृत के साथ मर्दन करके, दही (दधि) के साथ फेणते (फैट लेते हैं, तथा मरिचचूर्ण का मिश्रण कर देतो है। इसकी वटिका बनाकर मन्दाग्नि पर घृत में पाक करते हैं, फिर खण्डपाक (चाशनी) से प्रलिप्त कर देते हैं। तथा कर्पूर मिश्रण द्वारा सुगन्धित कर देते है। इस पदार्थ को 'तरहटी' नाम दिया जाता है।

ख. **गुण**—
१. बल्य २. पुष्टिकरा
३. हृद्या ४. शुक्रला
५. वृष्या ६. पित्तशामक
७. अनिलावह ८. स्निग्ध
९. कफदा १०. शीतल

अथ बदरचूर्णपूरिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

घृतमिश्रकणीकायां मेलितं पञ्चमांशकम्।
बदरत्वग्भवं चूर्णं जलेनालोड्य पीडयेत्॥ ११६॥
पूरिका च घृते पक्का खण्डपाकविलेहिता।
पूरिका बदरोन्मिश्रा स्निग्धा पित्तहरा हिमा॥ ११७॥

मधुरा तर्षवातघ्नी सरा छर्दिविनाशिनी।
एवं प्रियालखर्जूरशर्करानालिकेरकैः।
द्राक्षया च सुपुर्यास्तु पूरिकाःपूर्ववत्पचेत्॥ ११८॥

बदरचूर्णपूरिका

क. **विधि–** कणिका (मैदा) में घृत मिश्रित कर, बदर फल चूर्ण (पंचमाश) सम्मिलित करके (जल में घोलकर) मर्दन कर लेते हैं (जलेनालोड्य पीडयेत्), फिर इस द्रव्य की पूरिका (पूड़ी) बनाकर, घृत में पकाते हैं, जिससे खजुपाक (चाशनी) से प्रलिप्त कर लेते हैं (विलेहिता)। इस व्यंजन को 'बदरचूर्ण पूरिका' कहा जाता है।

ख. **गुण–** १. स्निग्ध २. पित्तहरा
३. हिम (शीतल) ४. मधुर
५. तर्पण ६. वातघ्नी
७. सरा ८. छर्दिविनाशिनी

ग. **वैशिष्ट्–** इस रीति से प्रियाल, खूर्जर, शर्करा, नालिकेर, द्राक्षा को मिलाकर, पूरिका (पूरी) का निर्माण किया जाता है।

अथ चणकपूरिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

त्रिभागं चाणकं चूर्णं गोधूमस्यैकभागकम्।
यवानीहिङ्गुलवणैः सार्धं तैले विपाचिता॥ ११९॥
कटुके कफवातघ्नी रुच्या वह्निप्रबोधिनी।

चणक पूरिका

क. **विधि–** चणक (चना) का चूर्ण (त्रिभाग चाणक चूर्ण), गोधूम चूर्ण (एक भाग)– इनको समिश्रित करके, यवानी-हिंग-लवण के साथ जल में सावते (मर्दन) करते यहाँ लेते हैं)। इस द्रव्य से पूरिका (पुड़ी) के आकार को बनाकर, तैल में विपाचन (पकाते हैं) करते है। इस रीति से 'चणक पूरिका' का निर्माण हो जाता है।

ख. **गुण–** १. कटु(क) २. कफवाघ्नी
३. रुच्या ४. बह्निबोधनी

अथ धारापूपकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

घृतोन्मिश्रा कणीकाया दुग्धेनालडिता तुसा।
धाराख्यापूपकं स्वाज्ये पक्वं खण्डेन योजयेत्॥ १२०॥
आपूपकं सुमधुरं वृष्यं पित्तहरं परम्।
सुस्निग्धं रोचनं हृद्यमत्यर्थं वातनाशनम्॥ १२१॥

धारापूपक

क. **विधि–** कणिका (मैदा) घृत मिश्रित– को दुग्ध में शर्करा के साथ आलोहित (घोलकर) घृत में पाक करते हैं। इस व्यंजन को धारापूपक (धारपुआ) कहते हैं।

ख. **गुण–** १. सुमधुद २. वृष्य
३. पित्तहर (परम्) ४. सुस्निग्ध
५. रोचन ६. हृद्य
७. वातनाशन (अत्यर्थ)

अथ जलेबी-कुण्डलिकादीनांनिर्माणविधिर्गुणाश्च

द्विप्रस्था शुद्धसमिता प्रस्थं गोधूमगालितम्।
विमर्द्य पयसा स्थाप्यं व्रजेद्यावत्तदम्लताम्॥ १२२॥
सच्छिद्रे नालिकेरस्य पात्रे निक्षिप्य निर्मले।
परिभ्राम्य परिभ्राम्य घृते तप्ते विपाचयेत्॥ १२३॥
कर्पूरवासितां सूपविधिज्ञैर्नृपवल्लभाम्।
सुपक्वां कङ्कणाकारां सितालेहे विनिक्षिपेत्॥ १२४॥
सा तु कुण्डलिका नाम जलेबीति प्रकीर्तिता।
धातुपुष्टिकरा वृष्या हृद्या चेन्द्रियतर्पणी॥ १२५॥

कुण्डलिका

अ. शुद्ध समिता (शुद्ध मैदा) दो प्रस्थ (दो किलो), गोधूम चूर्ण गलित एक प्रस्थ (एक किलो)– इन द्रव्य द्रय को दुग्ध के साथ घोल+मलकर, जबतक अम्लता उत्पन्न न हो जाये (विमर्द्य पयसा स्थाप्यं व्रजेद्याक्तदम्ललम्)। इस सम्पूर्ण सान्द्र घोल की स्वच्छ नारिकेल पात्र (नारियलफल कवच)– छिद्र युक्त– मे परिपूर्ण कर (छिद्र से) बार-बार घुमा-घुमा (परिभ्राम्य परिभ्राम्य घृते तप्ते विपाचयेत्) कर घृत मे प्रक्षिप्त करते जाये (गोल कुण्डलिका जैसी रचना बनाते हुए) तथा

पूर्णतया (या उपयुक्त) पाक ही जाने पर बाहर निष्कासित कर लिया जाता है।

आ. इस कुण्डलाकार द्रव्य (उपरोक्त) को सितालेह या खण्डपाक (गाढ़ी शक्कर की चाशनी या पतले लेह) विनिक्षेपण कर देते हैं। फिर यथासमय (अनपाल के पश्चात्) बाहर निकाल लेते है।

इस कार्य में पाचक को चाहिए कि वृपयोग्य कर्पूर से सुगन्धित कंकण (कँगल) के समान परिपक्व द्रव्य को शर्करा लेह-खण्डपाक में प्लुत (प्रक्षेपित) करते है। इस व्यंजन को 'कुण्डलिका' तथा (लोक भाषा में) जलेबी कहा जाता है।

स. **गुण—** १. धातु पुष्टिकरा २. वृष्या ३. हृद्या ४. इन्द्रियपतर्पणी

अथ बर्वरनिर्माणविधिर्गुणाश्च

जलेनालोडितं शालिपिष्टकं खण्डमिश्रितम्।
धारापूपकवत्पाच्यं प्रोक्तं तद्बर्बराख्यकम्॥ १२६॥
बर्बरं बलकृत्सद्यः श्रेष्ठं पित्तानिलापहम्।
रोचनं कफकृच्छीतं हृद्यं हृल्लासनाशनम्॥ १२७॥

बर्वरसख्य पूरक

क. **विधि—** शालि तण्डुल (चावल) की पिण्डी (पीठी) मैशर्करा मिश्रित करके, जल के घोलकर, धारापूर्वक के समान घृत में पाक करते है। इसका नामकरण 'बर्वराख्य पूरक' (बर्वरपुआ) किया गया है।

ख. **गुण—** १. सद्यः बलकृत् २. पित्तवातपट्टम् (श्रेष्ठ) ३. रोचन ४. कफकृत् ५. शीत ६. हृद्य

अथ खण्डखर्जूरनिर्माणविधिर्गुणाश्च

दध्नाऽऽलोडितया शालिपिष्टयुक्तकणीकया।
धारायाः युक्तिसंपक्कं पादुकाकृतिदीर्घकम्॥ १२८॥
बहिः खण्डेन लिप्तं च खण्डखर्जूरकं विदुः।
खर्जूरं वातहृद्बल्यं सुस्निग्धं स्वादुशीतलम्॥ १२९॥
पित्तहृद्बृहंणं हृद्यं किञ्चित्कफकरं सरम्।

खण्ड खर्जूर

क. **विधि—**कफ कणिकार (शालि तण्डुल) पिष्टी में गोधूम चूर्ण (शुद्ध-महीन आटा) का मिश्रित कर, दधि के साथ पीसते है (दध्नाऽऽलोहिता), फिर इस द्रव्य से पादुकाकृति बनाकर, पक्व घृत में करते है (धारापूपकवत्), तथा बाह्य रूप से शर्करा खण्ड का आलेपन कर देते हैं- इसको विद्वानों ने 'खण्डखर्जूर' नाम दिया है।

ख. **गुण—** १. वातहृत् २. बल्य ३. सुस्निग्ध ४. स्वादु ५. शीतल ६. पित्तहृत् ७. बृंहण ८. हृद्य ९. किंचित् कफकर १०. सर

अथामृतरसानिर्माणविधिर्गुणाश्च

तृतीयभागखण्डेन मिश्रितं षष्टिपिष्टकम्।
शुभ्रमीषद्दधियुतं मर्दयेद्दृढपाणिना॥ १३०॥
एवं सुमर्दितं कृत्वा स्थापयेद्रजनीमितम्।
ततोऽन्यस्मिन्नहन्येव गतत्वक्तिलचित्रितम्॥ १३१॥
विधायापूपकं त्तैव तविकायां घृते पचेत्।
ततोऽमृतरसा एव वातहृद्बलवर्धना॥ १३२॥
कणिका सर्पिषा युक्ता तोये पिण्डितमर्दिता।

अमृतरसा

क. **विधि—**पिष्ट के तृतीयांश खण्ड (शर्करा) के सम्मिश्रण के बाद, शुभ्र (सफेद) दधि मिलाकर दृढ़पाणि (कठोर हाथों) से मर्दन करके, एक रात्रि तक रखा रहने देते है, अगले दिन निस्तुषतिल मिलाते है, इसका पूप (पुआ) बनाकर टविका (तवा) पर घृत का पाक करते हैं। इस व्यंजन को 'अमृतरसा' कहा जाता है।

ख. **गुण—** १. कटहृत् २. बलवर्धक ३. अरोचक हरा ४. हृद्या ५. सुशीता ६. पित्तहृत् ७. हिम

अथ कर्पूरनालिकातिर्माणविधिर्गुणाश्च

ततः कृता पोलिकेव पीठके चतुरस्त्रिका॥ १३३॥
वेष्टयेत्पक्वखण्डे द्वे पार्श्वाभ्यां चतुरङ्गुले।
ततस्ते नालिके ह्येते चित्रयेदथ पाचयेत्॥ १३४॥
घृतेऽथ तत आकृष्य कर्पूरेण नलीद्वयम्।
पूरितं घृतखण्डाभ्यां कर्पूरी नलिका भवेत्॥ १३५॥

कर्पूरनालिका

कपिका (गेहूँ के चूर्ण) में घृत तथा उचित मात्रा में जल मिलाकर-मर्दन करके पिण्ड बनाते हैं, इस पीठ को चौकोर, सछिद्र (पोली) बनायें, इसमें दोनों पार्श्वों से चार अंगुल पक्व खण्ड का आवेष्टन करते हैं, दोनों नलिकाओं को चित्रित करते हैं तथा घृत में पाक कर लेते हैं, फिर उसे खींचकर (आकृतय) कर्पूर, घृत एवं खण्ड (शर्करा) से पूरण करते हैं। इस व्यंजन को 'कर्पूरनलिका' कहा जाता है॥१३३-१३५॥

अथामृतनालिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

किञ्चित्कणीकया युक्ता नष्टदुग्धमयी च सा।
कृता कर्पूरनालीवत्सैवामृतनली मता॥ १३६॥
कूर्परनालिका बल्या वृष्या पित्तानिलापह।
पुष्टिदारुचिदा स्निग्धा गुर्वी सन्धानकृत्सरा॥ १३७॥

अमृतनालिका

क. **विधि–** कणिका (मैदा) में नष्टदुग्ध (छैना) अल्पमात्रा में मिलाकर, मर्दन करके, 'कर्पूरनलिका' के समान बनाते हैं, इसे घृत में पाक करते है– खण्ड पाक (चाशनी) से आवेष्टन किया जाता है। इस व्यंजन को 'अमृतनलिका' नाम है।

ख. **गुण–**

१. बल्या	२. वृष्या
३. पित्तानिलापहा	४. पुष्टिदा
५. रुचिदा	६. स्निग्धा
७. गुर्वी	८. संधानकृत
९. सरा	

अथ कसारनिर्माणविधिर्गुणाश्च

घृते तप्ते विनिक्षिप्य कणीकां पाचयेन्मनाक्।
ततस्तत्र विनिक्षिप्य खण्डं भागसमं पचेत्॥ १३८॥
ततश्चाकृष्य तत्पात्रे क्षिप्तं सम्यक्सुचिक्कणे।
चतुरस्त्रीकृतं ह्येतद्भवेत्कासारसंज्ञकम्॥ १३९॥
कासारं रुचिरं श्रेष्ठं नातिरूक्षं न पिच्छिलम्।
हृल्लासकफपित्तघ्नं विरूचौरुचिकारकम्॥ १४०॥
पूर्ववन्माषशृङ्गाटकसेरूणां पृथक्पृथक्।
शालूकस्य च कर्तव्यं कासारं खण्डसर्पिषा॥ १४१॥

कासार

क. **विधि–** कणिका (गोधूम चूर्ण) को तप्तघृत में पका (भून) कर, खण्ड (शर्करा) एकभाग (भाग सम) का निक्षेपणकर पाक करते हैं, इसको स्निग्ध पात्र (सुचिक्का) में स्थापित कर दे तथा चौकोर (चतुरस्त्रीकृत) बनायें। इस पदार्थ को कासार (कसार) कहते हैं।

ख. **गुण–**

१. रुधिर	२. श्रेष्ठ
३. अल्परुक्ष	४. अल्पस्निग्ध
५. हृल्लासहर	६. पित्त शामक
७. रुचिर	

ग. **वैशिष्ट्य–** माष, शृंगाटक, कशेरुक एवं शालूक का कासार– खण्ड एवं सर्पि मिलाकर–निर्माण किया जा सकता है।

अथ सेविकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

कणिकावर्तिकाः कृत्वा सुसूक्ष्मा यवमात्रिकाः।
सुशुष्का भक्तवत्पाच्या भोज्या खण्डघृतान्विताः॥ १४२॥
सेदिकेति समाख्याता गुर्वी पित्तानिलापहा।
सन्धानजननी सेव्या श्रावण्यां स्तोकमात्रया॥ १४३॥
पक्वान्नं यदिह ज्ञातं तदुक्तं दशमोत्सवे।
क्षुद्बोधजनकं वस्तु क्विञ्चिदाचक्षतेऽधुना॥ १४४॥

इति श्रीनरवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्माविनिर्मिते क्षेमकुतूहले ग्रन्थे पक्वान्नप्रशंसनो नाम दशमोत्सवः॥१०॥

सेविका

क. **विधि–** गोधूम चूर्ण (कणिका) जल के साथ मर्दित की सूक्ष्म (तनुरमणाकार) वर्ती बनाकर (शुष्क) खण्ड तथा घृत में भूनकर (शर्करा अविष्टित) भक्त (चावल के भात) समान पाक करते हैं। इस व्यंजन को 'सेविका' नाम है, जो भोज्य है।

ख. **गुण–** १. मुर्वी २. पित्तानिलापहा ३. संधानजननी ४. स्तोकपात्रा सेवनीय (श्रवण मास)

उपसंहारात्मक रूपरेखा

वर्तमान उत्सव (दशम प्रकरण) के अन्तर्गत पक्वान्न–व्यंजनों का विषय प्रतिपादित है। इन पक्वान्न-पदार्थों (व्यंजनों) में विशेषतया सुधाजनक (आहार को भोजन हेतु रुचि/ इच्छा जागृत करने हेतु उपयोगी) वस्तुओं (भोज्य पदार्थों-व्यंजनों आदि) के विषय में परिचय दिया (विभिन्न पक्षों का) जाना (आगामी प्रकरण का) प्रतिपाक·विषय होगा।

इति हिन्दी व्याख्या सहित पक्वान्ननिर्माणवर्णन
नामक दशवाँ उत्सव समाप्त॥

●

अथैकादशोत्सवः

(एकादश प्रकरण)

अथ क्षुदबोधकवस्तुनिरूपणम्

तक्रं चिरं क्वथितमर्पितशृङ्गबेरं
बाह्लीकसैन्धवरजोमरिचाल्पचूर्णम्।
एलाभवेन रजसा सरुभीकृतं त-
त्तूर्णं प्रदीपयति शान्ततनूनपाम्॥ १॥

क्षुदबोर्धक(वर्धन) प्रतिपादनम्

शृंगवेर (आर्द्रक) अर्पित तक्र (चिरक्वथित), भृष्ट हिंगु, सैन्धव, मरिच (अल्प चूर्ण) से युक्त तथा एला से सुरभिकृत् तक्र (मट्ठा) पाचकाग्नि को शीघ्र तत्काल (शान्ततनूनपादम्) प्रदीपन करने में सक्षम होता है॥१॥

अजाजीधान्याकैर्मरिचरजनीमेथिककणैः
समं पिष्टं तक्रे क्वथितममलैः सारकफैः।
युतं सिन्धूत्थेन ज्वलितनवबाह्लीकसुरभिः
प्रलेहः संदेहं जनयति सुधायामतिरसः॥ २॥
प्रलेहः पाचनो हृद्यो रुच्यो वह्निप्रदो लघुः।
कफानिलविबन्धघ्नः किञ्चित्पित्तप्रकोपकः॥ ३॥

हरीतकी क्वाथ

क. **विधि–** जीरक, धान्यक, मरिच, हरिद्रा, मेथि का तथा पिप्पली (समभाग) पिष्ट को, अमल हरीतकी फल के क्वाथ-सैन्धव लवण युक्त- को नवीन हिगु से सुरभित किया जाता है। यह अतिरस रूप प्रलेह अमृत को भी संदिग्ध बनाने की सामर्थ्य रखता है (सन्देहं जनयति सुधायागतिरसः)॥२-३॥

अथ नारङ्गक्षुद्बोधकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

नारङ्गकेसरमपाकृतबीजपुञ्जं
योऽश्नाति खण्डमरिचोद्भवचूर्णमिश्रम्।

अन्नं गले विशति तस्य नरस्य तूर्णं
संगृह्यमाण इव राहुजवेन चन्द्रः॥ ४॥
नारङ्गं तु वरं रुच्यं सुगन्धमतिचारुणम्।
वातघ्नं कफदं किञ्चित्पित्तघ्नं विशदं स्मृतम्॥ ५॥

नारङ्गशुद्बोधक(वर्धन) योग

क. **विधि—** बीज रहित नारंग केशर (फल दल), खण्ड तथा मरिच चूर्ण जो व्यक्ति भक्षण करता है, उसके गले (कण्ठ) में अन्न शीघ्र प्रवेश कर जाता है (विशति तल्य नस्य तूर्णम्), जैसे राहु के वेग से चन्द्र स्वयं ग्रहित हो जाता है (संग्रहयमाण इव सहुजवेनचन्द्रः)।

ख. **गुण—** १. पाचकाग्नि तीव्र कारक (सुधाजनन) २. अन्नरुचिकारक (उत्तम)
३. सुगन्धित ४. अरुण (अतिसुन्दर)
५. वातघ्न ६. कफकारक
७. किंचित् पित्तघ्न ८. विशद

अथ जम्बीरभवक्षुद्बोधकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

विभावितं शुभ्रसिताभरीचै
रेलारजोभावनयाऽतिरुच्यम्।
जीवातवे तस्य नरस्य भोक्तु-
र्जम्बीरजं केसरमार्द्रयन्ति॥ ६॥
जम्बीरः पाचनो हृद्यः कफवातहरः परः।
सुरभिर्दीपनो रुच्यो मुखवैशद्यकारकः॥ ७॥

जम्बीर क्षुद्बोधक(वर्धन)योग

क. **विधि—** शुभ्रसिता, मरिच तथा एला चूर्ण से भावित जम्बीर निम्बूक के सर (दल), का भक्षण करने वाले मनुष्य के जीवन हेतु औषध को सरस बनाने वाला हे (जीवातवे तस्य नरस्य भोक्तु)।

ख. **गुण—** १. पाचन २. हृद्य
३. कफवातहर (परम्) ४. सुरभि
५. दीपन ६. रुच्य
७. मुखवैशद्यकारक

अथ बीजपूरकक्षुद्बोधकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

सैन्धवार्द्रकसंयुक्तं बीजपूरकमत्ति यः।
शाकिनीभिरिवाकृष्टं विशत्युदरमोदनम्॥ ८॥
केसरं मातुलुङ्गस्य लघु श्लेष्मानिलापहम्।
रोचनं दीपनं हृद्यं गुल्मशूलार्शसां जयेत्॥ ९॥

बीजपूरक क्षुद्वर्धन(बोधक)योग

क. **विधि—**बीजपूर निम्बूक का सेवन, सैंधव तथा आर्द्रक मिश्रित, का सेवन करने से, उदर में शाकिमियों द्वारा आकृष्ट (खींचे जाने के समान), ओदन स्वयं उदर में प्रवेश कर जाता है (विशत्युदरमोदनम्)– इस तरह यह प्रयोग पाचकाग्नि तथा क्षुधा को तीव्रता मदान करता है।

ख. **गुण—** १. लघु २. श्लेष्मापिलापह
३. रोचन ४. दीपन
५. हृद्य ६. गुल्म
७. शूल ८. अर्श नाशक (६-८)

अथ बीजपूरकस्य षड्तुभक्षणविधिनिरूपणम्

सिन्धूत्थेन घनागमे च सितया काले शरत्सातपे
हेमन्ते लवणार्द्रहिङ्गुमरिचैः सिद्धार्थतैलान्वितैः।
एतैस्तैः शिशिरे मधावपि तथा ग्रीष्मे गुडेनान्यथा
सर्वान् दोषचयान् करोति नितरां द्राग्बीजपूरः सदा॥ १०॥

बीजपूरक-विभिन्न ऋतु सेवन

बीजपूरक निम्बूक (बिजौरानीबू) का षड्ऋतु भक्षण विधान का निर्देश (निम्नांकित-रूपेण) किया गया है–परन्तु इसके विपरीत सेवन समस्त दोष प्रकोपक होगा–

१. वर्षाकाल : सैन्धव लवण
२. शरतकाल (आतप सहित) : सिता (शर्करा)
३. हेमन्त काल : सर्वपतैल युक्त लवण–आर्द्रक के हिंगु–मरिच
४. शिशिर
५. वसन्तकाल : समस्त द्रव्य
६. ग्रीष्मकाल : गुड़

अथ तिलकल्कसंस्कृतनिम्बूकस्य भक्षणगुणाः

तिलकल्कं सनिम्बूकसैन्धवार्द्रकमत्ति यः।
तस्यामितम्पचः पुंसो हेमन्तेऽग्निः प्रजायते॥ ११॥
तिलनिम्ब्वादिसंयुक्तः कल्को रुच्यो बलप्रदः।
वह्निसंजननः प्रोक्तो विशेषेणानिलापहः॥ १२॥

तिल कल्क युक्त निम्बूक योग

तिल (बीज) कल्क में निम्बूक, सैंधव तथा आर्द्रक को मिलाकर, सेवन करने से, उस भोक्ता (व्यक्ति) की अत्यधिक पाचक जाठराग्नि का हेमन्त ऋतु में अत्यधिक प्रदीपन हो जाता हैं।

यह योग रुच्य, बल्य, वह्नि संजनन, विशेषरूपेण अनिलापह (वातनाशक) होता है।

अथ सट्टकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

लवङ्गव्योषखण्डैस्तु दधि निर्मथ्य गालितम्।
दाडिममीबीजसंयुक्तं चन्द्रचूर्णांवचूर्णितम्॥ १३॥
सट्टकं तु प्रमोदाख्यं नलादिभिरुदाहृतम्।
हृद्यं सुगन्धिमधुरं स्निग्धं वातहरं लघु ॥१४॥
पित्तघ्नं तृप्तिदं बल्यं सुरुच्यं सट्टकं स्मृतम्।

सट्टक

क. **विधि–** लवंग, व्योष (त्रिकटु) तथा खण्ड (शर्करा) के साथ दधि की निर्मथ्य (मथकर) करते हैं, दाडिम बीज मिश्रित करके सुगन्धित बना लेते हैं। इस व्यंजन 'सट्टक' कहा जाता है। यह भोज्य द्रव्य मन को प्रमोदकारी (प्रसन्नतादायक) से, जिसका मल आदि पाकशास्त्र विशेषज्ञों में उल्लेख किया है।

ख. **गुण–**

१. हृद्य २. सुगन्धि
३. मधुर ४. स्निग्ध
५. वातहर ६. लघु
७. पित्तघन ८. हरितदायक
९. बल्य १०. सुरुच्य

अथ विष्यन्दननिर्माणविधिर्गुणाश्च

दधिक्षीरे समे पक्त्वा त्वर्धभागावशेषिते॥ १५॥
अष्टमांशान् क्षिपेत्तत्र तन्दुलान्निस्त्वचांस्तिलान्।
प्रियालपनसाब्जानां मज्ञां मात्रासमां क्षिपेत्॥ १६॥
क्षीरादर्धं घृतं चैव शर्करा च तथा न्यसेत्।
सिद्धे त्रिकटुकोपेतः कूर्परेणाधिवासितः॥ १७॥
एष विष्यन्दनो नाम देवलोकेऽपि दुर्लभः।
यस्मिन् पक्वेऽपि हि घृतं स्पन्दते सर्वतोमुखम्॥ १८॥
तस्मात्सूपविधानज्ञैर्विष्यन्दन इति स्मृतिः।
विष्यन्दो बृंहणो हृद्यः पित्तानिलहरो गुरुः।
रुच्यो बहुतरं स्वादुर्बलशुक्रकरो हि सः॥ १९॥

विष्यन्दन

क. **विधि–** समभाग दुग्ध दधि अर्धभागावशिष्ट पाक करें, इसमें तण्डुल (चावल) तथा निस्तुष तिल डालते हैं, फिर प्रियाल, पनस तथा अब्ज (कमलगट्टा) मजना-समान के साथ, दुग्ध से अर्धभाग घृत तथा सिता मिलाये। इसको त्रिकुट तथा कर्पूर से सुगन्धित बना लेते हैं। इस व्यंजन को 'विष्यन्दन' कहा जाता है। यह देवलोक में भी दुर्लभ है, जिसके पाकोपरान्त चारो ओर से घृत (घृत स्पन्दते सर्वतोमुखम्)। का स्पन्दन (बहता होता है, इसलिए पाकशास्त्री (सूपविधानज्ञ) इसको 'विष्यन्दन' नाम देते हैं।

ख. **गुण–**

१. बृंहण २. हृद्य
३. पित्तामिलहार ४. गुरु
५. रुच्य ६. बहुतर
७. स्वादु ८. बलशुक्रकर

अथाम्रपल्लवमुकुलयोः संदीपनप्रकारनिर्माणविधिर्गुणाश्च

आम्रातकस्यनवताम्ररुचः प्रवालाः।
खण्डीकृता नवताम्ररुचः प्रवालाः।
बाह्लीकधूपनजुषो घृतदुग्धसिद्धाः।
संदीपयन्ति पवनस्य सखायमेते॥ २०॥

आम्रपल्लव-मुकुल योग

आम्रपल्लव– आम्र के प्रवाल (ताम्रवर्ण समान नव पल्लव) के खण्डों में लवण मिश्रित (तथा मर्दित) कर पिण्डीकृत रूप में, घृत तथा (हिंगु-धूप से सुवासितं-घृत तथा दुग्ध मं पाक कर लेते हैं। यह व्यंजन पवन सखा (वायु का मित्र) अग्नि का प्रदीपन करता है।

मुकुलः सहकारशाखिनः
शतखण्डीकृतसैन्धवान्तिः।
दधिमन्थमरीचसंस्कृत-
श्चिरजामरुचिं छिनत्ति हि॥ २१॥
कफपित्तहरौ हृद्यौ मुखवैरस्यनाशनौ।
बह्निस्त्रंजननौ रुच्यौ चूतजौ पुष्पपल्लवौ॥ २२॥

क. **विधि–मुकुल–** आम्र मुकल (आम के बौर) को शत खण्डीकृत् रूप में, लवण तथा दधिमन्य, मरिचचूर्णसहित, पाक करते हैं। यह व्यंजन चिरकालीन अरुचि को नष्ट कर देता है।

ख. **गुण–** चूतज (आम्रजन्य) पल्लव-मुकुल

१. कफपित्तहर २. हृद्य ३. मुखवैरस्यनाशन
४. बह्निसंजनन ५. रुच्य

अथ मृणालस्य क्षुद्बोधनिर्माणविधिर्गुणाश्च

ब्रिशाङ्कुराश्चन्द्रकलानुकारिणो
विभाविताः सैन्धवनिम्बुकाभ्याम्।
विकीर्य खण्डीकृतशृङ्गबेर-
जलेऽपि वह्निं लघु दीपयन्ति॥ २३॥
मृणालं शीतलं हृद्यं कषायं कफनाशनम्।
रक्तपित्तहरं स्वादु दुर्जरं दाहनाशनम्॥ २४॥

मृणालस्य योग

क. **विधि–**चन्द्र किरण समान कमल के मृणाल तन्तु में सैन्धन तथा निम्बक स्वरस से मात्रित, आर्द्रक खण्ड स्वरस सम्मिलित कर सेवन कराना चाहिए। इससे मन्द पाचकाग्नि तीव्र (प्रदीप्त) हो जाती है।

ख. **गुण–**

१. शीतल २. हृद्य
३. कषाय ४. कफनाशन
५. रक्तपित्तहर ६. स्वदु
७. दुर्जरा ८. दाहनशन

अथ शिग्रुमूलजक्षुदबोधकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

धौतं कुञ्जरदन्तदीप्तिसदृशं सिन्धूत्थतैलासुरी
पीताभिः क्रमितोत्तरोत्तररसं मूलं नवं शिग्रुजम्।
तस्याहो वन्दनान्तरे निविशते श्रीचन्द्रचूडप्रिया-
पादाम्भोरूहरेणुरञ्जितशिरा यः पूर्वकाले पुमान्॥ २५॥

शिग्रुमूल योग

क. **विधि–** प्रक्षालित, स्वच्छ, हस्तिदत्त समान श्वेतनवीन शिग्रु (सहिजन) मूल, सैंधव, सर्षप तैल, राजिका, हरिद्रा (के साथ क्रमशः उत्तरोत्तर) मिश्रणकर भोज्य पदार्थ का निर्माण कर लेते हैं।

ख. **वैशिष्ट्य–** वह आहार-पदार्थ, उस व्यक्ति के गुण में प्रवेश करता है, जो पूर्व जन्य में भगवान शंकर तथा उनकी पत्नी उमा के चरण-कमल धूलि को अपने सिर पर धारण (रंजित) करता है।

शिग्रुमूलं तु वातघ्नं श्रेष्ठर्शोविनाशनम्।
शमनं स्नायुरोगस्य पित्तकृत्कफनाशनम्॥ २६॥

गुण

१. वातघ्न २. श्रेष्ठ अर्श विनाशनम् ३. स्नायुरोग शमन
४. पित्तकारक ५. कफघ्न

अथामलकफलस्य क्षुद्बोधकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

स्निग्धं धात्रीफलं यज्जवलदनलशिखासन्निभं स्निग्धपात्रे
क्षिप्तं प्रभ्रष्टहिङ्गुणकरजनिरजस्तैलसिन्धूत्थव्योषैः।
संश्लिष्टं जातपाकं कतिपयदिवसैरुल्लसत्सौरभाढ्य
तस्य स्वादानुवादं कथितुमपि वरो नेश्वरः कस्तदन्यः॥ २७॥

आमलक फल योग

क. **विधि–** ज्वलन्त अग्नि शिला के समान धात्री फल (आमलक) को स्निग्ध पात्र में छोड़कर भृष्ट हिंगु, हरिद्राचूर्ण, सर्षप तैल, सैन्धव त्रिकटु (व्योष) का चूर्ण सम्मिलित करते हैं। कुछ दिनों में (सश्लिष्ट जातपाकम्) सुगन्धित (सौरभाढ्य) फल प्रस्तुत हो जाते हैं।

ख. **वैशिष्ट्य–** इस प्रकार के आमलक फल (धात्री) के स्वाद (स्वादानुवाद) ईश्वर भी करने में समर्थ नहीं हो पाते (वरी नेश्वर: कस्तदन्य:), तब अन्य लोगों का नाश में नहीं होगा।

हन्ति पित्तं तु माधुर्यात् कफं तिक्तकषायत:।
वायुमम्लप्रभावत्वाद्धात्री दोषत्रयापहा॥ २८॥

ग. **गुण–** १. पित्तनाशक (माधुर्यात्) २. कफघ्न (सिक्तकषायता)
३. वातघ्न (अम्लप्रभावात्) ४. त्रिदोषहार

अग्निसंजननं द्रव्यमुक्तमेकादशोत्सवे।
यदग्निपोषकं वस्तु क्षीरतक्रमथोच्यते॥ २९॥

इति श्रीनरवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्माविनिर्मिते क्षेमकुतूहले ग्रन्थे
क्षुद्बोधकवस्तुप्रशंसनो नामैकादशोत्सव:॥११॥

उपसंहारात्मक रूपरेखा

एकादश उत्सव में आतिसंजनन द्रव्यों (पदार्थों-योगी–व्यजनों आदि) का वर्णन किया गया है। आगामी द्वादशोत्सव में अग्नि पोषक वस्तुओं तथा क्षीर एवं तक्रनिर्मित द्रव्यों का प्रतिपादन किया जायेगा।

इति हिन्दी व्याख्या सहित क्षेमकुतूहल का क्षुद्बोधक पदार्थ-
वर्णन नामक ग्यारहवाँ उत्सव समाप्त॥

●

अथै द्वादशोत्सव:

(द्वादश प्रकरण)

अथ गोरसपानकादिकथनम्

अथ चन्द्रप्रभा- क्षीरिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

शुभेऽर्धक्वथिते दुग्धे घृताक्तान् तन्दुलान्न्यसेत्।
संसिद्धा मधुसंसिक्ता क्षीरी चन्द्रप्रभा भवेत्॥ १॥
कुङ्कुमं च विनिक्षिप्य पचेत्पीतत्वहेतुना।
चन्द्रप्रभाकृति: क्षीरी रक्तपित्तविनाशिनी॥ २॥
विष्टम्भजननी बल्या धातुपुष्टिप्रदायिनी।

गोरस (दुग्ध) विभिन्न प्रकार तथा दुग्धमिर्नित व्यंजनादि

चन्द्रप्रभा-सीरिका

क. **विधि–** अर्धपक्व दुग्ध में घृत तलित तन्दुल का पाक करते हैं, फिर मधु का सम्मिश्रण करे। यह चक्रवत् प्रभायुक्त क्षीरिका (खीर) बन जाती है। (संसिद्ध)। यदि इस (क्षीरिका) को पीत वर्ण की प्रस्तुह करना है। तब कुङ्कुम (केशर) मिश्रित कर पाक करते हैं।

ख. **गुण–**
(चन्द्रप्रभाकृति क्षीरी) १. रक्तपित्त विनशिनी २. विष्टभव-जननी
३. बल्य ४. धातुपुष्टिदायक

अथ राजपायसनिर्माणविधिर्गुणाश्च

निर्नीरपाचितपय: प्रहिताष्टभागं
श्यामाकतन्दुलनवं निभृतान्तरोष्मा।
तत्पायसं सरसमावसथं सुधाया:
को लेढि भूपतिमृते घृतखण्डसाकम्॥ ३॥
पायसं दुर्जरं बल्यं धातुपुष्टिविवर्धनम्।
विष्टम्भजननं हन्ति रक्तपित्ताग्निमारुतान्॥ ४॥

राजपायस

क. **विधि–** मिनोंर (जलहित) पाय (दुग्ध) में श्यामाक नवीन तनुल (साँवा के चावल)– अष्टम भाग प्रक्षिपण करके, निभृतन्तरीसना (अन्दर की गर्मी) से पाक करके, भृत एवं खण्ड (शर्करा) मिश्रित करें। इस रीति से पक्व (सिद्ध) सरस पायस अमृत सदृश होता है, जो राजा (भूपति) को छोड़कर कौन सेवन कर सकता है (कोलेटि)।

ख. **गुण–**

१. दुर्जर	२. बल्य
३. धातुपुष्टि निवधर्म	४. विष्टम्भ जनन
५. रक्तपित्त	६. अग्निमांद्य
७. वातरोग (नाशक–५-७)	

अथ नारङ्गक्षीरिणीनिर्माणविधिर्गुणाश्च

क्षिप्त्वा नारङ्गमज्ञां वै पचेत्सर्पिषि तापिते।
तत्र खण्डं च निक्षिप्य पक्वं मत्वाऽवतारयेत्॥ ५॥
शीतीभूते विनिक्षिप्य मात्रेवार्धश्रृतं पयः।
नारङ्गक्षीरिणी चैषा सुगन्धसुरभीकृता॥ ६॥

नारङ्गक्षीरिणी

१. नारङ्ग मज्जा को तप्त घृत को पका करके, खण्ड (शर्करा) का मिश्रण करे, तथा पकने पर अग्नि से पृथक करते हैं। शीतभूत (ठंडे होने पर) दुग्ध अर्धपक्व) को मात्रापूर्वक लेकर, सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित करते हैं। इस व्यंजन को 'नारंगक्षीरिणी' कहा जाता है।

यह विष्टम्भिवी, वात-पित्तहर तथा गुरु पाचिका होती है।।५-६।।

अथ नालिकेरक्षीरिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

विष्टम्भिनी हरेद्वातं पित्तं च गुरुपाचिका।
नालिकेरं पयः स्विन्नं खण्डितं सिक्थकाकृतिः॥ ७॥
मेलयेच्छर्करायुक्ते क्षीरे क्वथितगालिते।
धूपिताऽगुरुणा क्षीरीनालिकेरादिजा भवेत्॥ ८॥
नालिकेरोद्भवा क्षीरी स्निग्धा शीताऽतिपुष्टिदा।
गुर्वी सुमधुरा वृष्या रुच्या पित्तानिलापहा॥ ९॥

एवं कूष्माण्डमज्जदेस्तथा वंशाङ्कुरादपि।
कदलीनां फलान्मूलात् कर्तव्या क्षीरिका बुधैः॥ १०॥

नालिकेर क्षीरिका

क. **विधि–** नालिकेर (नारियल) सिक्थ (मोम) के समान को खण्ड करके, जल पक्व करके, (क्वलित कर) सान्द्र (गाढा) दुग्ध-शर्करायुक्त-दुग्ध में प्रक्षेपण करके तथा सुगन्धित कर लेते है। इस व्यंजन को 'नालिकेरक्षीरिणी' कहा जाता है।

ख. **गुण–**

१. स्निग्ध	२. शीतल
३. अतिपुष्टिकारक	४. गुरु
५. मधुर	६. वीर्यवर्धक
७. रुच्य	८. पित्त-वातनाशक

ग. **अन्य क्षीरिका व्यंजन–** कूष्माण्ड आदि फलों की मज्जा, वंशांकुर कदली के मूल एवं फल से क्षीरिका का निर्माण किया जा सकता है।।७-१०।।

अथ दधिवष्कयिण्याः निर्माणविधिर्गुणाश्च

बहुब्रध्नास्तु गोः क्षीरं महिषं वा विपाचितम्।
सुशीतं स्थापितं पात्रे नवीने तक्रसंस्कृतम्॥ ११॥
शङ्खानुकारि तच्छुभ्रं चन्द्रवत्सरं दधि।
इष्टं तन्मकराधारैः?स्फोटितं परिवेषितम्॥ १२॥

दधि निर्माण

दधिवष्कयिण्या

गो-मल (अधिक व्यधि की प्रसका/प्रसूता) अथवा मासिव (भैंस) के क्षीर (दुग्ध) पक्व करके शीतल करें, फिर तक्र संस्कृत (मट्ठे का अंश डालकर या जावन देकर) नवीन पात्र में स्थापित करते हैं। इसरीति से (परिणामः) शंखानुकारि-शुभ्र चन्द्रवत्सर (चन्द्रमा सृदश खेत वर्णीय) दधि (दही) का निर्माण हो जायेगा।

यह दधि मकराधारों द्वारा स्फोटित एवं परिवेथित दधि उत्तमर माना गया है– इस रूप का दधि श्रेष्ठ वाजीकरण गुण सम्पन्न लेता है।।११-१२।।

एकं शशाङ्कधवलं दधिशुक्लनीरं
संक्षिप्तसैन्धवयुतं सह शृङ्गवेरम्।
प्रभृष्टजीरसुरभीकृमस्य योगा-
दुद्दीपितो भवति जाठरजातवेदाः॥ १३॥

जठरजातवेदा दधि योग

शशांक धवल दधि शुक्ल नीर (चन्द्रमा सदृशा श्वेत दधि जलयुक्त), सैंधव-आर्द्रक प्रभृष्ट जीरक (भुना जीरा) से सुगन्धित पानक के समान निर्माण (सेवनयोग्य) करते हैं। इससे नष्टप्राय: पाचकाग्नि पुन: प्रदीप्त हो जाती है॥१३॥

श्रृतक्षीराच्च यज्जातं गुणवद्दधि तत्स्मृतम्।
वातपित्तहरं रुच्यं धात्वग्निबलर्धनम्।।१४।।

श्रृतक्षीरज दधि

१. श्रृतक्षीर (दुग्ध को पूर्णतया पका कर) से बना दधि (दही) गुणवान् (गुणवद्दधि) माना गया है।

२. इस कोटिका दधि इन गुणों से युक्त है—

१. वातहर	२. पित्तशामक	३. रुच्य रोचक (रुचिजनन)
४. धातुवर्धक	५. अग्नि वर्धक	६. बल्य

अथ गव्यस्य गुणनिरूपणम्

गव्यं दध्युत्तमं बल्यं स्वाद पाके रुचिप्रदम्।
पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टिकृद्दोषनाशनम्॥ १५॥

गव्यदधि

गाय के दुग्ध से बना (जमाया) दधि उत्तम होता है (गव्यं दध्युत्तमं), जिसके गुण जिसमें विविध गुण होते हैं—

१. बल्य	२. स्वादु	३. मधुरपाकी
४. रुचिप्रद	५. पवित्र	६. दीपन
७. हृद्य	८. पुष्टिकृत्	९. दोषनाश (त्रिदोषहर)

अथ माहिषस्यगुणनिरूपणम्

माहिषं मधुरं पाके वृष्यं पित्तानिलापहम्।
बलमेदःकरं स्निग्धं सुशीतं कफकृद्वरम्॥ १६॥

माहिष दधि

माहिष दधि (भैंस का दही) विविध गुण युक्त है–

१. मधुरपाक	२. वृष्य	३. पित्तशामक
४. अनिलापह	५. बल्य	६. मेदाकर
७. स्निग्ध	८. सुशीत	९. कफकृत्

अथाजस्य गुणनिरूपणम्

दध्याजं कफपित्तघ्नं लघु वातक्षयापहम्।
दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्नेश्च दीपनम्॥ १७॥

अजाज दधि

अजा जन्य दुग्धोत्पादित दधि (बकरी के दूध का दही)– दध्याज इस तरह गुणवान् होता है–

१. कफघ्न	२. पित्तशामक	३. लघु
४. वातजरोग	५. क्षय	६. दुर्नाम (अर्श)
७. श्वासवृद्धि	८. कास	९. दीपन

अथ दध्न: सामान्यसेवनविधिर्गुणाश्च

दधि नक्तं न सेवेत सेव्यं चैद्वै ससूपकम्।
सक्षौद्रं शर्करोन्मिश्रं सेवेतामलकैर्युतम्॥ १८॥
शरद्वसन्तयोर्वैद्यैर्निन्दितं प्रायशो दधि।
प्रावृड्शिशिरहेमन्ते संसेव्यं दधि पण्डितैः॥ १९॥

दध्न सामान्य गुण ऋत्वानुसार सेवन

दधि (दही) का समय (काल) के अनुसार (ऋतु आधारित) सेवन करने का विधान प्रस्तुत किया गया है–

१. रात्रि को दही नहीं खाना चाहिए (दधि नक्तं स सेवेत्)।

२. दधि का सेवन (यदि करना है-सं. १) सूपक (दाल के साथ मिलाकर) मिश्रित भक्षण कर सकते है।

३. दधि को मधु, शर्करा तथा आमलकी के साथ सेवन करते हैं। (अतिरिक्त प्रयोग)।

४. शरद तथा वसन्त ऋतुओं में दधि का सेवन निषिद्ध है (प्राय:)।

५. वर्षा, शिशिर तथा हेमन्त ऋतुओं में दधिका सेवन पण्डितों के अनुसार उपयुक्त है (संसेव्य दधि पण्डितै:)।

शाल्योदनेन संयुक्तं सततं माहिषं दधि।
गोष्ठगोपाङ्गनादत्तं प्रत्यहं स्मरणं हरे:॥२०॥

शाल्योदन

१. शालिधान्य (जड़हन चावल) का ओदन (भक्त-भात) के साथ गोष्ट गोपांगना (गऊशाला की गोपियों) द्वारा प्रदत्त माहिष दुग्ध का निरन्तर सेवन उपयुक्त है– तथा प्रतिदिन-सदैव हरिस्मरण करना प्रशस्त-मंगलदायक एवं श्रेयस्कर है (प्रत्यंह स्मरणं हरे:)।

बल्यं दध्योदनं वातपित्तहृत्पुष्टिकारकम्।
सुरुच्यं ग्राहिकं हृद्यं स्थूलत्वमतिकारकम्॥२१॥

२. **दध्योदन गुण–**

१. बल्य	२. वातघ्न
३. पित्तहृत्	४. पुष्टिकारक
५. सुरुच्य	६. ग्राही
७. हृद्य	८. स्थूलमतिकारकम्

अथ शर्करादिसहितदधिगुणा:

सर्शकरं दधि श्रेष्ठं तृष्णापित्तास्त्रदाहजित्।
सगुडं वातनुद्वृष्यं बृंहणं कफदं गुरु॥२२॥

सुमधुर दधि

सशर्कर दधि (शर्करा मिश्रित दही उत्तम) तृषा, रक्तपित्त एवं दाहशामक है। बृंहण एवं गुरु होता है।।२२।।

अथर्तुविशेष दघ्न: सेवनविधिनिषेधश्च

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते।
शरद्वसन्तीग्रीष्मेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम्॥२३॥

ऋत्वनुसारेण दधि प्रयोग

सेवन प्रशस्त	**सेवन निषिद्ध (प्राय:)**
१. हेमन्त ऋतु	१. शरद ऋतु
२. वर्षा ऋतु	२. वसन्त ऋतु
	३. ग्रीष्म ऋतु

अथ घोल-मठादिनिर्माणविधिर्गुणाश्च

मस्तुना रहितं गाल्यं दधि शुभ्रतरे पटे।
जीरसैन्धवसंमिश्रं घोलं घनतरं स्मृतम्॥२४॥

घोल

घोल (मठा-मट्ठा) निर्माण की विधि इस प्रकार है– मस्तु (छाली) रहित दधि को श्वेतवस्त्र (शुभ्रतरे पटे) में रखकर छानते हैं (मस्तुना रहित गाल्यम्); तथा भृष्ट जीरक (भुना जीरा) तथा सैन्धव लवण का सामिश्रण करते हैं– इससे घनतर घोल (गाढ़ा घोल) तैयार हो जायेगा।।२४।।

जीरसैन्धसंयुक्तं घोलं वातस्य नाशनम्।
अतिसारे च मन्दाग्नौ हितं रुच्यं बलप्रदम्॥२५॥

घोल के गुण इस प्रकार हैं–

जीरक तथा सैन्धव लवण युक्त दधि घोल वातनाशक, अतिस्वर एवं अतिसार नाशक तथा मन्दानि में व्याकरण, रुच्य एवं बलप्रद होता है।।२५।।

अथ हिङ्गुवासितघोलकनिर्माणं गुणाश्च

वस्त्रे दृढतरं बद्धं दधि दुग्धेन गालितम्।
हिङ्गुना धूपिते पात्रे स्थापितं सैन्धवान्तिम्॥२६॥

हिङ्गुवासित घोलक की निर्माण विधि इस प्रकार है–

दुग-दधि को मजबूत वस्त्र में बाँधकर (वस्त्रे दृढतरं बद्धं)। छानते हैं (गालितम्)।

फिर हिंगु तथा सैंध्व मिश्रित कर- हिंगु से धूपन से सुगन्धित पात्र में स्थापित करना चाहिए॥२६॥

घोलकं वातहृद्बल्यमर्शोतिसारनाशनम्।
सुरुच्यं पुष्टिदं बृष्यं पक्वशूलविनाशनम्॥ २७॥

घोलक के गुण (हिंगु, सुगन्धित) इस प्रकार है-

१. वातहत	२. बल्य	३. रुच्य
४. सुष्टिदा	५. वृष्य	६. पक्वशूल (परिणामशूल)
७. अर्श	८. अतिसार	९. अग्निमांद्य (नाशक- ६-९)

अथ तक्रनिर्माणविधिर्गुणाश्च

तुर्यांशेन जलेन संयुतमतिस्थूलं सदम्लं दधि
प्रायो माहिषुमंशुकेन विमले मृद्भाजने गालयेत्।
भृष्टं हिङ्गु च जीरकं च लवणं राजीं च किञ्चिन्मितां
पिष्ट्वा तत्र विमिश्रयेद्भवति तत्तक्रं न कस्य प्रियम्॥ २८॥

तक्र

क. **विधि-** अति स्थूल-सदम्ल दधि (तुर्यांशेन जलेन स्युत) माहिष दधि- (भैंस के दूध की दधि) में चौथाई भाग जल मिश्रित करके, स्वच्छ कपड़े से छान लेते हैं-मिट्टी के पात्र में रखते हैं (मृद्भाजने गालयेत्)।

२. भृष्ट हिंगु (भुनी हिंगु), जीरक, लवण तथा राजिका (किंचित मात्रा) को पीसकर (तक्र दधि) में सम्मिलित कर देते हुए। इस प्रकार का संस्कृत तक्र किसको प्रिय नहीं होता अर्थात् सभी को इस तक्र की आकांक्षा पान हेतु रहती है (तत्तक्रं न कस्य प्रियम्)।

तक्रं रुचिकरं वह्निदीपनं पाचनं परम्।
उदरे ये गदास्तेषां नाशनं तृप्तिकारकम्॥ २९॥

ख. **गुण-**
१. रुचिकर २. बह्निदीपन
३. पाचन (परम्) ४. तृप्तिकारक
५. उदरगद नाशक (उदर रोग हर)

अथ दुग्धसेवनकालनिरूपणम्

विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुङ्क्ते हि मानवः।
तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत्॥ ३०॥
दुग्धस्यापरे गुणा उक्ता एव।

दुग्ध

व्यक्ति (मनुष्य-मानक) जब विदाही अन्न-पान का सेवन करता है, उनसे उत्पन्न दाह की शान्त (विदाहप्रशान्त्यर्थम्) करने के लिए भोजन कर चुकने के पश्चात् (भोजनान्ते पयः पिबेत्) दुग्ध को पान करने से लाभ होता है- ऐसा विधान (दाहनाशक) है। दुग्ध के अन्य/सामान्य गुण पूर्व में वर्णित हैं (दुग्धस्यापरे गुणा उक्ता एव)॥३०॥

अथ पश्चात्परिवेष्याणि

तत्र रसाला-शिखिरिणीनिर्माणविधिर्गुणाश्च

आदौ माहिषमम्लमम्बुरहितं दध्याढकं शर्करां
शुभ्रां प्रस्थयुगोन्मितां शुचिपटे किंचिच्च किंचित्क्षिपेत्।
दुग्धेनार्धघनने मृन्मयनवस्थाल्यां दृढं स्थापये-
देलाबीजलवङ्गचन्द्रमरिचैर्योग्यैश्च तद्योजयेत्॥ ३१॥
भीमेन प्रियभोजनेन रचिता नाम्ना रसाला स्वयं
श्रीकृष्णेन पुरा पुनः पुनरियं प्रीत्या समास्वादिता।
एषा येन वसन्तवर्जितदिने संसेविता नित्यश-
स्तस्यर स्यादतिवीर्यवृद्धिरनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम्॥ ३२॥

रसाला-शिखिरिकी (शिखरिणी)

क.१. **विधि-** सर्वप्रथम जलरहित (अम्बु रहित) माहिष अम्ल दधि (एक आढ़क चार कि.ग्रा.) तथा (शुभ्रा) श्वेत शर्करा (एक प्रस्थ एक कि.ग्रा.)- इन दोनों द्रव्यों को सम्मिश्रित करते हैं इसको श्वेत वस्त्र में थोड़ा-थोड़ा छोड़ते जायें (शुचि पटे किंचित्क्ष किंचित्क्षिपेत्); इसमें आधा दूध (पक्व रहने पर) के साथ छान लेते हैं- इसको मृत्तिका पात्र में स्थापित कर देते हैं।

२. फिर, एला, लवंण, कर्पूर मरिच तथा अन्य उपयुक्त (सुगन्धित-सुरुचि) वस्तुओ का चूर्ण रूप में मिश्रण कर देते हैं।

ख. **वैशिष्ट्य–**

३. प्रभूत आहार-सेवी भीम के प्रिय भोजन के रूप में रसाला उनके नाम से विख्यात है (भीमेन प्रियभोजनेन) जो भीम का प्रिय भोजन है (दधि तनाम्ना रसाला स्वयम्)। प्राचीन काल (पुरा) ने इस रसाला को पुनः-पुनः (बार-बार) चखा था पुनरियं प्रीत्यां क्षमास्वादिता)।

४. जो मनुष्य इस रसाला को बसन्त ऋतु के अतिरिक्त अन्यसमस्त ऋतुओं में प्रतिदिन सेवन करता है (संसेविता नित्यशः), उसमें वीर्यवृद्धि एवं सर्वेंद्रिय बल्य प्रभाव करता है।।३१-३२।।

ग्रीष्मे तथा शरदि ये रविशोषिताङ्गा
ये च प्रमत्तवनितासु रतातिखिन्नाः।
ये चापि मार्गपरिसर्पणखिन्नगात्रा-
स्तेषामियं व पुषि पोषणमाशु कुर्यात्॥ ३३॥

ऋतु के अनुसार विशेष कार्मुकत्व

५. शरद तथा ग्रीष्म ऋतुओं में सभी (आतप) के कारण अंगों में शुष्कता आ गयी है (रविशोषिताङ्गा), जो भक्ति मदोन्मत्त स्त्री के साथ संयोग करने से मानसिक रूप से स्विन्न हो गये हैं (प्रमत्त नितासु रतातिखिन्नाः), तथा जिन मनुष्यों का अति मात्रा करने से शेखर क्षीण हो गया है (मार्गपरिसर्पण खिन्नगात्रा)– ऐसे पीड़ित व्यक्तियों का शरीर को इस रसाला (शिखरिणी) के सेवन करने से शीघ्र पुष्टि प्रदान करती है।

रसाला शुक्रला बल्या रोचनी वातजित्सरा।
दीपनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा।
रक्तपित्तं तृषां दाहं प्रतिश्यायं च नाशयेत्॥ ३४॥

ख. **गुण : (रसाला)**

१. शुक्रला	२. बल्या
३. रोचनी	४. वातजित्
५. सरा	६. दीपनी
७. बृंहण	८. स्निग्धा
९. मधुरा	१०. शीत
११. रक्तपित्त	१२. तृषा
१३. दाह	१४. प्रतिश्याय

(नाशक : ११-१४)

अथ हंसिनीनिर्माणविधिर्गुणाश्च

निर्नीरं सुरभीक्षीरसंयुक्तं गालितं दधि।
शर्करैलाढ्यमरिचैः संयुक्ता हंसिनी भवेत्॥ ३५॥
हंसी शिखरिणी रुच्या शुभ्रा वह्निविकाशिनी।
सशीतजननी चैव कफपित्तविनाशिनी।
सुशीतजननी चैव कफपित्तविनाशिनी॥ ३६॥

हंसिनी (शिखिरणी प्रकार)

क. **विधि–** निर्नीर (जलरहित) दधि को गोदुध मिश्रित कर, गालित कर (छाल) लेते हैं, फिर इसमें सिता, एला तथा मरिच का चूर्ण मिश्रित कर देते हैं। यह हंसिनी नामक पानक बन आता है।

ख. **गुण–**

१. रुच्या	२. शुभ्रा
३. वह्निविकाशिनी	४. सुशीतजननी
५. कफघ्न	६. पित्तविनाशिनी

अथ राजहंसिनीनिर्माणविधिर्गुणाश्च

निर्नीरं पाचितं क्षीरं माहिषं तद्भवं दधि।
शुभ्रशर्करयैलाढ्यं गालितं राजहंसिनी॥ ३७॥

राजहंसिनी

निर्नीर माहिष सीर में पाक करके, माहिष दधि को छानकर (गालित) संग्रहीत करते हैं, इसमें शुभ्र शर्करा एवं एला का चूर्ण मिश्रित करते हैं। यह राजहंसिनी शिखिरिणी (शिखरिणी) बन जाता है।।३७।।

अथ शशिरेखानिर्माणविधिर्गुणाश्च

राजहंसी सुमधुरा बल्या वृष्यतरा हिमा।
अत्यर्थं पित्तशमनी किञ्चित्कफकरी स्मृता॥ ३८॥
शर्कराशुभ्रभक्तेन श्रृतदुग्धयुतेन च।
परिपूता शिखरिणी शशिरेखेति कीर्तिता॥ ३९॥

शशिरेखा (शिखरिणी)

क. **विधि–** शुभ्र शर्करा युक्त भक्त में भृत दुग्ध को छान होते हैं। यह शशिरेखा शिखरिणी बन जाती है।

ख. **गुण–**

१. हिमा	२. बल्या
३. रुच्या	४. पुष्टिक्ष
५. वातहरा	६. श्रेष्ठा
७. पित्तशामक	८. महादाहविनाशिनी

अथाम्रसाकृतिनिर्माणविधिर्गुणाश्च

शशिरेखा हिमा बल्या रुच्या पुष्टिप्रदायिनी।
वातपित्तहरा श्रेष्ठा महादाहविनाशिनी॥ ४०॥
किञ्चित्कुङ्कुमसंमिश्रं विमस्तु दधि गालितम्।
सशर्करं भवेत्पीता पक्काम्ररससन्निभा॥ ४१॥

आम्ररसाकृति शिखरिणी

क. **विधि–** मस्तु रहित दधि को वस्त्र से गलित करते (छानकर) हैं, फिर किंचित् कुंकुम (केशर) मिश्रित कर देते हैं, तथा (बाद में) शर्करा, मिला देते हैं, इससे पक्वाम्र समान (पके आम के रस के समान पीले रंग (भवेत्पीता) की शिखरिणी बन जाती है।

ख. **गुण–**

१. लघु	२. वर्णवती
३. हिमा	४. सुरुच्या
५. मधुरा	६. बल्या
७. वातघ्न	८. पित्तहर
९. परम : (७-८)	

पीता शिखरिणी या सा लघ्वी वर्णवती हिमा।
सुरुच्या मधुरा बल्या वातपित्तहरा परा॥ ४२॥

अथ रसालानिर्माणविधिर्गुणाश्च

ससितं दधि मध्वाज्यमरिचैलादिसंस्कृतम्।
मथितं कान्तकामिन्या कर्पूरपरिवासितम्॥ ४३॥
रसाला शुक्रला बल्या रोचिनी वातपित्तहा।
स्निग्धाऽऽतपप्रतिश्यायं विशेषेण विनाशयेत्॥ ४४॥

रसाला

क. **विधि–** सिता सहित दधि, मधु, घृत, मरिच तथा एला (दोनों चूर्ण) मिश्रित कर, कान्तकामिनी (पति से प्रेम/ उत्कृत अभिलाषिणी) स्त्री के द्वारा मथित तथा कर्पूर मिलित पदार्थ से (सुगन्धित) को 'रसाला' कहा जाता है।

ख. **गुण–**

१. शुक्रला	२. बल्या
३. रोचिनी	४. वातनाशक
५. पित्तहा	६. स्निग्धा
७. आतपहारिणी	८. प्रतिश्याम विनाशक

रसाला शिखरिण्युक्ता मर्जिका मार्जिका बुधैः।
कथ्यन्ते बहुनामानि गुणास्तस्या हि योगतः॥ ४५॥

रसाला-शिखरिणी नामावली

पाक विद्या एवं शास्त्र के शताओं (पण्डितों) ने इस भोज्य पदार्थ का विभिन्न नामकरण किया है, यथा–

१. रसाला	२. शिखरिणी	गुण द्रव्यों के संयोग
३. मर्जिका	४. मार्जिका	(घटक द्रव्यों के अनुसार)
५. अन्य नाम		

मोचाफल रसाला

निर्नीरं मथितं धनेन सहितं संभावितं शर्करा-
धूलीभिर्मरिचोद्भवेन रजसा व्यालोडितं किञ्चन।
जातीचम्पककेतकीसुरभितं मृत्पात्रमध्यस्थितं
जिह्वायां विदधात्युपक्रममिदं मोचाफलैश्चापलम्॥ ४६॥

रसालां रसवद्धल्यं मधुरं पित्तनाशनम्।
सुहृद्यं कफकृत्स्तोकं किञ्चिद्विष्टम्भकारकम्॥ ४७॥

मोचाफल रसाला

क. **विधि–** निर्नीर (जलरहित) दधि के साथ मोचाफल मथित कर, शर्करा मिलाकर, मरिच चूर्ण लाती तथा केतकी पुष्प सुगन्धित मृत् भाजन में स्थापित करें। इसका नाम 'मोचाफल रसाला' हैं।

यह विशिष्ट रसाला उपक्रम (भोज्य प्रस्तुति) का नाम 'मोचाफल रसाला' है।

ख. **गुण–**

१. बल्य
२. मधुर
३. पित्तनाशन
४. सुहृद्य
५. कफकृत् (स्तोक)
६. किंचितविष्टम्भकारकम्

अथ खार्बुजेयं रसालनिर्माणं गुणाश्च

मधुरदधिनी मध्ये शर्करां सन्नियोज्य
शुभविदलितखण्डं प्रक्षिपेत्खार्बुजेयम्।
करविलुलितमानैर्वासितं चातिगन्धै-
र्जिगमिषुजठराग्निं स्थापयत्येव नूनम्॥ ४८॥
रसालं खार्बुजस्येदं विष्टम्भि रुचिकारकम्।
हृद्यं च कफदं बल्यं पित्तघ्नं मूत्रकृद्वरम्॥ ४९॥

खार्बुजेय रसाला

क. **विधि–** मधुर दधि–शर्करा मिश्रित–में खर्बूज खण्ड (खरबूजे के छोटे टुकड़े) डालकर, हस्त-मर्दन करें तथा सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित करते है। इसका नाम 'खार्बुजेय रसाला' है।

यह भृष्ट जाठराग्नि को पुनस्थापित कर देती है।

ख. **गुण–**

१. विष्टम्भि
२. रुचिकारक
३. हृद्य
४. कफजनन
५. बल्य
६. पित्तघ्न
७. मूत्रकृत् (उत्तम मशल)
८. अग्निजनन

अथाम्ररसालानिर्माणं गुणाश्च

सखण्डं खार्बुजं खण्डं चन्द्रार्द्रकविमण्डितम्।
पक्वाम्ररससंयुक्तमत्याराधितवान् रविम्॥ ५०॥
पक्वाम्ररसखण्डाभ्यां संस्कृतं खार्बुजं दलम्।
वातपित्तहरं सर्वरसालेषूत्तमोत्तमम्॥ ५१॥

आम्र रसाला

क. **विधि–** सखण्ड खर्बूज (दल) खण्ड को कर्पूर तथा आर्द्रक से आवृत्त करें तथा पकवाम्र रस क्षेपण करते हैं, सूर्यातप में शुष्क करती हैं। इस तरह 'आम्ररसाला' बन जाती है।

ख. **गुण–**

१. वातघ्न
२. पित्तशामक
३. सर्वोत्तम रसाला (सर्वरसालेपूत्तमोत्तमम्)

अथ पानकानि

अथापक्वाम्रफलपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

आम्रमामं परिस्विन्नं मर्दितं मुष्टिना दृढम्।
पयसाऽर्धयुते तोये शर्करामरिचान्विते॥ ५२॥
अपक्वाम्ररसोद्भूतं पानकं वातनाशनम्।
कफपित्तकरं किञ्चित् प्रत्यहं यदि सेवितम्॥ ५३॥

पानक

अपकवाम्रफल पानक

क. **विधि–** आम (कच्चे) आम्रफल को परिस्विन्न (उबाल) करके, दृष्टि मुष्टि (मजबूत हाथों की मुट्ठी) से मर्दन करते हैं, फिर इसमें अर्ध दुग्ध मिश्रित जल में शर्करा एवं मरिच मिला देते है। यह 'आम्रफल' पानक तैयार हो गया।

ख. **गुण–**

१. वातनाशक
२. कफ
३. पित्त
] (किंचित वर्धक–प्रत्यहं यदि सेवितम् नित्य या अधिक सेवन करने पर)

अथ सुपक्वाम्रफलपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

सुपक्वमाम्रस्य फलं सुमुष्टिना
संमर्दितं शर्करया समन्वितम्।
एलालवङ्गार्द्रकवासवासितं
वर्णान्वितं कस्यन रोचकप्रदम्॥ ५४॥
पानकं त्वाम्रसंभूतं स्वाद्वम्लं गुरु पित्तजित्।
सुहृद्यं श्लेष्मकृद्बल्यं वर्ण्यंवृष्यं रुचिप्रदम्॥ ५५॥

सुपकवाम्रफल पानक

क. **विधि–** सुपक्व आम्र फल (भलीभाँति/ पूरे तरह पके) को अपनी मुट्ठी (स्वमुष्टिवा) मर्दन करके, शर्करा का मिश्रण करें, एला, लवंग तथा अर्द्रक की सुगन्ध से सुवासित करें।

इस रीति से वर्णयुक्त पानक किसको रुचिकारक नहीं होता– यह पानक सर्वप्रिय–स्वाद जनक होता है।

ख. **गुण–**

१. स्वादु	२. अम्ल
३. गुरु	४. पित्तजित्
५. सुहृद्य	६. श्लेष्मकृत
७. बल्य	८. वर्ण्य
९. वृष्य	१०. रुचिप्रद

अथाम्लिकाफलपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

अम्लिकायाः फलं पक्वं मर्दितं वारिणा दृढम्।
शर्करामरिचोन्मिश्रं लवङ्गेनाधिवासितम्॥ ५६॥

अम्लिका फल पानक- १

चिंचा (अम्लिका) के पूर्णपक्व फलों का जल में डालकर मर्दन करके, शर्कर एवं मरिच चूर्ण– साथ ही लवंग चूर्ण सुगन्धित बनाने हेतु–मिश्रित कर देते हैं। इसे 'अम्लिका पानक' कहते हैं।

चाञ्चेयं शर्करायुक्तं कर्पूरोदकमर्दितम्।
फलमार्द्रकसंयुक्तं प्राह तत्पानकान्तरम्॥ ५७॥

अम्लिका फल पानक- २

अम्लिका फल को जल में मर्दन करके, शर्करा तथा कर्पूर मिश्रित कर, आर्द्रक स्वरस जल देते हैं।

अम्लिकाफलसंभूतं पानकं वातनाशनम्।
कफपित्तकरं किञ्चित्सुरुच्यं वह्निबोधकम्।।५८।।

ख. **गुण–**

१. वातनाशक	२. किंचित् कफ कारक
३. किंचित् पित्त जनक	४. रुचिकारक
५. बह्निबोधक (अग्नि तीव्र कर)	

अथ जम्बूफजपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

जम्बूफलं त्वस्थिविवर्जितं हि
सुमर्दितं शर्करयाऽम्बुनाऽलम्।
सुवासितं वह्निजभृङ्गपत्रै
रुचिं विधत्ते विरुचौ जनानाम्॥ ५९॥
जम्बूफलभवं रुच्यं पानकं कफनाशनम्।
कषायं वातकृत्स्तोकं स्वाद्वम्लं ग्राहिकं वरम्॥ ६०॥

जम्बूफल पानक

क. **विधि–** जम्बूफल (अस्थि रहित) को जल में मर्दन करके, शर्करा मिश्रित कर दें, फिर मरिच, भृंग (त्वक-दालचीनी) तथा पत्र (तेजपत्र) का चूर्ण डालकर सुगन्धित करें। यह 'जम्बूफलपानक' निर्माण हो गया है।

यह पानक (जम्बूफल पानक) व्यक्तियों की अरुचि विकार को नष्ट करके, रुचि उत्पन्न कर देता है।

ख. **गुण–**

१. रुच्य	२. कफनाशन
३. कषाय	४. किंचित् वातनाशक
५. स्वादु	६. अम्ल
७. ग्राही (वरम्)	

अथ बीजपूरपाननिर्माणविधिर्गुणाश्च

मातुलुङ्गरसे योज्यं त्रिगुणं शार्करं जलम्।
कर्पूरमरिचोन्मिश्रं पानकं स्यादिदं वरम्॥ ६१॥

मातुलुङ्गभवं पानं शूलाजीर्णविनाशनम्।
श्वासकासारुचौ वातविड्बन्धेषु च पूजितम्॥ ६२॥

बीजपूर पानक

क. **विधि–** बीजर (बीजौरा-विजौरा नीबू) या मातुलय के स्वरस में उससे त्रिगुण जल में शर्करा (मात्रपूर्वक) मिला दें इसे कर्पूर तथा मरिच चूर्ण से सुगन्धित करें।

ख. **गुण–** १. शूल २. अजीर्ण ३. श्वासवृद्धि ४. कास ५. अरुचि ६. वातवरोध ७. मलावरोध (नाशक–१-७)

अथ हेमकिरणपाननिर्माणविधिर्गुणाश्च

शर्करा नालिकेरं च बीजपूररसप्लुतम्।
पटपूतं भवेद्धमकिरणं नाम पानकम्॥ ६३॥
पानकं हेमकिरणं रुच्यं वृष्यं बलप्रदम्।
सुस्निग्धं वातहृच्छुभ्रं किञ्चित्कफकरं गुरु॥ ६४॥

क. **विधि–** शर्करा, नालिकेर जल तथा बीजपूर स्वरस मिश्रण को, पटपूत करके (वस्त्र से छानकर) रखते हैं। इसको 'हेम किरण पानक' संज्ञा दी जाती है।

ख. **गुण–** १. रुच्य २. वृष्य ३. बल्य ४. स्निग्ध ५. वातनाशक ६. शुभ्र ७. किंचित् कफवर्धक ८. गुरु (गरिष्ठ)

अथ निम्बूफलपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

भागैकं निम्बुजं तोयं षड्भागं शर्करोदकम्।
लवङ्गमरिचोन्मिश्रं पानकं पानकोत्तमम्॥ ६५॥
निम्बूफलभवं पानमत्यम्लं वातनाशनम्।
हृद्यं रुचिकरं भव्यं सर्वाहारस्य पाचकम्॥ ६६॥

निम्बूफलपानक

क. **विधि–** निम्बुज (नीबू का रस) एक भाग, शर्करा मिश्रित जल-छह भाग मिश्रित कर, लवंग एवं मरिच चूर्ण डालें।

यह उत्तम पानक (पानकोत्तमम्) बन जाता है।

ख. **गुण–** १. अत्यधिक अम्ल २. वातनाशक ३. हृद्य ४. रुचिकर ५. भव्य (श्रेष्ठ) ६. सर्वाहार पाचक

अथ कारमर्दकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

लवङ्गार्द्रकसंयुक्तं सुपिष्टं वारिणा युतम्।
कारमर्दं करैर्मर्द्यं समभागसितान्वितम्॥ ६७॥
वातहृद्रुचिदं बल्यं हृद्यमम्लतरं स्मृतम्।
रक्तपित्तकरं चोक्तमकण्ठ्यं कारमर्दकम्॥ ६८॥

कारमर्द पानक

क. **विधि–** करमर्द (करौंदे–करवन) फलों को जल में सुपिष्ट भलीभाँति पीसकर, लवंग एवं आर्द्रक के साथ समभाग सिता (शर्करा) कर–मिश्रित तथा गालित कर (छान) लेते हैं। यह 'करमर्दपानक' प्रस्तुत हैं।

ख. **गुण–** १. वातहृत् २. रुचिद ३. बल्य ४. हृद्य ५. अम्लतर ६. समपित्तकर ७. अकण्ठ्य ८. कण्ठ (गल अहितक) ९. आम-पक्व (मधुराम्ल) फलोपयोगी

अथ नारङ्गफलपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

सुपक्वनारङ्गफलं सुपीडितं
संयोजितं शर्करयाऽतिशुभ्रया।
सदार्द्रकं चेन्दुकणेन वासितं
महीतलेकेन न संस्तुतं क्षणम्॥ ६९॥
नारङ्गफलसंभूतं पानकं वातनाशनम्।
मधुरं विशदं रुच्यं सुस्निग्धं पित्तहृद्वरम्॥ ७०॥

नारङ्गफल पानक

क. **विधि–** सुपक्व नारंग (नारंगी) फलों को सुपीड़ितकर (स्वरस निकालने हेतु),

अति शुभ्र (अतिश्वेत) शर्करा का मिश्रण करें, आर्द्रक स्वरस तथा कर्पूर से सुगन्धित (वासित) करें। इस प्रकार 'नारंग पानक' प्रस्तुत है।

इस पानक की पृथ्वी पर कौन ऐसा है जिस प्रशंसा नहीं की है (महीतेल केन न संस्तुतं क्षणम्) अर्थात् यह पानक सर्वप्रिय होता है।

ख. **गुण—** १. वातनाशक २. मधुर (विपक) ३. रुच्य ४. स्निग्ध ५. पित्तशामक

अथ जम्बीरपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

एकं पाकविशेषसौरभरजं जम्बीरनारांशकं
ग्रावग्रन्थिकदर्थितक्षितिधरस्त्रोतोजलांशाष्टकम्।
समांशैर्मिलितासिताविलुलितं कपूर्रचूर्णान्वितं
ह्येतत्पानकमाधिहृद्रुचिकरं सम्यक्प्रदिष्टं बुधैः॥ ७१॥
पानं जम्बीरसंभूतं तृष्णाशूलकफापहम्।
वातघ्नं विशदं प्रोक्तं पित्तकृद्रुचिकारकम्॥ ७२॥

जम्बीर पानक

क. **विधि—** विशिष्ट पाक सुगन्धित कारक जम्बीर निम्बूक स्वरस (एक भाग) तथा स्रोतोजल (नैर्झर) या परिस्रु जल (अष्टभाग) तथा सिता (सप्तभाग) झाकी उपयुक्तं ठंग से मिश्रित करके, कर्पूर से सुगन्धित करते हैं।

यह 'जम्बीरपानक' प्रस्तुत है; यह मानसिक रोग निराकरण तथा सम्यक् रुचिकर है- ऐसा विद्वानों का मत है।

ख. **गुण—** १. तृष्णा निग्रहण २. शूल शमन ३. कफपहम् ४. वातघ्न ५. विशद ६. पित्तकृत् ७. रुचिकारकम् ८. अधिहृत् ९. मस्तिष्क बल्य

अथ बदरफलपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

सुस्विन्नं बादरं पक्वं फलं शर्करयाऽन्वितम्।
जलमिश्रं पटे पूतं चातुर्जातकसंयुतम्॥ ७३॥

पानकं बदरोद्भूतं पित्तघ्नं मधुरं सरम्।
स्निग्धं रुचिकरं भव्यं छर्दिदोषविनाशनम्॥ ७४॥

बदरफलपानक

क. **विधि—** पक्व बदर फल सुस्विन्न (भलीभाँति उबालकर), पीडित (मर्दित) कर, शर्करा का मिश्रण करते हैं; फिर जल में सम्मिलित-वस्त्र से छान लेते (वस्त्रपूत) करते हैं, तथा चातुवाज चूर्ण प्रक्षेपण करते हैं। यह 'बदरफलपानक' प्रस्तुत है।

ख. **गुण—** १. पित्तघ्न २. मधुर ३. सर ४. स्निग्ध ५. रुचिकर ६. भव्य (श्रेष्ठ) ७. छर्दिघ्न ८. वमनदोपहर ९. आन्त्र स्नेहन

अथ चारोद्भवफलपाननिर्माणविधिर्गुणाश्च

चारवृक्षसुफलं सशकरं
मदितं शिशिरवारिणा दृढम्।
एलयाऽऽर्द्रकजलेन सुवासं
भक्तस्क्थिमिलितं कृतहासम्॥ ७५॥
चारस्य फलजं पानं गुरु वृष्यं रुचिप्रदम्।
कफपित्तहरं श्रेष्ठं हृद्यं मधुरपाकि च॥ ७६॥

चारवृक्षपानक

क. **विधि—** चारवृक्ष के सुफल को शिशिर वारि (ठंडे पानी) में मर्दित कर, शर्करा मिश्रित करते हैं; एला तथा आर्द्रक रस से सुगन्धित करें। यह पानक भक्त सिवाय मिलित रुक्ष में हास्य करता है।

ख. **गुण—** १. गुरु २. वृष्य ३. रुचिप्रद ४. कफघ्न ५. पित्तशामक ६. हृद्य ७. मधुर (विपाकी) ८. श्रेष्ठकफपित्तहर ९. मधुर (स्वादु)

अथ विविधद्रव्यपानकनिर्माणविधिर्गुणाश्च

परुषाञ्जीरचुक्राम्लद्राक्षादाडिमजं तथा।
एकैकसंभवं भिन्नं पानकं क्रियते बुधैः॥ ७७॥
एवमम्लस्य पुष्पस्य फलस्याम्लस्य वा तथा।
शर्करामरिचोन्मिश्रो रसः स्यात्पानकं वरम्॥ ७८॥
एवं हि पानकं कार्यं सुधिया सुष्टु यत्कृतम्।
गुणा द्रव्यानुसारेण ज्ञातव्याः पानकेषु च॥ ७९॥

इति पानकानि।

विविध पानक

अम्ल (अम्लिका), अंजीर, चुक्र, द्राक्षा, दाडिम– इनमें से एक-एक फल को भिन्न-भिन्न पानक निर्माण की विधि की व्यवस्था बुद्धिमान् सूदकारों (पाचकों) द्वारा प्रस्तुत की है। इसीरीति से अम्ल-पुष्प या अम्ल-फल स्वरस में शर्करा एवं मरिच चूर्ण की सम्मिलित करने से, पानकवर (उत्तम पानक) को निर्माण हो जाता है।

इसी भाँति बुद्धिमान (योग्य पाचकों) द्वारा निर्दिष्ट (विधि के अनुसार) विभिन्न पानकों का निर्माण करना चाहिए (सुधिया सुष्टु यत्कृतम्)। इन पानकों के गुण-कर्म उनमें प्रयुक्त द्रव्यों के अनुसार होते हैं– ऐसा व्यक्त किया जाता है (गुणां द्रव्यानुसारेण ज्ञातव्याः पानकेषु च)॥७७-७९॥

पानक समाप्त।

अथ तक्रनिर्माणविधिर्गुणाश्च

शशिकुन्दसमुज्ज्वलशङ्खनिभं
युवतीकरनिर्मितनिर्मथितम्।
घृतसैन्धवहिङ्गुयुतं **मधुरं**
पिब तक्रमहो नृप रोगहरम्॥ ८०॥

तक्र

अ. शशि कुन्द सम उज्ज्वल शंख निभ दधि को–युवती कर द्वारा–निर्मथित तक्र, सैंधव एवं हिंगु युक्त (मधुर तक), रोगों का निवारणकर्त्ता है। हे राजन ! इस प्रकार के पान करो (पिब तक्रमहो नृप रोगहरम्)– यह तक्र व्याधियों से मुक्ति प्रदाता है॥८०॥

गव्यदध्नोऽष्टतोयांशः कृतं तक्रं ससैन्धवम्।
भृष्टजीरयुतं चाथ दग्धहिङ्गुरजोन्वितम्॥ ८१॥

आ. गव्य दधि में (आठवाँ भाग मिलित) जल (अष्टम तोयांश), सैंधव, भृष्ट जीरक, दग्धहिंगुरज के सम्मिश्रण द्वारा तक्र प्रस्तुत होता है।

तक्रं वातहरं रुच्यं शूलाध्मानार्शसां हितम्।
अग्निसंजननं श्रेष्ठं कफपित्तनिर्बहणम्॥ ८२॥

गुण

१. वातहर	२. रुच्य	३. अग्निसंजनन
४. श्रेष्ठ	५. शूल	६. आध्मान
७. अर्श	८. उदररोग (नाशक–५-८)	

अथ गौरीतक्रनिर्माणविधिर्गुणाश्च

विश्वामरीचलवणजीरनाङ्गजत्वचाम् ।
चूर्णान्वितं च तत्तक्रं धूयेद्धृतहिङ्गुना॥ ८३॥
पार्वत्या विहितं तक्रं सर्वदोषनिबर्हणम्।
सुरुच्यं पाचनं दिव्यं महेशस्य महाप्रियम्॥ ८४॥

गौरीतक्र

क. **विधि–** विश्वा (शुण्ठी), मरिच, लवण, जीरक एवं नारङ्ग त्वक् के चूर्ण को, दधि मन्थनोक्त तक्र में प्रक्षेपण करके, घृत भृष्ट हिंगु से (या धूपन द्वारा) सुगन्धित करते हैं।

ख. **गुण–वैशिष्ट्य**

१. सर्वदोषनिवर्हण	२. सुरुच्य
३. पाचन	४. दिव्य
५. महेश (शंकर) महाप्रिय	६. पार्वती निहित

दोषानुसारेणविशिष्ठौवधमिश्रिततकसेवनविधिः

वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं स्वादु पित्ते सशर्करम्।
पिबेतक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम्॥ ८५॥

दोषानुसार तक्र प्रयोग

१. वातजन्य रोग : सैंधवयुक्त अम्ल तक्र

२. पित्तजन्य रोग : शर्करा युक्त मधुर तक्र

३. कफजन्य रोग : त्रिकटु युक्त क्षारीय तक्र

तक्रप्रशस्ति:

अमरत्वं यथा स्वर्गे देवानाममृताद्भवेत्।
तक्राद्भूमौ तथा नृणाममरत्वं हि जायते॥ ८६॥

तक्र (प्रशस्ति) प्रशंसात्मक महत्ता

जैसे देव गुणों को स्वर्ग में अमृत सेवन से अरत्व प्राप्त होता है (अमरत्वं यथा स्वर्गे देवानाममृताद्भवेत्) उसी प्रकार पृथ्वी पर निवासी मनुष्यों को तक्र से हो अमरत्व की प्राप्ति होती है (तक्राद्भूमौ तथा नृणाममरत्वं हि जायते)॥८६॥

तस्मात्तक्रं नरैः सेव्यं सर्वदोषनिर्बहणम्।
क्षयं मूर्च्छां भ्रमं दाहं रक्तपित्तामयं विना॥ ८७॥

तक्र के गुण-कर्मादि इस प्रकार है—

१. क्षयरोग २. मूर्च्छा ३. भ्रम
४. दाह ५. रक्तपित्त (रोग-निषिद्ध)

इनके अतिरिक्त (१-५ रोगों से पीड़ित), प्राय: समस्तकिकारों में तक्र सेवन उपयुक्त है (तस्मातक्रं नरै: सेव्यं) जो सर्वदोषनिवर्हण (सर्वव्याधिहर) होता है॥८७॥

अथ अच्छिकानिर्माणविधि

गतचिरवासरतक्रं वस्त्रेणागालितं ससैन्धवक्षोदम्।
रुचिकरधूपप्रधूमैर्धूपितमरिचेण रोचनं भवति॥ ८८॥

अच्छिका

तक्र-दो तीन दिन का पर्युषित (वासी)- वस्त्रेण गालित (कपड़े से छानकर) में सैंधव सम्मिश्रण तथा रुचिकारक धूपन द्रव्यों से प्रधूमित-सुगन्धित कर लेते हैं।

यह 'अच्छिका' आशुरूप से रोचन प्रभाव करती हैं। (रुचिवर्द्धक)॥८८॥

अथ काञ्जिकनिर्माणविधि:

धान्याम्लमच्छतरयामुनवारिहारि
शुण्ठीरजोलवणजीरकसंस्कृतं यत्।

आवासितं सुरभिहिङ्गुकणेन यत्ना-
त्तेनाशुशुक्षणिकणोऽधिकतां प्रयाति॥ ८९॥

काञ्जिक

यमुना जल आच्छतर (शुद्धहर/सदृश) में शुण्ठी-लवण-जीरक चूर्ण में सुगन्धित हिंगु के प्रयोग से, धान्याम्ल (काञ्जी) का निर्माण करते हैं, जो (शीघ्र/अष्ट) गुणवान् अधिक रूप से हो जाता है। यह अमिश्रित द्रव प्रस्तुत है।

काञ्जिक निर्माण विधि

स्वच्छ मृत्तिका घट-सर्षप तैल अलेपित (अन्तरंग), शुद्ध जल परिपूर्ण करके, राजिका, जीरक, लवण, हिंगु, शुण्ठी तथा हरिद्राचूर्ण क्षेपण कर, घट मुख अतिबद्ध-दिवस त्रय पर्यन्त-रखते है, अन्त में द्रव को पृथक् (उपयुक्त पात्र-बोतल आदि) संरक्षित कर लेते हैं॥८९॥

करमर्दककाञ्जिकनिर्माणविधिर्गुणांश्च

एलामहौषधिविभावितमाणिमन्थ-
संसिद्धमामकरमर्दककाञ्जिकं यत्।
मन्दं विवर्धयति जाठरकाग्निहोत्रं
निर्वाणदीपमिव गन्धकचूर्णयोग:॥ ९०॥

करमर्दकाञ्जिक

क. **विधि–** आम (अपक्व) करमर्दक, के साथ एला, शुण्ठी, सैंधव का सम्मिश्रण करके कांजिक निर्माण करते है। यह जाठराग्नि मन्द होने पर, उसका विवर्धन करता है, जैसे अग्निहोम के अवसर (प्रक्रिया) में निर्वाणदोष को गंधक चूर्ण का संयोग (अग्नि को) प्रज्वलित करता है॥९०॥

य: काञ्जिकं पिबति योजितसैन्धवं च
निष्पीडितार्द्रकरसाश्रितजीरकं च।
तस्याग्निरोदनघृतेन शमं न याति
प्रास्फारितैर्वडववारिधिवारिपूरै:॥ ९१॥

ख. **गुण-प्रयोग–** सैन्धव युक्त आर्द्रक स्वरस (निष्पीडित)- जीरक सहित-कांजी का सेवन (पान) करने से, भक्त (चावल का भात) तथा घृत के सेवन से मन्द

(शान्त) पाचकाग्नि, मन्दता को प्राप्त नहीं होती, जिस प्रकार वडवानल, प्रस्फुरित जल प्रवाह के कारण शान्त (शमन) नहीं हो पाता।

काञ्जिकं रुचिदं हृद्यं स्वस्थस्याग्निकरं परम्।
वातहृद्बलदं श्रेष्ठं गुर्वाहारस्य पाचकम्॥ ९२॥

कांजिक रुचिकर या रुचिकारक, हृदय को बल देने वालों (हृद्य), स्वस्थ व्यक्ति की पाचकाग्नि को परम अग्निकर बनाती है॥९२॥

अथ गव्यवासाधिकस्य निर्माणविधि:

उदकरसनिवृत्तंगोमयाग्नौ विपक्वं
नवदलघनसारैर्वासितं बष्कयिण्या:।
पटमिलितसुखण्डं स्थापितं नव्यपात्रे
विगतरससुधांशो गीयते वासधिक्य:॥ ९३॥

गव्य वासाधिक

गोदुग्ध (बरकमिण्या–एक वर्ष की प्रसूता गौ से प्राप्त) को गोमयाग्नि पर उदकरस निवृत्त (जल जल जाने तक) दुग्ध में, नवीन बल कर्पूर से सुगन्धित नवमृत्तिकापात्र में स्थापित करें तथा वस्त्रमलित (कपड़े से छान) कर, सुखण्ड (शर्करा) का मिश्रण करते हैं।

इस रीति से निर्मित 'गव्य वासधिक रस' अमृत का अश माना जाता है (विगत) ससुधांशोगीयते वासधिक्य:)॥९३॥

अथ महिषीदुग्धजवासाधिकानिर्माणविधिर्गुणाश्च

क्षीरं माहिषसंभवं घनतरं संपाचितं वह्निना
कारीषेण सुवासितं धुसृणकै: संस्थापितं मृन्मये।
पात्रे नव्यतरे सुधूपविहिते भुञ्जन्ति ते मानवा
यैराराधि सितासितोदकरतैर्माघे सदा माधव:॥ ९४॥
वासाधिका सुमधुरा वृष्या मेद:प्रदा गुरु:।
सुस्निग्धा बृंहणी बल्या सुशीता तृप्तिकारिणी॥ ९५॥

महिषीदुग्धजवासाधिक

क. **विधि–** महिषी दुग्ध (भैंस के दूध) को करीषाग्नि (उपलों की आम पर) घनतर (गाढ़ा) करके, कर्पूर से सुगन्धित करते हैं, फिर हींग (घुसृण) आदि से सुगन्धित नवीन मृत्पात्र में रखकर, वासाधिक का निर्माण कर लेते हैं।

इस रीति से प्रस्तुत वासाधिक की व्यक्ति द्वारा सेवन करने से, माघ मास में (गंगा-यमुना जल में स्नान करके) माधव (भगवान श्रीकृष्ण) की आराधना रत होते हैं।

ख. **गुण–**

१. सुमधुर	२. वृष्य
३. मेद:प्रदा	४. गुरु:
५. सुस्निग्ध	६. बृंहिणी
७. बल्या	८. सुशीता
९. तृप्तिकारिणी	

अथ करम्भकस्य निर्माणविधिर्गुणाश्च

सुशीतं क्रियते भक्तं दध्याढ्यं दुग्धकावधि।
नातिद्रवं नातिसान्द्रं मिश्रितं तत्करम्भकम्॥ ९६॥
करम्भसंज्ञा ये भक्ष्या हृद्या: शीतातिपुष्टिदा:।
अत्यर्थं मनुजै: सेव्या: शरत्कालनिदाघयो:॥ ९७॥

करम्भक

क. **विधि–** दध्याढ्य दुग्ध (दूध का दही बनना) में भक्त (चावल का भात) भिक्षेपण करके, न अधिक साद्र (गाढ़ा)– न अधिक द्रव (पतला) पदार्थ बना लेते हैं– इसको 'करम्भक' कहा जाता है (अर्थात् यह दधिमिश्रित भक्त का स्वरूप है)।

ख. **गुण–**

१. हृद्य	२. शीत
३. अतिपुष्टिदा	४. शरद्
५. ग्रीष्म	

करम्भसंज्ञक पदार्थों के सामान्य गुण-कर्म इस प्रकार हैं– इस प्रकार ऋतुओं में अधिक सेवन योग्य मनुष्यों द्वारा (सक्तू दधि मिश्रण की संज्ञा भी करम्भक)।

अथ भोजनान्ते शुद्धदुग्धसेवनविधानम्

गव्यं वा माहिषं क्षीर कारिषानलपाचितम्।
शोषितं षड्विभागेन कदुष्णं प्राशितं बुधै:॥ ९८॥

भोजनान्तर दुग्ध प्रयोग

गौदुग्ध या माहिष दुग्ध-करीषाग्नि (उपलों की आग) पर पक्व तथा षड्भाग शोषित, कदुष्ण या सुखोष्ण, भोजन करने के पश्चात् (अन्त में) विज्ञ (बुद्धिमान) मनुष्य को दुग्ध सेवन (पान) करना चाहिए।।९८।।

बहुधा पटसंपूतं नव्ये पात्रे सुपाचितम्।
सनागरमजादुग्धं सुसिद्धारुणवर्णकम्॥ ९९॥

अजादुग्ध सेवन

पटसंपूत (वस्त्र से छानकर), नव्य मृत्तिकापात्र में अजादुग्ध (बकरी के दूध) में शुण्ठी मिश्रित कर पाकोपरन्त अरुण वर्णीय हो जाने पर- सुखोष्ण पान करना चाहिए।

गव्यं सुशीतलं क्षीरं स्निग्धं गुरु रसायनम्।
अल्पाभिष्यन्दकृद्रक्तपित्तघ्नं वातनाशनम्॥ १००॥

१. सुशीतल २. स्निग्ध ३. गुरु
४. रसायन ५. अल्पाभिष्यन्दी ६. समपित्तनाशक
७. वातनाशक

महिषदुग्धस्य गुणा:

माहिषं मधुरं स्निग्धं सुशीतं बृंहणं गुरु।
निद्राकरं मतिहरं स्तोकमग्निप्रबोधकम्॥ १०१॥

माहिष दुग्ध

गुण–

१. मधुर २. स्निग्ध ३. अतिशीतल
४. बृंहण ५. गुरु ६. निद्राकर
७. मतिहर ८. अग्नि प्रबोधक (स्तोक)

अथ दुग्धस्य गुणा:

आजं लघुतरं क्षीरं कासश्वासनिबर्हणम्।
दीपनं शोषिणां पथ्यं गव्यदुग्धगुणावहम्॥ १०२॥

आजदुग्ध

गुणा–

१. लघुतर २. कास ३. श्वास
४. क्षय (नाशक २-४) ५. दीपन ६. शोष रोगियों को पथ्य
७. गव्य दुग्ध समान गुणवान्

कालक्रमेण वय:क्रमेण च पीतदुग्धस्य गुणा:

वृष्यं बृहंणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो
मध्याह्ने बलवर्धनं कफहरं पित्तापहं दीपनम्।
बाले वृद्धिकरं क्षये क्षयहरं वृद्धेषु रेतोवहं
रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं क्षीरं सदा चाक्षुषम्॥ १०३॥

काल-आयु क्रमानुसार दुग्ध सेवन

अ. प्रात:काल	:	बल्य, बृंहण, वृष्य
आ. पूर्वाह्ण	:	बल्य, कफ-पित्तनाशक, दीपन
इ. बाल्यावस्था	:	देह वृद्धिकर
ई. क्षीणावस्था	:	क्षयहर
उ. वृद्धावस्था	:	वीर्यवर्धक
ऊ. रात्रिकाल	:	पथ्य (सदैव), अनिक दोषशमन, चक्षुष्य

अथ खाण्डवनिर्माणविधिर्गुणाश्च

कोलामलकजं चूर्णं शुण्ठ्येलाशर्करान्वितम्।
मातुलुङ्गरसेनोक्तं शोषितं सूर्यरश्मिभि:॥ १०४॥
एवं तु बहुशोऽभ्यक्तं शोषितं च पुन: पुन:।
ईषल्लवणसंयुक्तं चूर्णं खाडवमुच्यते॥ १०५॥

खाण्डव

क. **विधि–** कोल (बदर) तथा आमलक (धात्री) चूर्ण में शुण्ठी-एला (चूर्ण) तथा शर्करा मिश्रितकर, मातुलुंग (बीजपूर) स्वरस से प्लावित सूर्य रश्मि में शोषित (मुहर्मुहु) का चूर्ण सैन्धवयुक्त बनायें। इसको 'खाण्डव' कहा जाता है।

ख. **गुण–** १. मुखवैशद्यकर २. रुचिधारक

३. हृद्रोगशमन ४. मुखवैरस्य नाशन

अथ भुक्तोच्छिष्टान्नदानविधानम्

खाडवं मुखवैशद्यकारकं रुचिधारकम्।
हृद्रोगशमनं चेति मुखवैरस्यनाशनम्॥ १०६॥
मुद्भुक्तोच्छिष्टमन्नं तु भुञ्जन्तु पित्तरोऽधमाः।
तेषामन्नं मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ १०७॥

भुक्तोच्छिष्टान्न विधान

अ. मेरे भोजन (के उपरान्त) अवशिष्ट/ अच्छेष्ट अन्न भाग (अंश) का अधम मितृगण ग्रहण करें ऐसी धारणापूर्वक विधान है॥१०६-१०७॥

रौरवेऽपुण्यनिलये पाद्माम्बुधिनिवासिनाम्।
प्राणिनामुदकं ह्येतदक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ १०८॥

आ. शंख संज्ञक अपुण्य स्थान में पद्माम्बुधि में निवासी प्राणियों को अक्षम्य उदक प्रदान करता हूँ- इसे ग्रहण कीजिए॥१०८॥

अथाचमनोदकपानविधानं गुणाश्च

काले धाराधराणां निपतदतितरां व्योम्नि वारिप्रपूर्णे
स्वच्छं त्वम्भोजवृन्दद्युतिमतिसरसि त्वानवीनाच्च कुम्भात्
पूर्णादानीयमम्भः प्रतिदिनममलं न्यस्तकर्पूसारं
भुङ्क्ते संसेव्यमानं नृपवरशुचिदं वारि चारोग्यकारि॥ १०९॥

आचमनोदक पान

मेघ कमल समूह (जलपूर्णाकाश) प्रकाशमान् सरास में पतित स्वच्छ जबको नव घट से प्राप्त- कर्पूर सुगन्धित जल- का पान (सेवन) करते हुए आहार ग्रहण करते हैं- ऐसा जलपान नृपों को शुचि-पवित्रता तथा आरोग्य प्रदान करता है॥१०९॥

अथेषिकाखण्डकस्य विधानं गण्डूपकरणस्य फलञ्च

दन्तनिष्कोषणं कार्यं रोहिषस्य शलाकया।
ततो गण्डूषकरणमास्योच्छिष्टविशुद्धये॥ ११०॥

इषिका खण्डक विधि

भोजनोपरान्त रोहिण शलाका से दन्त-मध्य को स्वच्छ करें। (दन्त निष्को वर्ण); फिर उच्छिष्ट मुख की विशुद्धि हेतु गण्डूष धारण करते हैं॥११०॥

अथ जानुस्पर्शनविधानम्

मा करेण करं पार्थ मा गण्डौ मा च चक्षुषि।
जानुनी स्पृश राजेन्द्र भर्तव्या बहवो यदि॥ १११॥

जानुस्पर्शनम्

हे! राजेन्द्र, यदि प्रजा का पालन-पोषण (भर्तव्या बहनो यदि) करने की अभिलाषा है, तो अपने हाथों (या करेण कर) से हाथ, (हस्त), उभार गण्डस्थल तथा उभय (दोनों) नेत्रों का स्पर्श नहीं करके, इसके स्थान पर उभय जानु का स्पर्श करना चाहिए॥१११॥

अथचमनान्ते कर्मर्दनचन्दनस्य विधानम्

कृष्णागुरुप्रभृतिकैरतिसौरभैश्च
कर्पूरसाररजसाऽऽचमनान्तमुच्चैः।
आराधितत्रिपुरवैरिपदाम्बुजानां
भुक्तावसानकरमर्दन चन्दनं स्यात्॥ ११२॥

करमर्द चन्दनम्

कृष्णागुरु प्रभृति सुगन्धि द्रव्य तथा कर्पूरसार के चन्दन से आचमन करे, उसके अन्त में त्रिपुरवैरि (भगवान् शंकर) का पूजन (पदाघुजानाम्) करने के उपरान्त, अयोजन के अन्त में, करमर्दन चन्दन किया जाना चाहिए॥११२॥

अथ भोजनपरिणामार्थश्लोकपाठविधानम्

भोजनान्ते हि सद्विप्रस्त्वेतद्वाक्यानि वै पठेत्।
आहारपरिणामार्थमायुर्वृद्धिकराणि च॥ ११३॥

भोजन से परिपाक्वार्थ ईश्वर प्रणधान

स्वेत् विप्र (सुबाह्मण) द्वारा ग्रहीत आहार का सम्यक् पाचन (परिणाम) के उद्देश्य से मन्त्र (श्लोक) सत् वाक्यों को भोजनान्त में पाठन (उच्चारण) करना अपेक्षित हैं॥११३॥

नेत्रशक्तिवर्द्धकोमन्त्र:

शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ।
भोजनान्ते स्मरेद्यस्तु चक्षुस्तस्य न हीयते॥ ११४॥

चक्षुष्यमन्त्र

शर्याति, सुकन्या, च्यवन, इन्द्र, अश्विनौ, (उभयकुमार) को स्मरण करने से नेत्र (दृष्टि) शक्ति वृद्धि होती है॥११४॥

भोजनस्य परिपाकाय मन्त्र:

अगस्त्यं कुम्भकर्णं च शनिं च वडवानलम्।
आहारपरिणामार्थं संस्मरेच्च वृकोदरम्॥ ११५॥

भोजन सुपरिपाक विधान

अगस्त्य मुनि, कुम्भकर्ण, (रावणभ्राता) शनैश्चर, बडवानल एवं वृकोदर (भींग) का आहार का परिणाम (पाचन) हेतु भोजन के अन्त में स्मरण करना चाहिए॥११५॥

विष्णुः समस्तेन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान् यथैकः।
सत्येन तेनान्नमशेषमेतदारोग्यमन्तं परिणाममेतु॥ ११६॥

समस्त इन्द्रियाँ शरीर की आत्मा एक ही प्रधानभूत भगवान् विष्णु है– इसे सत्य (स्मरण करने) के कारण आरोग्य प्राप्ति– निर्व्याधि अवस्था–शरीर को हो सके, तदर्थ (भगवान विष्णु) का स्मरण किया जाना हितकर है॥११६॥

इत्यादिबहुवाक्यानि भोजनान्तेषु यः पठेत्।
स भवेद्वल्लभो राज्ञां चायुरवाप्नुयात्॥ ११७॥

इस प्रकार (पूर्वोक्त) सदवाक्यों– मन्त्रों-स्मरणीय वचनों आदि का जो व्यक्ति पाठन करता है, वह भोजनार्थी एवं सदोच्चारण के कारण, राज्ञवल्लभ (राजाओं का प्रिय) हो जाता है, तथा राजा स्वयं दीर्घायुष्य का लाभ प्राप्त करता है (राजा आयुरवाऽप्नुयात्)॥११७॥

अथ ताम्बूलभक्षणविधानम्

ताम्बूलं स्वर्णवर्णं क्रमुकफलयुतं साग्रमग्र्यं गृहीतं
कर्पूरैणाण्डजाभ्यां कृतखदिरवटीसौरभेणातिपूर्णाम्।

चूर्णं ग्रावानुजातं शशधरकिरणप्रोज्ज्वलं तेन साकं
दत्त्वा विप्राय पूर्वं तदनु नरपतिर्भक्षयेदाप्तदत्तम्॥ ११८॥

ताम्बूल भक्षण

स्वर्ण वार्णिय अग्रभाग समान (सहित) ताम्बूल, में पुगखण्ड (कमुक), कर्पूर एवं कस्तूरी मिश्रित सुगन्धित खदिर वटी (कत्था) तथा चन्द्र किरण समान चूर्ण (चूना) रखकर सर्वप्रथम राजा ब्राह्मण (हिपु) को प्रदान करे, फिर विश्वस्त व्यक्ति (आप्तदत्तम्) द्वारा प्राप्त, राजा से स्वयं (नरपतिर्भक्षयेत्) चर्वण (भक्षण) करना चाहिए॥११८॥

अथाजीर्णोपशमनद्रव्याणि

विरुद्धाध्यशनात्यर्थचिन्ताविण्मूत्रधारणात्।
असात्म्यभोजनाद्द्वेषात्क्रोधात्स्वप्नविपर्ययात्॥ ११९॥
इत्यादिकारणैर्जन्तोर्यदा त्वन्नं न पच्यते।
तदाऽन्नपरिपाकार्थमेतद्द्रव्यान्तरं भजेत्॥ १२०॥

पिष्टान्ने सलिलं प्रियालफलजे पथ्या हिता मांसजे
क्षीरे गव्यभवे च तक्रमुचितं मोचाफलं सर्पिषि।
नारङ्गे गुडभक्षणं च कथितं मत्यस्योद्भवे काञ्जिकं
गोधूमेऽपि च कर्कटी हितेतरा शेषाणि बुद्ध्या भजेत्॥ १२१॥

अजीर्ण निवारण विधानम्

क. **अजीर्ण के हेतु आहार-विहार**

१. विरुद्ध भोजन	२. अध्यशन	३. अतिचिन्ता
४. आसात्म्य भोजन	५. द्वेष	६. क्रोध
७. निद्रा विपर्यय	८. अन्य कारण	

ख. **अजीर्ण का शमन**

१. पिष्टान्न : जल	२. मांस : हरीतकी	३. गोदुग्ध : तक्र
४. घृत : कदली	५. नारंग : गुड़	६. मत्स्य : कर्कटी

अन्य द्रव्यों (आहार-विहार) से उत्पन्न अजीर्ण की स्थिति में (शेषाणि बुद्ध्या भजेत्) स्वबुद्धि/ आवश्यकतानुसार उपयुक्त पाचक द्रव्यों/ उपायों का अनुसरण/ प्रयोग हितकर होता है।

ग्रन्थकर्तुर्वंशवर्णनम्

वंशोऽयं किमु वर्ण्यते सुविमलो नानागुणैरुन्नतो
यत्रैकेन विभीषणश्च भिषजा नीरोगतामाप्तवान्।
श्रीरामादपरेण या सुविदिता लब्धा ह्यकोलापुरी
ग्रामा द्वादश एव चान्यविदुष लब्धा हि दिल्लीश्वरात्॥ १२२॥

ग्रन्थ कर्त्ता-वंश वृत्त

अनेक गुणों से उन्नत तथा सुविमल ग्रन्थकार के वंश का क्या वर्णन किया जा सकता है अर्थात् उनका वंश अत्युत्तम है। जिस वंश के एक वैद्य (भिषक्) विभीषण को रोग से विमुक्ति की थी (निरोगता)। एक अन्य चिकित्सक ने भी राम के द्वारा सुप्रसिद्ध अकोलापुरी को प्राप्त किया था। उसी वंश के अन्य विद्वान (विदुषा) ने दिल्ली नरेश (दिल्ली खर) से बारह ग्राम (ग्रामा द्वादश) प्राप्त किये थे॥१२२॥

पुत्राः क्षेमभिषग्वरस्य षडिमे नानागुणैरुन्नता
गोपालो शिवपालमाधववरौ नारायणस्त्वद्भुतः।
रामो लक्ष्मणसंज्ञकः सुविदिताः संवत्सराणां शत
जीव्यासुः पृथ्वीतेलऽतिसुखिनो नित्योत्सवैरुत्सुकाः॥ १२३॥

भिषखर (चिकित्साकों) में श्रेष्ठ-उत्तम गुणों से युक्त छह (षडिमे) पुत्र हुए–गोपाल, शिवपाल, माधववर, अद्‌भुत सम्पन्न नारायण, राम तथा लक्ष्मण। यह समस्त पृथ्वी पर अतिसुखी, नित्यप्रत्ति अनेक उत्सवों से प्रसन्न (नित्योत्सवैरुत्सुकाः) रह कर ख्यातनामा थे॥१२३॥

प्रजाक्षेमकृता क्षेमशर्मणा वंशपद्धतिः।
स्वकीया स्वयमावर्ण्य वर्णविन्यासशालिना॥ १२४॥

वर्णो को यथास्थान चुनावपूर्व स्थापित-कुशल (कवि) वर्णविन्याशाली-क्षेम शर्मा वे स्वयं स्ववंश परम्परा का परिचर्या, प्रजाक्षेम (प्रजाओं-जनमानस के कल्याणार्थ) प्रस्तुत था॥१२४॥

परदोषकथास्वनादरा बहवः सन्त्यवनौ सुसज्जनाः।
इति चेतसि सन्निधाय यत्कृमेवाद्रियतां तदार्यकैः॥ १२५॥

इस पृथ्वी पर बहुत से सज्जन (बहवः सत्यवनौ सुसज्जनाः) अन्य व्यक्तियों के

दोषों पर ध्यान नहीं देते (परदोषकथास्वनादरा), इस धारणा को मन में रखकर (चेतसि सन्निधाय), जो कुछ मैंने लेखन ग्रन्थ रूप में किया है, इसका सम्मान आर्यजन (यत्कृत मेवाद्रियतां तदार्यकैः) को करना चाहिए, ऐसी आशा (विश्वासपूर्वक) है॥१२५॥

नन्दन्तां नीतिभाजः सकलवसमुतीजातयः पान्तु विश्वं
दुर्वृत्ता यान्तु नाशं भवतु वसुमती सस्यसंपन्नदेशा।
नीरं यच्छन्तु मेघाः कलयतु सुकविः काव्यकौशल्यलीला-
मव्यादव्याजभाजं परिहतदुरितं क्षेमशर्माणमीशः॥ १२६॥

नीति का पालन कर्त्ता (नीतिभाज नन्दताम्), समस्त पृथ्वी पर निवास करने वाले संसार का पालन करें (सकलवसुमतीजायतः पान्तु विश्व), दुर्जन नष्ट हो जायें (दुर्वृत्ता यान्तु नाशं भवतु वसुमती सस्यसंपन्नदेशा), मेघ जल की वर्षा करें (नीरं यच्छन्तु मेघाः कलयतु), सुकवि काला कुशलता की लीला प्रगट करें (सुकविः काव्यकौशल्यलीलाम-व्यादजभांज परिहत दुरितं) तथा भगवान् शिव शंकर का निष्प्रयोजन (निष्कास) भजन कर्त्ता निष्पाप क्षेम शर्मा (क्षेमशर्माणमीशः) की सुरक्षा प्रदान करें।

बाणाकाशसुते नादे (१६०५) वत्सरे विक्रमाङ्किते।
ऊर्जे शुक्लत्रयोदश्यां ग्रन्थः पूर्णोऽयमैन्दवे॥ १२७॥

इति श्रीनरवैद्यमन्मथात्मजक्षेमशर्माविनिर्मिते क्षेमकुतूहले ग्रन्थे गोरसपानकादिप्रशंसनो नाम द्वादशोत्सवः॥१२॥

विक्रम संवत्सर सौलह सो पाँच (१६०५) कार्त्तिक शुक्ल त्रयोदशी सोमवार के दिन यह ग्रन्थ ने पूर्णता को प्राप्त किया॥१२७॥

इति हिन्दी व्याख्या सहित क्षेमकुतूहल का गोरस-पानक निर्माण-वर्णननामक बारहवाँ उत्सव समाप्त॥

NOTE

NOTE